

प्रगतिवादी आन्दोलन और रांगेय राघव का उपन्यास साहित्य



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

प्रो० कुँवरपाल सिंह

प्रस्तुतकर्ता

सितारा जहाँ

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

1997



T5057

समर्पण

स्वर्गीय मम्मी की मंगलमयी
पुनीत स्मृति को सादर

प्रोफेसर कुँवर पाल सिंह

पूर्व अधिष्ठाता, कला संकाय

एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ - २०२००२

☎ : ४०२४६० (निवास)

'अवन्तिका'

एम.आई.जी. २८

रामघाट रोड, अलीगढ़ - २०२००१

दिनांक ३/१/१९

Certificate

Certified that the thesis entitled "*Pragativadi Andolan Aur Rangeya Raghav Ka Upanyas Sahitya*" presented by Miss Sitara Jahan is an original work for Ph.D. degree. It is the result of Miss Sitara Jahan's own efforts. Miss Sitara Jahan has fulfilled all the conditions laid in the ordinances of A.M.U., Aligarh.

१५४४४४

(PROF. K.P. SINGH)
Supervisor

Chairman
Department of Hindi
A.M.U., ALIGARH

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

प्रगतिवादी आन्दोलन का इतिहास, आत्मसंघर्ष और उसकी साहित्यिक प्रतिष्ठा।

१ - ३५

१. प्रगतिवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि।
२. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना, अधिवेशन तथा उपलब्धियाँ।
३. साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव
४. प्रगतिवाद की मूल्यांकन पद्धति।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा और प्रगतिवादी उपन्यास।

३६ - ७५

१. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास की अवस्था।
२. प्रेमचन्द का उदय और उपन्यास विधा में मूलभूत परिवर्तन।
३. उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियाँ।
४. हिन्दी की प्रगतिवादी उपन्यास परम्परा तथा प्रमुख उपन्यासकार।

तृतीय अध्याय

रांगेय राघव के उपन्यास साहित्य का सामान्य अध्ययन।

७६ - १११

१. सामाजिक उपन्यास
२. ऐतिहासिक उपन्यास
३. राजनीतिक उपन्यास
४. आंचलिक उपन्यास

चतुर्थ अध्याय

रांगेय राघव के प्रमुख उपन्यासों का कथ्य विश्लेषण
(मार्क्सवादी विचारधारा के विशेष सन्दर्भ में)

११२ - १४६

१. सामाजिक कथ्य
२. ऐतिहासिक कथ्य
३. राजनीतिक कथ्य
४. धार्मिक कथ्य

पृष्ठ संख्या

पंचम अध्याय

रांगेय राघव के उपन्यासों का शिल्प-विधान।

१४७ - १८१

१. शिल्प एवं शिल्प विधान का अर्थ।
२. उपन्यास तथा शिल्प।
३. प्रगतिवादी दृष्टि के अनुरूप उपन्यासों का शिल्प-विधान।
४. रांगेय राघव के उपन्यासों का शिल्प-विधान।

उपसंहार

१८२ - १८८

परिशिष्ट

- क. भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा-पत्र।
- ख. आधार ग्रन्थ।
- ग. सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ।
- घ. पत्र-पत्रिकाएँ।

१८९ - २०५

भूमिका

आधुनिक हिन्दी साहित्य में रांगेय राघव का अपना वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान है। वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने कविता, नाटक, कहानी, आलोचना, रिपोर्टाज, उपन्यास आदि अनेक विधाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने ३६ वर्ष की अल्पायु में १५१ ग्रन्थों की रचना कर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। साहित्य की विविध विधाओं पर सशक्त साधिकार लेखन के बावजूद उनका कथाकार रूप अधिक विशिष्ट है।

प्रगतिशील हिन्दी कथा-साहित्य में रांगेय राघव का योगदान महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ अनेक कारणों से अपने ढंग का अलग तथा विशिष्ट भी है। अति लेखन तथा काफी हद तक व्यावसायिक लेखन के बावजूद जितने कम समय में जितनी महत्वपूर्ण कृतियाँ रांगेय राघव के साहित्य में सहज उपलब्ध है उतनी उनके अन्य समकालीन लेखकों के यहाँ दुर्लभ है। रांगेय राघव ने 'अजेय खण्डहर', 'मेघावी' और 'पांचाली' जैसी काव्य रचनाएँ की हैं परन्तु उनकी प्रतिभा का पूर्ण निखार गद्य साहित्य के क्षेत्र में दिखाई देता है। वे आधुनिक गद्य विधाओं में विविध प्रयोग करने वाले अकेले प्रगतिशील लेखक हैं। परन्तु इनकी वास्तविक जमीन कथा साहित्य ही है। अपनी समस्त सीमाओं के बाद भी उनके कथा साहित्य का एक बड़ा हिस्सा आज साहित्य की स्थायी निधि है। 'मुर्दों का टीला', 'सीधा सादा रास्ता', 'कब तक पुकारूँ', 'विषाद मठ', 'आखिरी आवाज', 'महायात्रा गाथा' दोनों खण्ड तथा कम से कम एक दर्जन कहानियाँ ऐसी हैं, जिनके लिए उन्हें सफल सार्थक रचनात्मक लेखक के रूप में याद किया जाता रहेगा।

उपन्यासकार रांगेय राघव का व्यक्तित्व असाधारण प्रतिभा एवं अप्रतिहत श्रम शक्ति का प्रतीक है। उनकी आस्था मानव जीवन में है। इनके साहित्यिक जीवन का लक्ष्य सत्यान्वेषण रहा है। उन्होंने राजनीति, धर्म तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रयोग किये हैं। उनकी रचनाएँ उनके दृढ़ मनोबल, अनुशासित कार्य प्रणाली तथा असाधारण पुरुषार्थ का परिणाम है। इनकी दृष्टि में भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन का समन्वयवादी दृष्टिकोण मूलतः प्रगतिवादी रहा है। उनकी आस्था मार्क्सवादी दर्शन में है परन्तु उसके प्रति उनकी अन्ध भक्ति नहीं थी। उन्होंने प्रगतिवाद को अपने देश की विशाल सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक परम्परा से जोड़कर देखने तथा अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। उनका यह प्रयास उनके चिन्तन तथा साहित्य को मौलिकता प्रदान करता है। उनकी इस मौलिकता को उनकी उपन्यास साहित्य

में देखना ही इस शोध कार्य का उद्देश्य है।

रांगेय राघव के उपन्यासों के अध्ययन की स्थिति अब तक के उपलब्ध शोध प्रबन्धों में इस प्रकार रही है —

डा० लाल साहब सिंह का शोध प्रबन्ध “डा० रांगेय राघव और उनके उपन्यास” में रांगेय राघव के उपन्यासों का तात्विक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में इनके उपन्यासों के कलापक्ष का अध्ययन ही प्रमुख है।

शम्भूनाथ सिंह ने अपने लघु शोध प्रबन्ध “रांगेय राघव और उनके आंचलिक उपन्यास” में अपने विषय की सीमा में मात्र आंचलिक उपन्यासों का विवेचन किया है। जिसमें कलागत विश्लेषण प्रमुख है।

डा० कमलाकर गंगावणे का शोध प्रबन्ध “कलाकार रांगेय राघव” रांगेय राघव की रचनाओं का विवरण देने वाला ग्रन्थ है। यह प्रबन्ध रांगेय राघव की पुस्तकों, उनके प्रकाशकों तथा उन पर हुए शोध-कार्यों का विवरण है। जिसमें समीक्षात्मक दृष्टिकोण नगण्य है।

डा० प्रभुलाल डी० वैश्य का शोध प्रबन्ध “डा० रांगेय राघव के उपन्यासों में युग चेतना” में रांगेय राघव के उपन्यासों के कथानकों का ऐतिहासिक क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन कथानकों के माध्यम से युग विशेष की सामाजिक स्थिति का आंकलन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध “प्रगतिवादी आन्दोलन और रांगेय राघव का उपन्यास साहित्य” में प्रगतिवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास तथा रांगेय राघव के उपन्यास साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा के प्रभाव को रेखांकित किया गया है। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में मानव समाज में व्याप्त विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया तथा प्रगतिवादी दृष्टि से इन समस्याओं के समाधान का स्पष्ट संकेत भी दिया है। समाज में व्याप्त विषमताओं को दूर करके स्वस्थ समाज का निर्माण करना उन्हें अभीष्ट है। जिसमें समस्त मनुष्यों की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तथा सभी को उचित विकास का समान अवसर मिल सके। रांगेय राघव के उपन्यासों में अभिव्यक्त इस दृष्टि का अध्ययन उनके उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में प्रगतिवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास, भारत में प्रगतिशील लेखन संघ की

स्थापना, अधिवेशन तथा उपलब्धियों को प्रस्तुत किया गया है इसके अतिरिक्त साहित्य में प्रगतिशील विचारधार के प्रभाव तथा प्रगतिवाद की मूल्यांकन पद्धति को स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा तथा प्रगतिवादी उपन्यास है। जिसमें प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यास की दशा, प्रेमचन्द के उदय के साथ होने वाले परिवर्तन तथा उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियों को मूल्यांकित करने के साथ ही साथ हिन्दी की प्रगतिवादी उपन्यास परम्परा तथा इस परम्परा के प्रमुख उपन्यासकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय रांगेय राघव के उपन्यास साहित्य के सामान्य अध्ययन पर आधारित है। इसमें रांगेय राघव के उपन्यासों के सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक उपन्यासों तथा औपन्यासिक जीवनियों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में रांगेय राघव के उपन्यासों का कथ्य विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। रांगेय राघव मार्क्सवादी विचारधारा को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर स्थापित करने की बात करते हैं। इनके सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा धार्मिक कथ्य को इसी विशेष मार्क्सवाद के सन्दर्भ में मूल्यांकित किया गया है।

पंचम अध्याय में रांगेय राघव के उपन्यासों के शिल्प विधान को प्रस्तुत किया गया है शिल्प तथा शिल्प विधान की व्याख्या करते हुए उपन्यास में शिल्प के महत्व को रेखांकित किया गया है। इसमें प्रगतिवादी दृष्टि के अनुरूप उपन्यासों का शिल्प विधान तथा रांगेय राघव द्वारा प्रस्तुत शिल्प विधान व इस दृष्टि से किये जाने वाले प्रयोगों को अंकित किया गया है।

उपसंहार में पूरे शोध प्रबन्ध से निकाले गये सार को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आदरणीय गुरुवर प्रो० कुँवरपाल सिंह के कुशल निर्देशन में लिखा गया है। इस कार्य को पूरा करने में उनका सुझाव, सहयोग तथा प्रोत्साहन बराबर मिलता रहा है। उनकी प्रेरणा, आशीष और स्नेह ने मुझे इस कार्य को पूर्ण करने की दिशा में निष्ठावान बनाये रहा है। मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

शोध प्रबन्ध हेतु सामग्री एवं अध्ययन की सुविधाओं के लिए मौलाना आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, हिन्दी सेमिनार तथा केन्द्रीय ग्रन्थालय, गोरखपुर के अधिकारियों तथा

कर्मचारियों के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी विभाग (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़) द्वारा प्रदत्त शोध छात्रवृत्ति के तहत लिखा गया है। विभाग द्वारा यथासमय छात्रवृत्ति उपलब्ध कराने में जो सहायता मिली उसके लिए मैं विभाग के प्रति कृतज्ञ हूँ।

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के विभागाध्यक्ष तथा समस्त गुरुजनों के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर अपना अमूल्य सुझाव, सहयोग तथा प्रोत्साहन प्रदान किया है।

अन्त में मैं अपने परिजनों विशेष रूप से आदरणीय पिताश्री शाह आलम, छोटी बहन मलका तबस्सुम तथा मित्रों में फैयाज अहमद का विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके सुझाव एवं सहयोग से मैं इस कार्य को पूरा कर सकी।

दिनांक : 31.1.98.....

सितारा जहाँ
(सितारा जहाँ)

प्रथम अध्याय

प्रगतिवादी आन्दोलन का इतिहास, आत्मसंघर्ष और उसकी साहित्यिक प्रतिष्ठा

१. प्रगतिवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि।
२. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना, अधिवेशन तथा उपलब्धियाँ।
३. साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव।
४. प्रगतिवाद की मूल्यांकन पद्धति।

प्रगतिवादी आन्दोलन का इतिहास, आत्मसंघर्ष और उसकी साहित्यिक प्रतिष्ठा

प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यापक रूप से हुआ है। यह शब्द संस्कृत के 'प्रागमन्' और अंग्रेजी के 'प्रोग्रेस' शब्द से मिलता जुलता है। 'प्रागमन्' का अर्थ है – आगे की ओर बढ़ना, उन्नति, सुधार एवं विकास आदि। अंग्रेजी का प्रोग्रेस शब्द एक विशिष्ट अर्थ विकास एवं परिवर्तन को ध्वनित करता है। यह शब्द आवश्यकता तथा उन्नति से जुड़ा है। सामान्यतः साहित्य में प्रगति का अर्थ सही दिशा में मानव जीवन के सर्वांगीण विकास से लिया जाता है। साहित्य को मानव जीवन से जोड़ने वाले मुंशी प्रेमचंद भी प्रगति को उन्नति के विशेष अर्थ में देखते हुए कहते हैं – उन्नति से हमारा तात्पर्य है जिससे हमें दृढ़ता, कर्म और शान्ति उत्पन्न हो। जिससे हमें अपने दुखावस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन-किन अन्तः बाह्य कारणों से हम इस निर्जीव और ह्रास की अवस्था को पहुँच गए और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।¹ प्रगति शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ० रांगेय राघव लिखते हैं, "प्रगति केवल राजनीतिक नहीं है। वह समग्र मानव का एक नया जीवन दर्शन है। जो वर्गवाद को मिटाकर मनुष्य का एक ऐसा सुखी समाज बना सके, जहाँ मनुष्य विज्ञान की सहायता से सृष्टि के रहस्यों को समझ सके। वर्गवाद को मिटाने के लिए वह शोषक वर्गों का विरोध करती है। वह यह मानती है कि शोषित वर्ग ही समाज को मुक्त करके वर्गहीन समाज का निर्माण कर सकते हैं।"² डॉ० रांगेय राघव के अनुसार प्रगति का अर्थ ऐसे वर्गहीन समाज का निर्माण है जिसमें सभी समान रूप से सुखी तथा समृद्ध हो।

कुछ विद्वान प्रगति को नवीनता का पर्याय मानते हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' प्रगति की व्याख्या इसी अर्थ में करते हैं। 'दिनकर' के अनुसार "प्रगति का जो अर्थ मैं समझ सका हूँ वह साम्यवादी नहीं बल्कि नवीनता का पर्याय है और इसके दायरे में उन सभी लेखकों का स्थान है जो चर्चित चवर्ण पुरातन विजृम्भण और गतानुगतिकता के खिलाफ है। वे सभी लेखक प्रगतिशील हैं जो किसी प्रकार अनुकरणशील नहीं कहे जा सकते।"³ दिनकर ने प्रगति को साम्यवाद से अलग करके देखा है। वे प्रगति का नवीन अर्थ लेते हैं। इस दृष्टि से दिनकर की परिभाषा मार्क्स के 'प्रोग्रेस' सम्बन्धी परिभाषा से बहुत निकट है। मार्क्स के अनुसार, "परिवर्तन की प्रक्रिया में जब स्थितियाँ बदलती हैं, क्रम टूट जाता है तब नया रूप उत्पन्न होता है। इसी को विकास कहते हैं जो एक स्थिति को दूसरी स्थिति में ला देता है।"⁴ अर्थात् प्रत्येक नया

परिवर्तन ही विकास है तथा यही प्रगति का पर्याय भी।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। इस सन्दर्भ में भारत में प्रगतिवादी आन्दोलन के उद्भव एवं विकास से पूर्व की स्थिति पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। उस समय समाज की क्या स्थिति थी किन परिस्थितियों में प्रगतिवादी साहित्य का जन्म हुआ। क्या वह समय इस आन्दोलन के लिए उचित था या वास्तव में यह विदेश से लाकर रोपी गई वस्तु है। इन सारे प्रश्नों वैज्ञानिकों एवं तर्कसंगत उत्तर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ ही दे सकती हैं। इन परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण अपने मूल प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

१. प्रगतिवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि

सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ

आधुनिक काल से पूर्व भारतीय गाँवों का आर्थिक ढाँचा प्रायः अपरिवर्तनशील तथा स्थिर था। खेती की व्यवस्था तथा घरेलू धंधों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भारतीय ग्राम जीवन की अपनी विशेषता थी। गाँव अपने आप में स्वतः पूर्ण आर्थिक इकाई थे। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक वस्तु का उत्पादन एवं निर्माण गाँव में ही होता था। गाँव की जमीन पर सबका समान अधिकार था। किसान खेती करता था, लुहार, बढई, कुम्हार, धोबी, नाई, तेली आदि गाँवों की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का पेशा नहीं करता था अपितु एक दूसरे द्वारा निर्मित वस्तु का आदान-प्रदान करता था। नगर और गाँव अपनी-अपनी इकाईयों में पूर्ण तथा एक दूसरे से असम्बद्ध थे। भारतीय जीवन को सन्तुलन और स्थिरता प्रदान करने में इस सुदृढ़ तथा सुनिश्चित कार्य विभाजन प्रणाली को सभी इतिहासकारों ने एक मत से स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स लिखते हैं – “भारत की अतीत का राजनीतिक स्वरूप चाहे कितना ही बदला हुआ दिखाई देता हो, पर प्राचीन से प्राचीन काल से लेकर १९वीं शताब्दी के पहले दशक तक उसकी सामाजिक स्थिति अपरिवर्तित ही बनी रही है।”^१ देश में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ अनेक सामाजिक संघटनों में विघटन और परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के पीछे भारत की स्थिर आर्थिक व्यवस्था नहीं अपितु जातियों उपजातियों में विभक्त देश तथा एकता का अभाव था। अंग्रेजों द्वारा भारत में जो शासन नीति अपनाई गयी वह अन्य विदेशी शासकों से भिन्न थी। शक, हूण, यवन जो भी विदेशी यहाँ आये उनका मूल उद्देश्य धन लूटना तथा भारतीय राजाओं पर प्रभुत्व स्थापित करना था। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत से न सिर्फ धन लूटा तथा यहाँ के

राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया, अपितु यहाँ आर्थिक आधार की तह तक जाकर यहाँ के उद्योगों पर भी प्रहार किया। परिणामस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था चरमरा गयी तथा भारतीय जीवन पूर्णतः असंतुलित हो गया।

ब्रिटिश-साम्राज्य द्वारा जो औद्योगिक नीति अपनाई गई। उसने भारतीय जीवन को दो तरह से प्रभावित किया। "प्रथम उससे सुसंगठित ग्राम-व्यवस्था छिन्न-विछिन्न हो गयी। द्वितीय इस छिन्न-विछिन्न व्यवस्था द्वारा जो अराजकता फैली वही एक नूतन प्रणाली के उद्भव का आधार बनी।"^६ प्रायः किसी भी किया के दो पक्ष होते हैं - ध्वंसात्मक एवं रचनात्मक। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य ने ध्वंसात्मक क्रिया के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। ऐसा कोई पक्ष व्यवस्था में व्यवहार में नहीं था जिससे जनता को कोई राहत होती। परिणामस्वरूप समस्त भारतवासी घोर संकट में पड़ गये। १९वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए ही सही एक प्रगतिशील कार्य भारत में किया। वह था, जर्जर सामन्ती व्यवस्था को तोड़ने का कार्य। परन्तु १८५७ के विद्रोह के बाद ब्रिटिश-साम्राज्य ने अपनी नीति बदल दी और अपनी भलाई देशी सामंतों को संरक्षण देने में समझा। इस तरह ब्रिटिश साम्राज्य में अपने औद्योगिक विकास के लिए एक नवीन वर्ग जमींदार वर्ग को जन्म दिया। जमींदारी प्रथा की स्थापना ने व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा को प्रबल किया। लार्ड कार्नवालिस ने १७६३ में बंगाल, बिहार, उड़ीसा में जो जमींदारी प्रथा लागू की, बाद में उसे बम्बई, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश आदि में लागू किया गया तथा सन् १८२० में सर टामस मुनरो ने 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' लागू करके जमीन को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में बदल दिया। जमीन का क्रय-विक्रय भी होने लगा। इससे पहले न तो जमीन को खरीदा जा सकता था न ही बेचा जा सकता था। जमीन की उपज के सम्बन्ध में अब तक जो सामूहिक स्वामित्व की भावना थी वह समाप्त हो गयी। पहले जो कृषि उत्पादन गाँव में रह जाता था। उसके लिए अब विनिमय बाजार की आवश्यकता हुई। किसान का जीवन बाजार पर अवलम्बित हो गया। खेतों में उन वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जाने लगा जो व्यावसायिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद थी। सम्पूर्ण पैदावार और निर्मित वस्तुओं का बाजार के अधिकार में आने से पैसे वालों का एक नया वर्ग सेठ-साहूकार के नाम से प्रकाश में आया। इस वर्ग ने किसानों की आवश्यकताओं के समय उनको कर्ज देकर अपना दास बना लिया। इनके कर्ज में डूबकर किसान आजीवन उबर नहीं पाता। अपनी जमीन से बेदखल होकर श्रमिक बनने को विवश हो गया।

सन् १९१४ में शुरू हुए प्रथम महायुद्ध ने विश्व-स्तर पर साम्राज्यवादी व्यवस्था को प्रभावित किया। इस युद्ध के दौरान अंग्रेजों ने भारत की जनता तथा भारतीय भौतिक सम्पत्ति का पूरा-पूरा प्रयोग किया। सन् १९१७ में इंग्लैण्ड ने भारत सरकार को स्वेच्छा से दस करोड़ पाउण्ड का खिराज देने को बाध्य किया। इसके साथ ही अंग्रेजों ने भारतीय पूँजी को कुछ सुविधाएँ भी प्रदान की। परन्तु कुल मिलाकर सामान्य जनता को बढ़ती हुयी कीमतों की कठिनाई आदि के सिवा कुछ नहीं मिला।

सन् १९१८-१९ में देशव्यापी अकाल पड़ा। बम्बई, पंजाब, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, हैदराबाद और मैसूर के राज्यों में अकाल की स्थिति बहुत व्यापक एवं गम्भीर थी। यह अकाल प्राकृतिक कारणों से कम मानव निर्मित कारणों से अधिक विकराल था। उत्पादन होते हुए भी निर्यात एवं शोषण की अधिकता के कारण जहाँ एक तरफ पूँजीपति, जमींदार, मुनाफाखोर वर्ग और अधिक समृद्ध हो रहा था वहीं जनसाधारण दरिद्र से दरिद्रतर होता जा रहा था।

औद्योगीकरण के कारण पुराने उद्योगों में लगे लोग अपनी पुश्तैनी कला कौशल से वंचित हो गये। ये कारीगर पूर्णतः बेकार होकर खेती की तरफ बढ़े। जिस कारण भूमि पर अत्यधिक दबाव पड़ा तथा भूमिहीन किसान की समस्या उत्पन्न हुई। जिसका रजनी पामदत्त ने यह आँकड़ा प्रस्तुत किया है — "मद्रास में १९०१ से १९२१ के बीच खेत में काम करने वाले भू-स्वामियों की संख्या १६ प्रति सहस्र से बढ़कर ४६ प्रति सहस्र हो गयी। किशमी जोतने वाले किसानों की संख्या इसी समय १५७ प्रति हजार से २२५ प्रति हजार तक पहुँच गयी। संयुक्त प्रदेश में १८१६ से १९२१ के बीच में ४६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। पंजाब में जहाँ १९११ में यह संख्या ६,२६,००० थी, १९२१ में १०,०८,००० हो गयी, पंजाब की जनगणना रिपोर्ट से इसका पता चलता है।" इस नई भूमि व्यवस्था के परिणामस्वरूप अनेक नये वर्गों का जन्म हुआ जिसमें अंग्रेज पूँजीपति, भारतीय पूँजीपति, जमींदार, काश्तकार, मजदूर आदि प्रमुख थे। सामन्तवादी समाज व्यवस्था में धन संचय को अधर्म तथा अन्न संचय को धर्म माना जाता था। वहीं अब धन संचय धर्म बन गया। सम्पत्ति-संग्रह का स्थान कारखाने तथा बैंक बन गये। इस पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण हो गया। बहुसंख्यक जनता दरिद्र हो गयी तथा सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक जीवन मूल्य परिवर्तित हुए। इस असंतोष के कारण कई जगह काश्तकारों के विद्रोह भी हुए परन्तु संगठन के अभाव में ये विद्रोह सफल नहीं हुए।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् कई नये अर्थशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त प्रकाश में आये जिनमें दो पक्ष थे।

एक ओर 'मानोपोलीज' और 'कार्टेल्स' की स्थापना द्वारा पूँजीपतियों ने पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता को मिटाकर अपने वर्ग के सामूहिक हितों की रक्षा का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर सन् १९१७ में रूस की बोलशेविक क्रान्ति सफल होने के कारण अर्थशास्त्र की समाजवादी धारणाओं ने सिद्धान्त से आगे बढ़कर व्यावहारिक क्षेत्र में कदम रखा। विश्व के आर्थिक जगत में इन दोनों सिद्धान्तों का जो प्रभाव हुआ उससे भारत भी अछूता नहीं रह सका। भारतीय जनता में भी आर्थिक चेतना का विकास हुआ। धर्म, जाति आदि साम्य-वैषम्य को मूल विशुद्ध आर्थिक आधार पर नये वर्गों का संगठन प्रारम्भ हुआ।

१९२८-३३ काल को विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के आम आर्थिक संकट के नाम से जाना जाता है। अधिक उत्पादन के इस विश्वव्यापी संकट ने संसार के आर्थिक सम्बन्धों की पूँजीवादी व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने पर आई इस आपत्ति का बोझ अपने गुलाम देशों पर डालने का प्रयत्न किया। भारत में कृषि संकट से मिलकर इस आम संकट का रूप और अधिक विकराल हो गया। इस संकट का सीधा असर कृषि पर पड़ा। कृषि उत्पादनों के कीमत में गिरावट आयी पर ब्रिटिश सरकार की नीति के कारण पक्के माल की कीमतें ज्यों की त्यों रहीं। इस तरह कच्चे तथा पक्के माल की कीमतों के अन्तर को बढ़ाकर ब्रिटिश बैंक पूँजीपति ने भारत के शोषण को तेज किया।

प्रथम महायुद्ध की भाँति द्वितीय महायुद्ध के समय भी भारत में उद्योगों की प्रगति हुई। एक ओर भारत युद्ध के लिए उत्पादन में लगा हुआ था तो दूसरी ओर जनता सन् १९४२ में पड़े बंगाल के भयंकर अकाल की ग्रास बन रही थी। "इस अकाल में पैंतीस लाख व्यक्ति मरे और उसके पश्चात् संक्रामक रोगों की जो बाढ़ आई उसमें बारह लाख व्यक्ति मौत के शिकार हो गये।" देश का वस्त्रोद्योग अधिकतम वस्त्रोत्पादन कर रहा था, किन्तु मृतकों के कफन के लिए भी वस्त्र अपर्याप्त था। यह अकाल की वस्तुतः प्राकृतिक कारणों से कम और मानव निर्मित कारणों से अधिक भयावह था। कुछ लोग इसे साम्राज्यवादी शोषण का परिणाम बताते हैं, तो कुछ लोग चोर बाजारी का। चाहे कोई भी कारण स्वीकार किया जाय, मुख्य उद्देश्य मुनाफा है। युद्ध काल मुनाफाखोरों को स्वर्णिम अवसर देता है अतः इस युद्ध काल में भी भारत में मुनाफाखोरों की श्री-वृद्धि हुयी। इस भयावह सामाजिक समस्याओं के समान ही तत्कालीन राजनीतिक समस्याएँ भी थी।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास बताता है कि एक राजनीतिक दर्शन के रूप में मार्क्सवाद

का भारत में सूत्रपात लगभग सन् १९१८-२० तक हो गया था। इसके लिए सन् १९१७ की रुसी समाजवादी क्रान्ति, राष्ट्रीय कांग्रेस के ही अन्तर्गत विकसित समाजवादी दल की प्रवृत्तियाँ भारतीय कम्युनिस्ट तथा किसान मजदूर पार्टियों का समाजवाद विरोध आतंकवादी क्रान्तिकारियों की कार्यवाहियाँ आदि अनेक महत्वपूर्ण घटनायें हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक पहुँचते-पहुँचते भारत के सामाजिक जीवन में एक नये वर्ग भारतीय औद्योगिक पूँजीपति वर्ग का विकास होने लगा था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व इतिहास ने इसी नये औद्योगिक पूँजीपति वर्ग और उनकी प्रतिनिधि पार्टी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हाथ में सौंप दिया। साधारतः प्रारम्भ में कांग्रेस का सम्बन्ध उच्चवर्ग से ही माना जा सकता है। बहुसंख्यक अशिक्षित, भयंकर रूप से पीड़ित और असंतुष्ट किसान वर्ग की समस्याओं का कोई प्रतिनिधित्व उस समय कांग्रेस में न था। १९०५ तक श्रमिकों के साथ भी कांग्रेस का कोई सम्बन्ध न था। “२०वीं सदी के प्रारम्भ तक कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्य की वफादार सेविका मात्र थी और वास्तव में इसी उद्देश्य से उसकी स्थापना भी हुई थी।” २०वीं सदी के प्रथम चरण में तत्कालीन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट घटनाओं के घटित हो जाने के कारण देश की राजनीतिक अवस्था में विशिष्ट परिवर्तन हुआ। जिनमें प्रमुख लार्ड कर्जन की योजना के अन्तर्गत १६ अक्टूबर १९०५ में बंगाल का विभाजन। बंगाल को हिन्दू बहुल तथा मुस्लिम बाहुल हिस्सों में विभाजित करके लार्ड कर्जन ने उस दूषित सिद्धान्त का बीजारोपण किया जो आगे चलकर भारत विभाजन नामक पूर्ण वृक्ष बना।

कांग्रेस के नरमदलीय राजनीति के विरुद्ध उसके ही भीतर लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में त्याग, संघर्ष और आत्मविश्वास पर आधारित गरमदलीय विचार धारा का आरम्भ हो गया था सन् १९०६ के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन ने गरमदलीय नेताओं के गहरे प्रभाव में एक बिल्कुल नया कार्यक्रम तैयार किया जिसे कांग्रेस के पितामह दादा भाई नौरोजी ने पेश किया, इसी समय सर्वप्रथम यह धोषणा की गयी थी कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना है। इस चेतना के साथ ही सरकार का दमनचक्र भी चल पड़ा तथा १९०७ में सरकार के प्रोत्साहन से अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। सन् १९०८ में राजद्रोही सभाओं पर रोक लगाने का कानून बना। सन् १९०८ में तिलक को अपने अखबार में एक लेख लिखने के कारण छः कैद की सजा सुनाई गई। इस दण्ड के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने के लिए भारत में पहली बार बम्बई में राजनीति कारणों से श्रमिकों ने छः दिन की आम हड़ताल की।

रूस की क्रान्ति का भारत में बड़ा व्यापक असर पड़ा तथा भारत के लगभग सभी नेताओं ने क्रान्ति का स्वागत किया। लेनिन के प्रति स्वतंत्रता संग्राम के सिपाहियों की आदर भावना रही। २६ जनवरी १९१८ को बाल गंगाधर तिलक ने अपने पत्र केसरी में रूस के नेता लेनिन लेख लिखा तथा महात्मा गाँधी भी बोलशेविक आदर्शों के प्रशंसक थे। जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह आदि भी लेनिन से प्रभावित थे।

१८ मार्च १९१९ में ब्रिटिश सरकार ने रौलेट एक्ट पास किया। इसमें सरकार को किसी भी वक्त किसी को गिरफ्तार करने का हक दिया तथा पुलिस के हाथ में सारे अधिकार सौंप दिये गए। इस एक्ट के विरुद्ध ६ अप्रैल १९१९ ई० को देशव्यापी सत्याग्रह आरम्भ हुआ। हड़तालें, जुलूस, प्रदर्शन आदि बड़े पैमाने पर हुए लेकिन इस आन्दोलन को सरकार ने फौजी ताकत से दबा दिया। “जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड इसी समय हुआ जिसमें सरकारी रिपोर्ट के अनुसार चार सौ व्यक्ति मरे और दो हजार के लगभग घायल हुए।”^{१०}

सितम्बर १९२० में असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। यह आन्दोलन जोर-शोर से चलता रहा। विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाना, सरकारी नौकरियाँ, अदालत और स्कूल कालेजों को छोड़ने का सिलसिला चलता रहा। इसी समय यह भावना जागृत हुई कि राष्ट्रीय आन्दोलन किसान-मजदूर सहयोग लेकर आगे बढ़े। ३० अक्टूबर १९२० को बम्बई में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस का पहला अधिवेशन लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुआ। १९२२-२३ तक भारत के औद्योगिक केन्द्रों में जिसमें बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर और लाहौर प्रमुख थे, साम्यवादी समूह तैयार होने लगे। बम्बई में श्रीपाद अमृत डागे ने १९२१ में गाँधी बनाम लेनिन पुस्तक प्रकाशित कराई और १९२२ में उन्होंने ‘सोसलिस्ट’ पत्र भी निकाला। बम्बई के नौजवानों में मार्क्सवादी विचारों के प्रचार में इस पत्र ने काफी योग दिया लाहौर दल के नेता अर्थशास्त्र के प्रवक्ता गुलाम हुसैन थे, उन्होंने उर्दू में ‘इन्कलाब’ नामक पत्र निकाला। विभिन्न नगरों में तैयार हुए साम्यवादी समूह यद्यपि और अभी कोई अखिल भारतीय संगठन नहीं बना पाये थे, फिर भी भारतीय राजनीतिक जीवन इससे प्रभावित होने लगा। इससे पहले कि ये समूह अपना कोई अखिल भारतीय संगठन बना पाते, अंग्रेजी सरकार की दमन नीति चलने लगी। अप्रैल १९३४ में ब्रिटिश सरकार ने वह मुकद्मा शुरू किया जो भारत के राजनीतिक इतिहास में ‘कानपुर षडयन्त्र केस’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरकार का लक्ष्य था साम्यवादियों के बढ़ते प्रभाव को रोकना।

नवम्बर १९२७ में ब्रिटिश सरकार ने भारत के शासन-विधान की जाँच करने के उद्देश्य से एक आयोग-साइमन कमीशन भेजा, जिसमें एक भी भारतीय नहीं था, इस नियुक्ति ने भारत भर में साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन की नई लहर पैदा कर दी। जहाँ भी यह कमीशन गया, साइमन लौट जाओ तथा काले झण्डों ने उसका स्वागत किया। "सन् १९२८ में नौजवान भारत सभा का जो घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, उसमें कहा गया था कि जनता की व्यापक क्रान्ति ही भारत को साम्राज्यवादी पंजों से मुक्ति दिला सकती है।"^{११}

दिसम्बर १९२६ में काँग्रेस का जो वार्षिक अधिवेशन नेहरू जी की अध्यक्षता में लाहौर में हुआ उसमें पूर्ण-स्वाधीनता के लिए फिर से सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने का तथा २६ फरवरी, १९३० को पूरे देश में पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाने का निश्चय किया। लेकिन गाँधी जी ने वाइसराय के सामने ग्यारह शर्तें रखीं और लिखा कि यदि उन्हें मान लिया जाय तो आन्दोलन रोक लिया जायेगा। इस निर्णय के सम्बन्ध में नेहरू जी लिखते हैं "कुछ राजनीतिक और समाज सुधारों की चाहे वे अच्छे ही क्यों न हो, फेहरिस्त उस समय पेश करना, जबकि हम आजादी की दृष्टि से बातें कर रहे थे। क्या मतलब रखता था।"^{१२} इन कमजोरियों के साथ आन्दोलन शुरू हुआ। परन्तु समस्त भारत में सत्याग्रह का जो दौर इस बार शुरू हुआ वह स्वराज्य प्राप्ति तक न रुक पाया। जेलों में बाढ़ सी आ गयी। धीरे-धीरे जन आन्दोलन ने गाँधी जी की अहिंसात्मकता की सीमाओं को तोड़ना शुरू किया। आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा था लेकिन पाँच मार्च को गाँधी जी और लार्ड इरविन के बीच समझौता हो गया। लोग इस समझौते से अत्यन्त क्षुब्ध थे। जैसा की कराची अधिवेशन के एक प्रतिनिधि के शब्दों में "यदि गाँधी जी के सिवा किसी और ने इस तरह का समझौता किया होता तो लोग उसे उठाकर समुद्र में फेंक देते।"

आन्दोलन की इस तरह समाप्ति से साधारण जनता के साथ ही साथ काँग्रेस के कुछ सदस्यों तथा कुछ नेताओं में भी काँग्रेसी नीतियों के प्रति असंतोष उत्पन्न हुआ। काँग्रेस के अन्दर ही वामपक्षी ताकतें उभरकर अपने अस्तित्व की अभिव्यक्ति करने लगी। कम्युनिस्ट पार्टी के गैर-कानूनी करार दिये जाने पर साम्यवादी लोग काँग्रेस में अपने क्रियाकलाप बढ़ाने लगे।

सन् १९३४ में काँग्रेस समाजवादी दल और किसान मजदूर संगठनों ने जिनमें अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस, लाल ट्रेड यूनियन काँग्रेस और राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन प्रमुख थे। संयुक्त रूप से साम्राज्यवाद विरोधी प्रदर्शनों का आयोजन किया। इस संयुक्त मोर्चे ने किसानों को भी प्रभावित किया।

१९३६ में पहली बार भारत के किसानों ने मई दिवस के कार्यक्रम में भाग लेकर मजदूर किसान एकता की परम्परा की नींव डाली। भगतसिंह, बटुकेश्वर की फाँसी तथा चन्द्रशेखर आजाद के शहीद होने के बाद यशपाल को दल का कमाण्डर नियुक्त किया गया। यशपाल शासन तंत्र के परिवर्तन के साथ शासन पद्धति में भी परिवर्तन चाहते थे। उनका विचार था कि "हमारा लक्ष्य आतंकवाद नहीं है। आतंक का मार्ग क्रान्ति में परिणत होगा और क्रान्ति सर्वसाधारण जनता की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता में परिणत होगी।"^{१३} यशपाल के साथ-साथ दल के कई अन्य सदस्यों के विचार में भी परिवर्तन आया तथा इनका हिंसात्मक क्रान्तियों में विश्वास टूटने लगा और अन्त में क्रान्तिकारियों ने सामूहिक रूप से अपने आपको कम्युनिस्ट पार्टी में विलीन कर दिया। जिससे कम्युनिस्ट पार्टी की शक्ति बढ़ी तथा भारत में मार्क्सवादी-समाजवादी विचारधारा का प्रभाव क्षेत्र व्यापक हुआ।

सन् १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने गर्वनमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के नाम से एक नया कानून बनाया, जिसके आधार पर काँग्रेस ने चुनाव लड़ने का निश्चय किया यद्यपि इसके पीछे पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति का भी निश्चय था। चुनाव में काँग्रेस की विजय हुई तथा सात प्रान्तों में काँग्रेस मंत्री मण्डल का निर्माण हुआ जो १९३७-३९ तक काम करता रहा। अंग्रेजों द्वारा काँग्रेस की माँग को अस्वीकार किये जाने के विरोध में १९३९ में नेहरू जी ने त्यागपत्र दे दिया।

मार्च १९४२ में 'क्रिप्स मिशन' भारत भेजा गया जो पूर्णतः असफल हो गया। अगस्त १९४२ में कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में 'भारत छोड़ो' का ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित हुआ। जिसमें स्पष्ट रूप से पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की गयी तथा कांग्रेस के सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। पूरे भारत में भयानक रूप से जोड़फोड़ की घटनाएँ हुई। ब्रिटिश सरकार ने इसके दमन का पूर्ण निर्मम प्रयास किया पर पूर्ण सफल न हो सकी। क्रान्ति कुछ दब अवश्य गयी परन्तु इसकी आग धीरे-धीरे सुलगती रही जो फरवरी १९४६ में एक ज्वालामुखी के रूप में प्रकट हुयी तथा अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। १५ अगस्त, १९४७ को अंग्रेज एक राष्ट्र भारत को दो राष्ट्र हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान बनाकर चले गये।

२. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ का स्थापना अधिवेशन तथा उपलब्धियाँ

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील धारणाएँ भारतेन्दु युग से ही विद्यमान थी। विकराल परिस्थितियों तथा युग यथार्थ ने राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के समक्ष १९३५-३६ में दो विकल्प प्रस्तुत किये – वे जनमानस की आकांक्षाओं के अनुरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी भूमिकाओं की ओर ले चले या जनसाधारण

तथा जनसमर्थन से कटने का रिस्क ले। ठीक यही स्थिति साहित्य के सन्दर्भ में भी रही। युग जीवन के यथार्थ ने साहित्यकारों के समक्ष भी यही विकल्प प्रस्तुत किया। साहित्य को निराशा, जड़ता, कल्पना और सौन्दर्य के कृत्रिम आवरणों से बाहर निकाल कर उसे जनमानस की इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप यथार्थ के प्राणवान सन्दर्भों में रूपायित करते हुए एक प्रगतिशील समाजवादी आकृति दी जाय। दूसरे विकल्प के रूप में जनमानस की आकांक्षाओं की अवहेलना कर यथार्थ जीवन से कटकर, यथार्थ मानव-मूल्यों से पलायन कर साहित्य तथा साहित्यकार दोनों के निःशेष हो जाने का भयावह खतरा उठाया जाय। इस स्पष्ट विकल्प के कारण अविलम्ब निर्णय लिया गया, जिसके परिणामस्वरूप 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना

अगस्त १९३४ में सोवियत संघ में सोवियत लेखकों का पहला अधिवेशन माक्सिम गोर्की की अध्यक्षता में हुआ जिसमें सोवियत संघ के प्रमुख लेखकों के साथ चालीस विदेशी लेखकों ने भी भाग लिया। इस अधिवेशन में जिन महत्वपूर्ण विदेशी लेखकों ने भाग लिया उनमें मार्टिन एंडरसन निक्सो, हुलाची, आंद्रेमालरो, जीन रिचर्ड ब्लाक, याकूब कादरी, विली ब्रेडेल, थ्योडोर, प्लीवियर, लुई अरागां, जोहान्सबेवर, अन्नाबेल विलियम्स प्रमुख थे। इस अधिवेशन के प्रमुख लेख थे – मैक्सिम गोर्की – सोवियत साहित्य, कार्ल राडेक – समकालीन विश्वसाहित्य और सर्वहारा कला के कार्य, निकोलाई बुखारिन – काव्य और काव्यशास्त्र तथा सोवियत रूस में कविता की समस्याएँ, ए०आई० स्टेट्स्की – सोवियतों के झंडे के नीचे, समाजवाद के झंडे के नीचे। इन लेखों पर खुली बहस हुई जिसमें सैकड़ों लेखकों ने भाग लिया था। जुलाई १९३५ में प्रसिद्ध फ्राँसीसी साहित्यकार हेनरी बरबूज के प्रयत्नों से पेरिस में एक वर्ल्ड कॉंग्रेस आफ राइटर्स फॉर डिफेन्स ऑफ कल्चर बुलायी गयी। माक्सिम गोर्की, आंद्रेमालरो टामसमान, रोमारोला जैसे विश्व विख्यात लेखक इसमें संयोजक थे। यह प्रथम अवसर था जब दुनिया के लगभग सभी सभ्य राष्ट्र के साहित्यकार विचार विमर्श के लिए एकत्र हुए। इस सम्मेलन का उद्देश्य साम्राज्य के दमन के कारण विचार स्वतन्त्रता के लिए जो खतरा उत्पन्न हो गया था उसपर विचार करना तथा इन विषम परिस्थितियों में लेखक के अधिकारों की रक्षा का कोई ठोस हल निकालना था। इस सम्मेलन के साहित्यकारों की विशेष सहानुभूति फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद के विरोध में चल रहे मजदूर और मेहनतकश मध्यवर्ग के आन्दोलनों के साथ थी, क्योंकि वे समझते थे कि आन्दोलनों के द्वारा ही लेखक की आजादी, अधिकार और संस्कृति की

रक्षा सम्भव है अन्यथा नहीं। सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि लेखक आपनी रचनाओं द्वारा समाज की इन प्रगतिशील शक्तियों का समर्थन करें। इस सम्मेलन के पश्चात प्रगतिशील लेखकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण पेरिस में किया गया। इस संस्था का पहला अधिवेशन जून १९३५ में मैक्सिम गोर्की, आद्रजीद, ई.एम. फोस्टर, आद्रे मालरो, थामस मान आदि के नेतृत्व में हुआ। संसार के अन्य राष्ट्रों के लिए प्रगतिशील संगठन अब एक कल्पना न होकर यथार्थ रूप में संगठित होने लगा। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् १९३५ में लन्दन में बने भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने अपने आपको इस अन्तर्राष्ट्रीय संघ से सम्बद्ध कर दिया। "१९३५ में ही लन्दन के प्रवासी भारतीयों में से कुछ समाजवादी विचारधारा के बुद्धिजीवियों ने लन्दन में एक चीनी रेस्ता के तहखाने में अपनी बैठक की और 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' (इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन) की स्थापना करने तथा उसे संस्कृति की रक्षा के लिए विश्व लेखक अधिवेशन से अंगीभूत कराने का निश्चय किया।"^{१४} इस संघ की बुनियाद रखने वाले युवकों में सज्जाद जहीर, डा० मुल्कराज आनन्द, डा० एम०डी० तासीर, मोहम्मद अली, डा० ज्योति घोष प्रमुख थे। उस समय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रसिद्ध नेता लंदन के साथियों के बारे में लिखते हैं " हम धीरे-धीरे सोशलिज्म की ओर प्रवृत्त होते जा रहे थे। हमारा दिमाग एक फलसफे की खोज में था, जो हमें समाज की दिन व दिन बढ़ रही पेचीदगियों को समझने और उनको सुलझाने में मदद दे सकें। हमें इस बात पर इत्मीनान नहीं होता था कि इंसानियत पर हमेशा से मुसीबतें और आफतें रही हैं और हमेशा रहेंगी। मार्क्स और दूसरे समाजवादी लेखकों की किताबें हमने बड़े शौक से पढ़ना शुरू कीं। जैसे-जैसे हम अपने अध्ययन को बढ़ते, आपस में बहस करके ऐतिहासिक, सामाजिक और दार्शनिक समस्याओं को हल करते, उस अनुपात से हमारे दिमाग रोशन होते और हमारे मन को शान्ति प्राप्त होती जाती थी।"^{१५} लन्दन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने जो घोषणा पत्र तैयार किया उसे भारतीय लेखकों के पास भी भेजा। प्रेमचन्द ने 'हंस' जनवरी १९३६ में लन्दन में बने भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ को न सिर्फ अपनी पूरी सहानुभूति दी अपितु उसके घोषणा पत्र का सारांश छापा तथा प्रचार-प्रसार के लिए 'हंस' को समर्पित भी किया। प्रेमचन्द ने भारत में संगठन की नींव डालने का जिम्मा लिया और 'हंस' को इसका माध्यम बनाया। घोषणा पत्र के साथ जोड़ी गयी टिप्पणी में प्रेमचन्द लिखते हैं, "हमें यह जानकर सच्चा आनन्द हुआ है कि हमारे सुशिक्षित और विचारशील युवकों में भी साहित्य में एक नई स्फूर्ति और जागृति लाने की धुन पैदा हो गयी है। लन्दन भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की इस उद्देश्य से बुनियाद डाली गई और उसने अपना जो मेनीफैस्टो भेजा है, उसे देखकर यह आशा होती है कि अगर यह समा

अपने इस नए मार्ग पर जमी रही तो साहित्य में नवयुग का उदय होगा।”^{१६}

प्रेमचन्द हिन्दी उर्दू के संयुक्त मंच ‘हिन्दुस्तान अकादमी’ के वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने गये, जहाँ उनकी मुलाकात फिराक, अहमद अली, दयानारायण निगम और सज्जाद जहीर से हुई। प्रगतिशील लेखक संघ को व्यापक पैमाने पर सारे भारत में संगठित करने की बात तय हुई। शिवदान सिंह चौहान ने अपने एक लेख में लिखा है कि “सज्जाद जहीर के भारत वापस आ जाने पर दिसंबर १९३५ के अंतिम दिनों में इलाहबाद में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का गठन कर लिया गया था और इसके प्रस्तावित घोषणा पत्र पर निराला और पंत ने भी हस्ताक्षर किये थे।.....प्रगतिशील लेखक संघ को प्रारम्भ में ही टैगोर, नेहरु, जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव आदि के सहयोग का आश्वासन प्राप्त हो गया था।”^{१७}

प्रगतिशील लेखक संघ के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए सैयद सज्जाद जहीर अपनी पुस्तक रोशनाई में लिखते हैं “जब हमने प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन का रुख देश की जनता और मजदूरों, किसानों और मध्यवर्ग की ओर होना चाहिए। उनको लूटने वालों और उनपर अत्याचार करने वालों का घोर विरोध करना, अपनी साहित्यिक रचनाओं से जनता में चेतना, गति, क्रियाशीलता और एकता उत्पन्न करना और उन तमाम अवशेषों और प्रवृत्तियों का विरोध करना जो जड़ता, प्रतिक्रिया, निरुत्साह उत्पन्न करती है, हमारा मुख्य कर्तव्य ठहरा। इसी से फिर दूसरी बात निकलती है और वह यह कि यह सब कुछ तभी सम्भव था जब हम चेतन रूप से देश के स्वधीनता संघर्ष और देश की जनता की अपनी स्थिति सुधारने के आन्दोलन में भाग ले। सिर्फ दूर से तमाशाई न हो बल्कि सामर्थ्य भर अपनी योग्यता के अनुसार स्वतंत्रता सेना के सिपाही बनें। लेकिन इसका यह अर्थ अवश्य ही था कि वे राजनीति से अलग और उदासीन भी नहीं हो सकते। प्रगतिशील लेखक के मन में मानव जाति से स्नेह और गहरी सहानुभूति जरूरी है। बिना मानव प्रेम स्वतंत्रता की इच्छा और जनतंत्रवाद के, प्रगतिशील लेखक होना सम्भव नहीं। इसी कारण हम खुल्लम खुल्ला और जानबूझ कर आन्दोलन का सम्बन्ध देश के स्वधीनता जनतंत्रवादी आन्दोलन के साथ जोड़ना चाहते थे। हम चाहते हैं कि प्रगतिशील बुद्धिजीवी मजदूरों, किसानों, दरिद्र और पीड़ित जनता से मिलें, उनके राजनीतिक और सामाजिक जीवन का अंग बनें। उनके जलसें और जुलूसों में जाएं और उन्हें अपने जुलूसों और कांग्रेसों में बुलायें इसीलिए हम अपने संगठन में इस बात पर अधिक जोर देना चाहते थे कि बुद्धिजीवीयों के लिए साहित्य रचना के साथ-साथ जन-जीवन के साथ अधिक से अधिक सम्पर्क करना आवश्यक है बल्कि इनके बिना नए साहित्य की रचना हो ही नहीं सकती। इसीलिए हम चाहते थे कि हमारे संघ की शाखाएँ एकान्तप्रिय विद्वानों की टोलियों न हो, बल्कि उनमें हरकत भी हो। साहित्यिक गोष्ठियों

में दूसरे लोग भी आए। लेखकों की रचनाओं पर खुली बहसें हों। लेखक और कवि साधारण लोगों से मिलते-जुलते रहें। उनमें घुले रहें, उनसे सीखें और उन्हें सिखाएं। हमारा संघ लेखकों का संगठन होते हुए और साहित्य रचना पर अधिक से अधिक ध्यान देते हुए भी "अंजुमने-तरक्की-ए उर्दू अथवा हिन्दी साहित्य सम्मेलन न बन जाए, गतिमान और सजीव संस्था बने, जिसका जनता से सीधा और स्थायी सम्पर्क हो।"^{१८}

इन सभी उद्देश्यों के लिए लखनऊ में हुए प्रथम अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक सम्मेलन से नियोजित एवं संगठित आन्दोलन के रूप में प्रगतिवाद का प्रारम्भ हुआ।

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन ६ और १० अप्रैल, १९३६ में लखनऊ में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन की अध्यक्षता प्रेमचन्द ने की। प्रगतिशील लेखकों का यह अधिवेशन अनेक दृष्टि से ऐतिहासिक तथा महत्त्वपूर्ण था। प्रथम तो यह कि साहित्य के इतिहास में यह प्रथम अग्रसर था, जब पूरे हिन्दुस्तान के विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखक एक मंच पर एकत्रित हुए। दूसरे इस सम्मेलन में इस विचार को पहली बार तर्कसंगत रूप से स्थापित किया गया कि साहित्य जीवन से अलग कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है अपितु वह एक ऐसा सामाजिक उत्पादन है जो सामाजिक जीवन तथा परिवेश को प्रभावित करता है। तीसरे इस सम्मेलन में नये प्रकार के साहित्य रचना का नारा दिया गया जिसमें अपनी परम्परा को स्वीकारते हुए प्रगतिशील लेखकों को अपनी परम्परा का सच्चा दावेदार साबित किया गया। चौथे इस सम्मेलन में लेखकों की एकता का आह्वान किया गया और कहा गया कि अनेक मुद्दों पर अपनी अलग-अलग राय रखते हुए भी कुछ आधारभूत मुद्दों पर लेखकों का एक मत होना आवश्यक है। प्रेमचन्द ने अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा कि साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा तो जीवन की आलोचना है। रीतिवादी रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए प्रेमचन्द ने कहा "हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बांधा करते थे। कवियों पर व्यक्तिवाद का रंग चढ़ा हुआ था। प्रेम का आदर्श वासनाओं को तृप्त करना था और सौन्दर्य का आँखों को। इन्हीं श्रृंगारिक भावों को प्रकट करने में कवि मण्डली अपनी प्रतिभा और कल्पना के चमत्कार दिखाया करती थी।"^{१९} यह जड़ता तथा ह्रास की स्थिति है।

प्रगतिशील लेखक संघ के नाम के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने कहा यह नाम गलत है, साहित्यकार या

कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। आज हमारी साहित्यिक रुचि तेजी से बदल रही है इसके साथ ही साथ हमें सुन्दरता की भी कसौटी बदलनी होगी – “हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था.....उसके लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है उन बच्चों वाली गरीब रूपरहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है। उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होठों, कपोलों और भौहों में सुन्दरता का वास है। उसके उलझे बालों, पपड़ियाँ पड़े होठों और कुम्हलाए गालों में सौन्दर्य का प्रवेश कहाँ।”²⁹ इस तरह प्रेमचन्द ने साहित्य का सम्बन्ध जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से जोड़ने का आग्रह किया। मानव जीवन और समाज की मान्यताओं, परम्पराओं और मूल्यों में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। इसीलिए हमारे साहित्य को भी उनके अनुरूप नया स्वरूप धारण करना चाहिए।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने साहित्यिक रूढ़िवाद, व्यक्तिवाद, कुंठित सौन्दर्य दृष्टि आदि पर प्रहार किया तथा साहित्यकारों से ऐसे साहित्य की माँग की जो क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म तथा सामाजिक यथार्थवाद की तरफ बढ़ाने वाली हो।

प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन २४-२५ दिसम्बर, १९३८ को कलकत्ता के आशुतोष हाल में हुआ। इस सम्मेलन का अध्यक्ष श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर को चुना गया। बीमारी के कारण रवीन्द्रनाथ इस अधिवेशन में उपस्थिति न हो सके। लेकिन उन्होंने लिखित संदेश भेजा जिसमें मुस्तफा कमाल पाशा के निधन को एक बड़ी क्षति बताया। पूर्व के सांस्कृतिक पतन के कारणों का उल्लेख करते हुए कहा – “अतीत से चिपके रहने की आदत से हमें बड़ी यातनाएँ और अपमान झेलने पड़े हैं जिसका परिणाम हुआ कि समय के प्रवाह में पश्चिम ने स्वयं हमारी सभ्यता को ही नष्ट कर दिया।”³⁰ साहित्यकारों को संदेश देते हुए उन्होंने कहा कि “जनता से अलग रहकर हम बिल्कुल अजनबी बन जाएंगे। साहित्यकारों को मनुष्यों से मिलजुल कर उन्हें पहचानना है। मेरी तरह एकान्तवासी रहकर उनका काम नहीं चल सकता। मैंने एक मुद्दत तक समाज से अलग रहकर अपनी साधना में जो गलती की है, उसे समझ गया हूँ मैं और यही वजह है कि यह संदेश दे रहा हूँ। मेरी चेतना का तकाजा है कि मानवता और समाज से लगाव रखना चाहिए और प्रेम करना चाहिए। अगर साहित्य मानवता से तादात्म्य स्थापित न कर सका तो वह अपने लक्ष्य और आकांक्षाओं को पाने में विफल रहेगा। यह सत्य मेरे दिल में उस चिराग की तरह रोशन

है जिसे कोई दलील या तर्क वितर्क बुझा नहीं सकता।^{२३}

इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र में रूढ़िवादिता तथा कोरी यथार्थवादिता का विरोध किया गया। साहित्य तथा जनता के बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह किया गया जिससे वह विश्व निर्माण में सहायक हो। इस अधिवेशन में उन सभी प्रवृत्तियों का विरोध किया जो किसी भी तरह मानवता के शोषण में सहायक बनती हो। इस घोषणा-पत्र में संघ के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया – “हमारे संघ का उद्देश्य साहित्य और अन्य कलाओं को जो अब तक रूढ़िपंथी वर्गों के हाथों में पड़कर निर्जीव होती जा रही है उनको मुक्त कराने उनका निकट सम्बन्ध जनता से कराना और उन्हें जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम और नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है।”^{२४}

प्रगतिशील लेखक संघ का तीसरा अधिवेशन

प्रगतिशील लेखक संघ का तीसरा अधिवेशन मई, १९४२ में दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन में सभी हिन्दी लेखकों को निमंत्रित किया गया। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुआ उसे अखिल भारतीय फासीवाद विरोधी लेखक सम्मेलन के घोषणा-पत्र के रूप में प्रचारित किया गया। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार अधिवेशन के घोषणा-पत्र का एक अंश इस प्रकार था “इस भारतीय लेखकों का फासिज्म से कोई सामंजस्य नहीं है। फासिज्म कोई अपरिचित शत्रु नहीं है। फासिज्म के अनिवार्य संस्कृति विरोधी तत्व की उपेक्षा करने या उसकी ओर आँख मीचने का मतलब स्वेच्छा से अपने आपको एक बर्बर आक्रमणकारी की लम्बी और घातक गुलामी का शिकार बनाना होगा।आज की दुनिया में फासिस्ट जीत का अर्थ एक नये अन्धकार युग की शुरुआत होगी और इस संकट को दूर करने में भारतीय जनता को अपना कर्तव्य पूरा करना होगा। उन्हें सोवियत संघ की बहादुर जनता वीर चीन राष्ट्र और सारे देशों की फासिज्म विरोधी जनता के साथ एक होना होगा।.....”हम हिन्दुस्तान के महान और बहुमूल्य सांस्कृतिक उत्तराधिकार के प्रहरी हैं। फासिज्म लुटेरों से उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। अपनी रचनाओं द्वारा फासिज्म के खिलाफ अपने को दिमागी तौर पर मजबूत बनाने में हमें जनता की मदद करनी चाहिए। किताबों और पैम्फलेटों, रेडियो और सिनेमा, गानों और रंगमंच के जरिये हमें विशाल जनता के पास पहुँचना चाहिए। अपनी मातृभूमि के आह्वान पर आगे आना और मुक्ति तथा संस्कृति की दीपशिखा को प्रज्वलित रखना हमारा कर्तव्य है।”^{२५}

प्रगतिशील लेखक संघ फासीवाद विरोध के साथ ही साथ दमन विरोध को भी मुद्दा बनाया। इस प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन के कुछ समय पश्चात् बनारस में सितम्बर १९४२ में प्रगतिशील

लेखक संघ काशी शाखा ने स्थानीय साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों का एक सम्मेलन बुलाया तथा अक्टूबर १९४२ के हंस में इलाहाबाद प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से दमन और फासिज्म के खिलाफ अपील प्रकाशित की गयी। इसी वर्ष बंगाल के लेखकों और कलाकारों ने एकजुट होकर फासीवाद का विरोध किया तथा १९-२० दिसम्बर १९४२ को कलकत्ता में बंगाल के फासीवाद विरोधी लेखकों और कथाकारों का अभूतपूर्व सम्मेलन हुआ। इस समय प्रगतिशील लेखक संघ के विभिन्न अधिवेशनों का एक मुख्य उद्देश्य देश को फासिज्म के भयावह खतरे से बचाना था।

प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अधिवेशन

प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अखिल भारतीय अधिवेशन २२ से २५ मई १९४३ में बंबई में हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता श्रीपाद अमृत डांगे ने किया। इस अधिवेशन में प्रगतिशील आन्दोलन की १९४३ तक की गतिविधियों की समीक्षा की गयी। इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र में देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के परिचय के साथ ही साथ देश में व्याप्त गंभीर संकट की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए अध्यक्ष श्रीपाद अमृत डांगे ने अपने भाषण 'जनजीवन और साहित्य' के आरम्भ में ही कहा कि "साथियों और मित्रों, आज हम ऐसे अवसर पर मिल रहे हैं जब समस्त मानवता भीषण संहारी विश्वयुद्ध की विभीषिका से संत्रस्त है। चाहे आप मोर्चे पर हों अथवा घर की चहारदीवारी के अन्दर, प्रत्येक व्यक्ति का जीवन स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध युवा सभी का जीवन इस भयावह विश्वयुद्ध से आन्दोलित या प्रभावित हो रहा है।"^{२६}

इन परिस्थितियों में लेखकों के कर्तव्यों पर बोलते हुए श्री डांगे ने कहा "लेखक राष्ट्र और मानव मात्र की भावनाओं को वाणी देता है, विचारों को व्यक्त करता है, उत्साहित करता है, ढालता है और इस हैसियत से हम किसी भी तरह इस युद्ध से उदासीन नहीं रह सकते। मानव इतिहास के किसी भी काल के लेखक और विचारक जो जनता के साथ थे, उन्हीं की तरह रहते और सोचते थे, उनके प्राणों की वेदना अनुभव करते थे, कभी भी अपने को राष्ट्र-विनायक अथवा विध्वंसकारी युद्धों से अलग नहीं रख सके। ऐसे अवसरों पर उस समय के श्रेष्ठ कलाकारों ने युद्ध की समस्याओं पर विचार किया। हर तरह की कुर्बानी को लिखा और गाया। जैसा हमारे पूर्व पुरुषों ने किया अथवा हमारे समकालीन कर रहे हैं, हमारे सामने भी उसके अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं है।"^{२७} इस अधिवेशन में केवल सिद्धान्तों और कर्तव्यों का मौलिक आग्रह ही नहीं किया गया अपितु रचनात्मक कार्यों की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया गया।

इसी दौरान उर्दू के प्रगतिशील लेखकों का एक अधिवेशन अक्टूबर १९४५ में हैदराबाद में हुआ, जिसका उद्घाटन सरोजनी नायडू ने किया। किशनचन्दर और अब्बास के अतिरिक्त उर्दू के कई अन्य लेखकों ने भी भाग लिया। इस अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में किशन चन्दर ने कहा कि "अब मानव समाज इस स्थिति में पहुँच गया है और वर्ग संघर्ष इतना तेज हो गया है कि अब इस समस्या की उपेक्षा सम्भव नहीं। अब तो हमें आगे बढ़ना है अथवा हमेशा के लिए मिट जाना है, जिस प्रकार आज से सदियों पहले बहुत से जीव मिट गये और अब उनकी हड्डियों के निशान खण्डहारों की खुदाई में मिलते हैं। इसी प्रकार मानव चेतना ने यदि इस समस्या का फैसला न किया और इतिहास के तकाजे और उसके क्रान्तिकारी महत्व को न समझा, तो मानवता और उसकी सभ्यता अपने हाथों आत्महत्या करेगी।"^{२०}

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य फासीवाद का विरोध तथा सोवियत रूस और चीन के प्रति मित्रता के साथ ही साथ लेखकों को जनता से प्रतिबद्धता का आह्वान देना तथा प्रगतिशील लेखक संघ को पुनः संगठित करना था।

प्रगतिशील लेखक संघ का पांचवां अधिवेशन

प्रगतिशील लेखक संघ का पांचवां अधिवेशन मार्च १९५३ में दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र में प्रगतिशील आन्दोलन को एक व्यापक आधार देने का प्रयत्न करते हुए कहा गया कि "हमारी जनता अपने लिए उन्मुक्त और समृद्ध जीवन रचने के प्रयास कर रही है। वह विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ शान्ति और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके रखना चाहती है। हमें अपने साहित्य को मानवतावाद की भावना, जीवन में आस्था और आलोकपूर्ण भविष्य की आशा से परिपूर्ण करना है।"^{२१}

दिल्ली में हुए इस प्रगतिशील लेखक संघ के महामन्त्री पद पर कृष्णचन्दर को प्रतिष्ठित किया गया तथा रामविलास शर्मा को संकीर्णतावाद का आरोप लगाकर हटा दिया गया। वैसे तो विभिन्न सैद्धान्तिक साहित्यिक और संगठनात्मक मुद्दों पर बहस का सिलसिला प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से ही जारी रहा परन्तु इस समय तक आते-आते इस बहस ने विवाद का रूप ले लिया। यह विवाद इतना बढ़ा कि प्रगतिशील लेखक संघ का सुचारू संगठन और आन्दोलन का रूप समाप्त हो गया तथा यह एकमात्र औपचारिक संगठन का रूप ही बनकर रह गया।

प्रगतिवादी आन्दोलन की उपलब्धियाँ

प्रगतिवादी आन्दोलन की प्रथम बड़ी तथा महत्वपूर्ण उपलब्धि साहित्य के लक्ष्य तथा प्रयोजन से संबंधित है। इस आन्दोलन ने जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। सर्वप्रथम प्रगतिशील लेखकों ने ही साहित्य किसके लिए, जैसा महत्वपूर्ण प्रश्न विचारार्थ लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया तथा साहित्य को जनसाधारण के लिए तथा उनकी प्रगति के लिए स्वीकार कर इसका स्पष्ट उत्तर भी दिया। इस आन्दोलन ने लेखकों को कल्पना के आकाश से उतार कर यथार्थ की कठोर धरती पर ला खड़ा किया तथा उनका साहित्य साक्षात्कार जीवन की असंगतियों तथा समस्याओं से करवाया। निराशा पराजय तथा अनास्था के स्थान पर सप्राण, सजीव, आशाप्रद साहित्य की सृष्टि का आह्वान किया। स्वयं इस प्रकार का साहित्य रचकर समाज को एक नयी दिशा तथा गति प्रदान की। इस कारण जहाँ एक ओर जनसाधारण की आशाओं आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति मिलने लगी, वहीं दूसरी ओर युगीन राष्ट्रीयता के साथ-साथ उसमें अन्तराष्ट्रीयता और मानवतावाद का भी समावेश हुआ। इस आन्दोलन ने न सिर्फ अतिशय कल्पनावेदिता से साहित्य को मुक्ति दिलाई अपितु साहित्य को कोरी भावुकता से निकालकर बौद्धिक आधार प्रदान किया। इस आन्दोलन ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि साहित्य का सम्बन्ध सामाजिक विकास से है उसकी कसौटी समाज तथा सामाजिक जीवन है।

प्रगतिशील आन्दोलन ने पारम्परिक धीरोदत्त आदि नायकों के स्थान पर जन साधारण को नायकत्व प्रदान किया। मजदूर, किसान, चोर, डाकू आदि भी नायक के रूप में स्वीकार किये जाने लगे। इन पात्रों में अतिवादिता का विरोध होने लगा। “कथाकारों को प्रगतिवादी दृष्टिकोण ने सामाजिक यथार्थवाद के दो खतरों से बचाने का प्रयत्न किया है। एक खतरा तो मनोविश्लेषणवाद की ओर से है। जिसमें या तो शेखर और भुवन जैसे सर्वथा अहंकारी और असाधारण पात्रों की सृष्टि की जाती है अथवा इलाचन्द्र जोशी के सेक्सग्रस्त अद्भुत नायकों का निर्माण होता है। इन दोनों प्रकार के असाधारणताओं को उबारकर प्रगतिवाद ने साधारण पात्रों के निर्माण का गुर बताया।”³⁰

प्रगतिवादी आन्दोलन का लोकजीवन तथा लोक संस्कृति के पुनरुद्धार का कार्य भी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसने लोक संस्कृति के विविध पक्षों को स्पर्श करने का सराहनीय प्रयास किया फलस्वरूप देश के विभिन्न अंचलों में वहाँ की बोलियों में साहित्य सृजन करने वाले अनेक साहित्यकारों का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी साहित्य का आंचलिक उपन्यास इसी का परिणाम है। इस आन्दोलन के प्रभाव से देश में अनेक

प्रगतिशील पत्र भी निकलने लगे। बंगला में 'परिचय', हिन्दी में 'नया साहित्य', उर्दू में 'नया अदब', गुजराती में 'संस्कार' और तेलगू में अभ्युदय आदि इसके उदाहरण हैं।

अतः निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि प्रगतिवादी आन्दोलन ने साहित्य और जनजीवन की चेतना को एक नया मोड़ दिया। यही कारण है कि अन्य साहित्यकारों से लेकर कवीन्द्र रवीन्द्र और प्रेमचन्द जैसे उच्च कोटि के साहित्यकारों ने इस आन्दोलन का खुलकर समर्थन किया। यह आन्दोलन जनता को साथ लेकर चलने में ही अपनी सार्थकता मानता है।

३. हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा का प्रभाव

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा का उदय भारतेन्दु युग से पूर्व हो चुका था, जब देश में व्याप्त सामाजिक असमानता परम्परागत रूढ़ियों एवं अव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए कई संस्थाओं की स्थापना हुई थी। इन संस्थाओं में राजा राममोहनराय का 'ब्रह्मसमाज', दयानन्द सरस्वती का 'आर्यसमाज', दक्षिण की 'थियोसोफिकल सोसाइटी' एवं रामकृष्ण परमहंस का 'रामकृष्ण मिशन' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस समय की अधिकांश संस्थाएँ ईसाई धर्म प्रचार के लिए स्थापित तथा संचालित थीं। जिनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करने के साथ भारतीय समाज एवं संस्कृति में व्याप्त कुरीतियों एवं असंगतियों का न केवल आलोचनात्मक विवेचन किया बल्कि उसे दूर करने का भी प्रयास किया गया। अखिल भारतीय संस्था 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना भी इस समय तक हो चुकी थी, जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थी।

भारतेन्दु युग में पत्रकारिता का जन्म भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। पत्रकारिता के माध्यम से साहित्यकार तथा जन-सामान्य के बीच की दूरी कम हुई। यही कारण है कि इस युग का प्रत्येक साहित्यकार किसी न किसी रूप से पत्रकारिता से जुड़ा हुआ था। भारतेन्दु ने भी कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया, जिसमें 'कविवचन सुधा' (सन् १८६८) तथा 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (सन् १८७३) प्रमुख थी। इसके अतिरिक्त श्री निवासदास की 'सदादर्श' (सन् १८७७), तोताराम की 'भारतबन्धु' (सन् १८८१), बालकृष्ण भट्ट की 'हिन्दी प्रदीप' (सन् १८७७) और बद्रीनारायण 'प्रेमघन' की 'आनन्द कादम्बिनी' (सन् १८८१) आदि पत्रिकाएँ भी इसी युग में प्रकाशित हुईं। इन पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यकार का लोकजीवन से सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ। साहित्यकारों ने समाज की ज्वलंत समस्याओं का सिलसिलेवार ब्यौरा जन-जन तक इन पत्र-पत्रिकाओं द्वारा पहुँचाकर जन जागृति का कार्य किया।

१९वीं सदी में साहित्य लेखन के जिस प्रवृत्ति को मूल रूप में स्वीकार किया गया वह निःसंदेह अपने युग के सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों से पूर्ण प्रभावित थी। सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि समस्याओं पर आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं ने भारतीय समाज में जागृति पैदा कर दी थी। साहित्यकारों ने भी नारी जीवन तथा नारी समस्याओं को नई दृष्टि से देखा तथा स्वर प्रदान किया। यही कारण है इस युग में नारी के उस रूप चित्रण का विरोध किया गया, जो रीतिकाव्य में प्रमुख विषय बना हुआ था। इस युग के साहित्यकार जनजीवन एवं समाज के गतिरोध को दूर करने के लिए प्रयत्नशील थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यकारों को प्रोत्साहित करते हुए लिखा कि "जो-जो बातें तुम्हारी उन्नति और पथ का कांटा हो उनकी जड़े खोदकर फेंक दो। जब तक सौ-सौ बदनाम न होंगे, जाति-जाति से बाहर निकाल न दिये जायेंगे तब तक कोई देश भी न सुधरेगा।"³¹ इस युग का साहित्य समाज के सभी अंगों के प्रति सचेत था। इस युग का लोक साहित्य तथा ग्राम साहित्य आज भी प्रेरणा प्रदान करने वाला है। 'कविवचन सुधा' मई १८७६ में भारतेन्दु ने एक लम्बा लेख लिखा जिसमें बोलचाल की भाषा में लिखे गीतों से जनजागरण का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना ग्राम गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित पर प्रभाव पड़ता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं।"³² भारतेन्दु एक प्रान्त को नहीं अपितु हिन्दी के सम्पर्क में आने वाले सभी प्रान्तों को इस आन्दोलन से जोड़ना चाहते थे। हिन्दी के पक्षपाती होने के बाद भी देश की उन्नति के लिए लोक-भाषाओं की उन्नति को आवश्यक मानते थे। उनका विचार था लोक-भाषा में लोक हितकारी साहित्य की रचना होनी चाहिए। ग्राम साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए भारतेन्दु जी ने लिखा है कि "जिन लोगों का ग्रामीणों से संबंध है। वे गावों में ऐसी पुस्तकें भेज दें। जहाँ कहीं ऐसे गीत सुने उनका अभिनन्दन करें। इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने।"³³

इस युग की पृष्ठभूमि के रूप में एक तरफ दरबारी संस्कृति थी तो दूसरी तरफ आम जनता के लिए संघर्ष का वातावरण। इन दोनों स्थितियों के मध्य में एक ऐसे वातावरण को प्रस्तुत करना भारतेन्दु का लक्ष्य था, जो जनसाधारण के अधिकारों के लिए सहायक हो सके। साहित्य का विवेच्य विषय मात्र जनता के असंतोष को वाणी देना ही नहीं होता, अपितु सदियों से रुढ़ हुए उन कुसंस्कारों के विरुद्ध युद्ध करना भी होता है जो समाज तथा संस्कृति के अंग का रूप धारण कर चुके हैं। यह अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि

ये विचार तथा व्यवहार में इतने घुल-मिल चुके होते हैं कि इनके विरुद्ध बोलना धर्म के विरुद्ध बोलने जैसा है नये विचार चाहे कितने ही सुन्दर तथा स्वस्थ हों उसके प्रति दृष्टि सदैव संदेहपूर्ण ही होती है। भारतेन्दु युग के लेखकों ने इन सभी स्थितियों का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए अपना विरोध जारी रखा। जिनमें भारतेन्दु का नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु के इन प्रयासों की चर्चा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि "प्राचीन और नवीन के सन्धि स्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन और प्राचीन का परिवर्धित रूप प्रतीत हो न कि ऊपर से लपेटी हुई वस्तु।"³⁴

भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों में राष्ट्रीयता की भावना प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। उनकी कृतियाँ देश के प्रति समर्पित थी। इन साहित्यकारों का उद्देश्य अपने साहित्य द्वारा जनमानस में जागृति लाना तथा विकास के साथ-साथ देश को विदेशी परतंत्रता से मुक्त कराना था इस युग की लगभग सभी पत्रिकाएँ ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सक्रिय थी। यद्यपि इस युग के साहित्य का एक सुदृढ़ आधार परम्परा के अभाव में विकसित नहीं हो पाया था फिर भी इस युग की रचनाएँ सामाजिकता को ही मूल प्रश्न के रूप में रूपायित कर रही थी। सुधारवाद, नैतिकता एवं राष्ट्रप्रेम पर आधारित रचनाएँ इसकी प्रधान विशेषता रही। इस तरह हम देखते हैं कि प्रगतिशील साहित्य की पृष्ठभूमि भारतेन्दु युग में ही तैयार हो गयी थी। तत्कालीन परिस्थिति एवं पूर्व परम्परा को ध्यान में रखकर देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि तत्कालीन साहित्य सुधारवादी प्रवृत्तियों के साथ ही साथ जनजागरण के लिए भी उल्लेखनीय प्रयास किया।

भारतेन्दु युग में जो जन-जागृति का आन्दोलन शुरू हुआ वह द्विवेदी युग तक आते-आते अधिक तीव्र हो गया। यह युग हिन्दी नवजागरण का युग था। इस युग के लेखकों ने सामाजिक जीवन चित्रण को अपना दायित्व समझा। भारतेन्दु युग में सामंती प्रवृत्ति की जो धुंधली छाया विद्यमान थी द्विवेदी युगीन लेखकों ने उसका भी विरोध किया। स्पष्ट रूप से साहित्य के वर्ण्य-विषय के रूप में सामान्य जन को उतना ही महत्व प्रदान किया, जितना सामंतों को था। सन् १९२० ई० 'सरस्वती' में छपे एक लेख 'कविता का भविष्य' में तो किसान और मजदूरों को केन्द्र मानकर साहित्य लिखने का आग्रह किया गया – "अभी तक (कवि) मिट्टी के सने हुए किसानों और कारखानों से निकले हुए मैले मजदूरों को अपने काव्य का विषय बनाना नहीं चाहता था। वह राज स्तुति, वीरगाथा अथवा प्रकृति निर्देशन में ही लीन रहता था परन्तु अब क्षुद्रों की महत्ता देखेंगे।"³⁵

सामंती प्रवृत्तियों के विद्रोह की जो चिन्गारी भारतेन्दु युग में लगी थी। वह द्विवेदी युग में ज्वालामुखी

का रूप धारण कर चुकी थी। द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने तो पादरी, मौलवी, पण्डित और साधु सन्यासियों को भी हल, कुदाल और खुरपा पकड़ने की शिक्षा दी। "जब तक जीवन के आरण्य में पादरी, मौलवी, पण्डित और साधु-सन्यासी हल, कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका मन उनकी बुद्धि अनन्तकाल बीत जाने तक मलीन मानसिक जुआ खेलती रहेगी।"³⁶ इस तरह द्विवेदी युग का साहित्य भारतेन्दु युग की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा विकसित हुआ। द्विवेदी युग का साहित्य 'अतीत से वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, उपदेश से कर्म, पर प्रार्थना से स्वावलम्बन, निराशा और अंधविश्वास से आशा और विश्वास और दीनतापूर्ण नम्रता से क्रान्तिकारी उद्गार की ओर अग्रसर होता गया।"³⁷

छायावादी युग का प्रारम्भ दो महायुद्धों के उत्कर्ष और अपकर्ष के मध्य हुआ। जब देश की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था। आधुनिक युग में मध्यवर्ग का उदय औद्योगिक क्रान्ति के बाद हुआ, जो एक क्रान्तिकारी घटना थी। इस वर्ग ने ही समाज में स्वच्छंदतावादी एवं व्यक्तिवादी भावना को भी जन्म दिया। भारत में इस नये वर्ग का विकास ब्रिटिश प्रशासन के संपर्क में आने के बाद, देश में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया के साथ होता है। पाश्चात्य अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति के संपर्क से भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए। राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्रता के लिए सामाजिक क्षेत्र में नवीनता के लिए समाज संघर्षरत था। इसी समय साहित्यिक क्षेत्र में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के लिए विद्रोह हो रहा था। छायावादी कविता इसी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की देन है "वह देश की प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य काव्य के प्रभावों को ग्रहण करती हुई.....राष्ट्रीय जागरण के कोड में पनपी और फूली-फली।"³⁸ छायावादी कवियों के काव्य में आत्मपरक अभिव्यक्ति प्रमुख थी परन्तु यह आत्माभिव्यक्ति व्यक्ति के सीमित दायरे से ऊपर थी। इस समय की रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति असंतोष की भावना भी पर्याप्त रूप से देखी जा सकती है। विद्रोही कवि निराला तथा परिवर्तन के कवि पंत ने भी युग की विषमताओं के प्रति क्षोभ व्यक्त किया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी छायावाद के सम्बन्ध में लिखते हैं "छायावादी कवि सामाजिक परिवर्तन संबंधी मार्क्सवादी निर्देश से पूरे तौर पर भले ही सहमत हो, पर वे अपने चारों ओर की परिस्थितियों से अनुप्रेरित अवश्य है"³⁹ इस तरह इस युग के कवि कल्पना और स्वप्नों के संसार में विचरण करते हुए तत्कालीन समाज की स्थिति को भी पूर्ण रूपेण विस्मृति नहीं कर सके थे।

वोलशेविक पार्टी की सफलता के पश्चात् सन् १९१७ में सोवियत सरकार की नवीन शासन पद्धति तथा उसके मूल में क्रियाशील मार्क्सवादी सिद्धान्तों को जानने समझने में लोगों ने रूचि दिखाई। इन सिद्धान्तों

से प्रभावित साहित्यकारों का एक वर्ग भी मार्क्सवादी सिद्धान्त तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार की ओर उन्मुख हुआ। इन्हीं साहित्यकारों के प्रयास से कुछ प्रगतिशील साहित्य सन् १९१८ से १९२२ तक के बीच उपलब्ध हुये।

भारत में मार्क्सवादी संगठनों का सूत्रपात अहिन्दी भाषी क्षेत्र महाराष्ट्र, बंगाल से हुआ। "मार्क्सवादी साहित्य की शुरुआत भी अंग्रेजी तथा संबंधित प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से इन्हीं क्षेत्रों में हुई"^{४०} भारत में मार्क्सवादी विचारधारा से ओत-प्रोत साहित्य रूसी क्रान्ति से पहले ही लिखा जाने लगा था। क्रान्ति से पूर्व बंकिमचन्द्र चटर्जी का 'साम्य' शीर्षक से एक निबन्ध प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने पूँजी, मजदूरी और लाभ आदि पर विचार व्यक्त करते हुए विभिन्न सामाजिक विषयों की व्याख्या प्रस्तुत की तथा सामाजिक समानता के लिए विचार व्यक्त किया। सामाजिक श्रम विभाजन के सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर जनार्दन भट्ट ने सन् १९२४ में 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' नामक निबन्ध लिखा जिसमें देश की दयनीय दशा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। सन् १९२० में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला बंगला दैनिक नवयुग ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका प्रकाशन बंगाल के प्रसिद्ध जनवादी कवि काजी नजरूल इस्लाम और कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक मुजफ्फर अहमद ने शुरू किया था। लाहौर में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए इंकलाब नामक पत्र का प्रकाशन हो रहा था। श्रीपाद अमृत डांगे ने दक्षिण भारत में मार्क्सवाद का प्रचार-प्रसार किया तथा सोशलिस्ट नामक पत्र का प्रकाशन किया। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के संपादन में हिन्दी दैनिक 'प्रताप' का प्रकाशन हो रहा था। 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन इलाहाबाद से हो रहा था। ये सभी पत्रिकाएँ मार्क्सवाद और सोवियत रूस सम्बन्धी समाचार को प्राथमिकता के साथ अत्यधिक मात्रा में प्रकाशित कर रही थी।

इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त इस युग में मार्क्सवादी चेतना से परिपूर्ण अनेक पुस्तकें भी लिखी गईं। रामचन्द्र वर्मा की पुस्तक 'साम्यवाद' इसी युग में प्रकाश में आई, जिसमें मार्क्सवाद के अतिरिक्त योरप की अन्य समाजवादी विचारधाराओं का भी परिचय दिया गया महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'सम्पत्तिशास्त्र' भी इसी युग में प्रकाश में आयी। इस पुस्तक में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के शोषण एवं भारतीय कृषि तथा हथकरघा उद्योग-धन्धों की तबाही का विस्तृत वर्णन है। इस तरह अनेक पत्र-पत्रिकाएँ एवं पुस्तकें प्रकाशित हुई जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा के साथ ही साथ देश में प्रगतिवाद के स्थापना के लिए पृष्ठभूमि भी तैयार हुआ।

प्रथम महायुद्ध के बाद सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में जिस तीव्रगति से परिवर्तन हुआ। उससे समस्त विश्व प्रभावित हुआ। योरप में फासिस्टवाद और युद्ध के प्रसार से मानव जीवन एक अवसाद की स्थिति का सामना कर रहा था। भविष्य में आने वाले सकट से उबरने के लिए बुद्धिजीवियों का एक जागरूक वर्ग समाज और साहित्य को एक स्वस्थ नवीन दिशा देने के लिए सन् १९३५ में नानकिंग रेस्टोरेंट लंदन में एक गोष्ठी की - आगे चलकर इस गोष्ठी ने संगठन का रूप ले लिया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता ई०एम०फास्टर ने की इस अधिवेशन के घोषणा पत्र को वहाँ के भारतीय डा० मुल्कराज आनन्द, डा० सैयद एजाज हुसैन, श्री सज्जाद ज़हीर तथा डा० के. एस. भट्ट ने अपने हिन्दुस्तान में रहने वाले भारतीय साहित्यकारों को भेजकर भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की जानकारी दी। जिसका भारतीय साहित्यकारों विशेषरूप से प्रेमचन्द ने स्वागत किया तथा उसकी योजनाओं पर पूरी सहमति व्यक्त की इस तरह डा० मुल्कराज आनन्द एवं सज्जाद ज़हीर आदि के सतत् प्रयत्नों से भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई सन् १९३६ में लखनऊ में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता प्रेमचन्द ने की तथा साहित्य के उद्देश्य पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "अब उनका उद्देश्य मनोरंजन, संयोग-वियोग, नायक-नायिका की कहानी मात्र का निर्माण करना नहीं है अपितु उन प्रश्नों को भी उठाना है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं इस संघ का उद्देश्य साहित्य एवं कला में गति पैदा करना है जीवन की यथार्थताओं का चित्रण करना और जनता के सुख-दुख और कशमकश की पूर्ण रूपेण अभिव्यक्ति करके उसे उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाना है जिसके लिए आज विश्व का मानव समाज कोशिश कर रहा है"^{४१} इस तरह प्रेमचन्द ने निराशा जनित साहित्य को व्यर्थ तथा संघर्ष एवं कर्म द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाले साहित्य को आवश्यक बताया।

प्रगतिशील आन्दोलन साहित्य जगत के लिए एक विस्मयकारी घटना थी डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस आन्दोलन की तुलना भक्ति आन्दोलन से करते हुए कहा कि "भक्ति के महान आन्दोलन के समय जिस प्रकार एक अदम्य दृढ़ आदर्श निष्ठा दिखाई पड़ी थी, जो समाज को नये जीवन दर्शन से चलित करने का संकल्प वहन करने के कारण अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप में प्रकट हुई थी, उसी प्रकार यह आन्दोलन भी हो सकता है"^{४२} जहाँ संगठन के स्तर पर प्रगतिशील लेखकों का नेतृत्व सज्जाद ज़हीर, मुल्कराज आनन्द, शिवदान सिंह चौहान कर रहे थे वही रचना की दृष्टि से नेतृत्व और निर्देशन प्रेमचन्द, पंत, निराला, और उ० के हाथों संचालित था प्रेमचन्द ने यथार्थ सौन्दर्य बोध देश भक्ति व राजनीति को मशाल दिखाने के लिए लेखकों के समग्र प्रगतिशील साहित्य के सृजन की समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द के

विचार उनकी रचनाओं से भी प्रकट हो रहे थे जो हिन्दी लेखकों के लिए उदाहरण भी थे। परन्तु मार्क्सवादी विचार धारा से प्रेरित लेखकों के समक्ष जो सामाजिक यथार्थवाद को प्रस्तुत करने की समस्या थी वह प्रेमचन्द के रचनादर्श से बिल्कुल विपरीत नहीं थी। जयशंकर प्रसाद भी सन् ३७ के अपने लेख में 'यथार्थवाद' का समर्थन करते देखे जा सकते हैं। निराला जनजीवन के प्रति लगाव के कारण स्वाभाविक रूप से क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म और यथार्थवाद की ओर उनका झुकाव बढ़ा। पूरे चौथे दशक में उनकी दो प्रकार की रचनाएँ प्रकाश में आईं। जिसमें एक में उदास भाव-संस्कार के साथ स्वच्छंद कल्पना दृष्टिगत है जैसे - 'राम की पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति'। जिसमें जीवन-संघर्ष तथा आत्मपीड़ा का यथार्थ स्वर है। तो दूसरी तरफ सामाजिक व्यंग्य के माध्यम से आदर्श कल्पना लोक का बहिष्कार व तिरस्कार किया गया जैसे 'बापू तुम मुर्गी खाते यदि', 'सजोहरा', 'कुकुरमुत्ता', मास्को डायलागज आदि। यह वह दौर था जब निराला वेदान्त की भूमि से यथार्थ की ओर अग्रसर हुये जैसा कि वह स्वयं कहते हैं कि "वेदात्त की भूमि से जनता की जैसी सेवा की जा सकती है, जैसा क्रान्तिकारी साहित्य रचा जा सकता है, वैसा किसी दर्शन को भूमि से नहीं।"^{४३}

प्रगतिशील आन्दोलन के आरम्भिक दौर में जनवादी, राष्ट्रवादी और मार्क्सवादी सभी लेखक साहित्य में सामाजिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के कारण एक वृत्त के अन्तर्गत गिने जाते थे। अज्ञेय इस प्रसंग पर लिखते हैं कि "आरम्भ में प्रगतिशील लेखक संघ में विभिन्न प्रवृत्ति के लोग थे, जिनको साथ मिलाने वाली भावना वस्तुस्थिति के प्रति एक संदेह की भावना थी। सुधारवाद था कि प्राचीन संस्कृति की पुनःस्थापना का स्वप्न पर्याय नहीं है और इससे अधिक भी कुछ होना चाहिए, लेखक को भी नेताओं का भुँह न जोहकर स्वयं कार्यात्मक रूप में कुछ करना चाहिए। सामान्यतः ऐसा मानने वाले सभी लेखक प्रगतिशील आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए, क्योंकि वह आन्दोलन उनकी उदात्त भावनाओं के लिए नया क्षेत्र प्रस्तुत करता जान पड़ता था। किन्तु क्रमशः प्रगतिशील आन्दोलन में 'शील' का स्थान 'वाद' ने ले लिया। जिसके नाम और प्रतिष्ठा के आधार पर प्रगतिशील लेखक संघ संगठित हुआ और पनपता रहा, वे एक-एक कर उससे अलग हो गये या अलग कर दिये गये।"^{४४}

रचना के स्तर पर प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, पंत आदि स्वयं अपनी सीमा को तोड़कर बाहर आये थे। इस नये साहित्यिक आन्दोलन में यथार्थ दृष्टि सम्पन्न आचार्य शुक्ल की सहयोगी भूमिका रही। जो साहित्य की अलौकिकता का खण्डन कर रहे थे। वे कथासाहित्य में विकसित यथार्थवादी भावभूमि के समर्थक

थे तथा कथासाहित्य में चित्रित मध्यवर्गीय विलासिता के विरोधी थे। प्रगतिवादी लेखक संघ के घोषणा-पत्र में कहा गया कि साहित्य को शोषक और अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर जनता के निकट लाया जाय। अपनी परम्परा के स्वस्थ तत्वों का विकास तथा अस्वस्थ तत्वों का बहिष्कार किया जाए। साहित्य की रचना इन तत्वों को ध्यान में रखकर किया जाय कि "हमारी धारणा है कि भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए और वह है हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनीतिक पराधीनता का प्रश्न।"^{५५}

इस तरह सामाजिक चेतना से परिपूर्ण प्रगतिशील यथार्थ साहित्य तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्थिति की आवश्यकता थी। यही कारण है कि प्रगतिवाद ने जल्दी ही व्यापक रूप धारण कर लिया। जैसा कि डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "इस आन्दोलन में यह क्षमता थी कि वह भारत की विभिन्न भाषाएँ बोलने वाली जनता और उनके साहित्यकारों को एक दूसरे के निकट लाकर देश की एकता दृढ़ करें।"^{५६} एक सीमा तक प्रगतिवाद अपने उद्देश्य में सफल भी हुआ। आरम्भ में हिन्दी-उर्दू लेखकों तथा बाद में अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों का विशाल संगठन बना। जिसके अन्दर मार्क्सवादी और गैरमार्क्सवादी दोनों शामिल थे। परन्तु यथार्थ हमारे साहित्य की मुख्य धारा बनी। प्रगतिवाद पर ऐकात्मिक रूप से मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र या समाजवादी विचारधारा का प्रभुत्व आरोपित करना गलत है क्योंकि प्रगतिवाद के अन्दर उस यथार्थवाद का विकास हुआ जो भारतेन्दु युग से प्रारम्भ हुआ था। प्रगतिवाद ने उस यथार्थ को समकालीन समाज की ठोस वास्तविकताओं से जोड़कर आगे बढ़ाया।

४. प्रगतिवाद की मूल्यांकन पद्धति

प्रत्येक साहित्यिक आन्दोलन की तरह प्रगतिवादी आन्दोलन ने भी अपने साथ एक विशिष्ट प्रकार की समीक्षा पद्धति को विकसित किया। साहित्यिक आन्दोलन के रूप में अपने समालोचना पद्धति को लेकर ही प्रगतिवाद पूर्ण बनता है। इस समालोचना पद्धति के विकास में समालोचकों के अतिरिक्त सृजनशील प्रगतिशील लेखकों का योगदान भी महत्वपूर्ण है। जैसा कि प्रगतिशील लेखक संघ सामूहिक संगठन से संगठित तथा परिचालित एक साहित्यिक आन्दोलन था। अतः उनके घोषणा-पत्र, परिपत्र, परिसंवाद, बहसों, सामूहिक रूप से पास किये गये प्रस्ताव आदि भी प्रगतिशील समीक्षा के अंग हैं। इस तरह सामूहिक चिंतन तथा सहचिंतन प्रगतिवादियों ने साहित्य सम्बन्धी विचारों को सुव्यवस्थित सिद्धान्त का रूप दिया।

प्रगतिवादी समालोचना का इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाले प्रायः विद्वानों ने शिवदानसिंह चौहान को

प्रथम प्रगतिशील समीक्षक माना है। परन्तु वास्तविकता यह है कि सर्वप्रथम अख्तर हुसैन रायपुरी ने प्रगतिशील आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इस विचारोत्तेजक लेख को लेकर उस समय काफी धूम मची थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लोकमंगलवाद एवं जातीय स्वत्व के सिद्धान्तों से प्रगतिवादी आलोचना को न केवल बल मिला अपितु वे इससे प्रेरित हो समाजवादी यथार्थवाद की मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि का विकास कर सके। इस दिशा में प्रेमचन्द, निराला, प्रसाद और नन्ददुलारे वाजपेयी ने अविस्मरणीय योगदान दिया। सन् ३० से सन् ४० के बीच के हंस, इन्दु, मतवाला, विशाल भारत, माधुरी, जागरण, सुधा आदि के अनेक लेख तथा टिप्पणियों से पता चलता है कि आलोचना उस समय अपना रूप निर्माण कर रही थी। सन् ४० के बाद लिखित आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाश में आयी। रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, चन्द्रबली सिंह, अमृतराय, प्रकाशचन्द्र गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, रांगेय राघव, रामेश्वर शर्मा, महेन्द्र भटनागर, हंसराज रहबर, मन्मथनाथ गुप्त आदि की कृतियों तत्कालीन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, प्रगतिशील संघ के घोषणा-पत्र अधिवेशनों के प्रस्तावों तथा गोष्ठी आदि के अध्ययन द्वारा ही प्रगतिशील आलोचना के सही स्वरूप निर्मित होते हैं। स्वरूप निर्माण के पश्चात् भी प्रगतिशील आलोचना के मानदंडों पर सभी प्रगतिशील आलोचक एक मत हो ऐसा नहीं है। प्रगतिशील लेखकों तथा आलोचकों के बीच हर विषय को लेकर दो धाराओं का संघर्ष भी है एकता भी।

प्रगतिशील आन्दोलन के अन्दर पारस्परिक मतभेद का पहला प्रश्न था कि अपने इतिहास के प्रति हमारा दृष्टिकोण कोरा नकारात्मक या कोरा सकारात्मक या द्वंद्वतात्मक हो। प्रगतिशील लेखक संघ में निश्चित रूप से इस विषय पर दो मत थे। एक मतावलम्बियों का झुकाव परम्परा के नकारवाद की ओर था तो दूसरे मतावलम्बी का मत था कि अपनी जातीय परम्परा विरासत और संस्कृति का द्वंद्वतात्मक ढंग से मूल्यांकन किया जाए। मृत तथा जीवन्त तत्वों में भेद कर जीवन्त तत्वों को अपनी जनसंस्कृति के लिए स्वीकार किया जाए। पहले मत के प्रमुख समर्थकों में शिवदानसिंह चौहान तथा रांगेय राघव थे। दूसरे मत का प्रतिनिधित्व करने वालों में रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, चन्द्रबली सिंह, हंसराज रहबर आदि थे।

प्रगतिवादी आलोचकों ने सम्पूर्ण साहित्य परम्परा तथा समकालीन साहित्य का विश्लेषण किया यह उद्देश्य जितना महान है इसकी पूर्ति करना उतना ही कठिन कार्य है। स्पष्ट ऐतिहासिक समझ के अभाव में इसमें अनेक गलतियों की सम्भावना है। प्रगतिशील लेखकों से भी ऐसी गलतियाँ हुई तथा अपनी गलतियों से ही प्रगतिशील लेखकों ने सबक भी लिया। आरम्भ में प्राचीन प्रतिक्रियावादी रूढ़ियों के साथ

उन्होंने समस्त प्राचीन परम्परा को ही प्रतिक्रिया सिद्ध कर दिया। शुरु-शुरु में रूढ़ि और परम्परा में वे अन्तर न कर सके जिसके परिणाम स्वरूप समस्त भक्ति काल को धार्मिक आचरण व्यक्त करने वाला कहकर बहिष्कृत किया। उसमें निहित ऐतिहासिक विषय वस्तु तथा जनवादी भावधारा की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। इसी प्रकार पलायवाद का विरोध करते-करते वे सम्पूर्ण छायावाद का विरोध करने लगे। परन्तु बाद में तुलसी साहित्य तथा छायावाद पर स्वस्थ प्रगतिशील साहित्य समीक्षा लिखकर आलोचकों ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वस्थ ऐतिहासिक दृष्टि परम्परा का उचित मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकती है। इस संघर्ष को ध्यान में रखकर शर्मा जी ने अनेक सैद्धान्तिक निबंध लिखे। 'साहित्य की परम्परा' इस दृष्टि से उनका उल्लेखनीय निबंध है। जैसा कि रामविलास शर्मा लिखते हैं "प्रगतिशील साहित्य जनता की तरफदारी करने वाला साहित्य है, इसीलिए वह उसकी जातीय विरासत, उसकी साहित्यिक परम्पराओं की रक्षा करने के लिए भी लड़ता है। साम्राज्यवाद न सिर्फ जनता की स्वाधीनता का अपहरण करता है, उसके जनवादी अधिकारों को कुचलता है बल्कि उसकी जातीय संस्कृति उसके राष्ट्रीय अभियान, उसके पूर्व पुरुषों के अर्जित ज्ञान को भी झुठलाता और दबाता है। इसलिए जनता की जातीय संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए संघर्ष उसकी स्वाधीनता और जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष का अभिन्न अंग है।"^{१०}

साहित्य को जनजीवन से सम्बन्ध करने तथा लेखकों को लेखन की दिशा बतलाने का कार्य भी प्रगतिशील समीक्षकों का था। प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा-पत्र एवं बहसों वैचारिक स्तर पर लेखकों को दिशा-निर्देश दे रहे थे। परन्तु सृजनात्मक स्तर पर मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्र के मानदंडों को प्रभावी करना उतना सरल कार्य नहीं था। तत्कालीन रचना के मूल्यांकन से ही इस समस्या का समाधान मुमकिन था यही कारण है कि तत्कालीन प्रगतिशील लेखकों ने सभी प्रकार के साहित्य की समीक्षा का कार्य भी शुरू किया।

समसामयिक प्रगतिशील लेखकों के समक्ष वस्तु और उसके रूप के बीच के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध, यथार्थ और गतिशील यथार्थ, यथार्थ के पतनशील तत्व और जीवन्त तत्व, फोटो ग्राफिक या प्रकृतिवादी चित्रण, आलोचनात्मक यथार्थ, क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म छायावादी पतनशील रूमनियत तथा समाजवादी यथार्थवाद इन सबके रचनात्मक स्तर पर सही के चयन तथा गलत के बहिष्कार का महत्वपूर्ण प्रश्न था। इन प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए प्रगतिशील लेखक संघ के मंच से मैक्सिम गोर्की द्वारा प्रतिपादित 'समाजवादी यथार्थवाद' का नारा दिया। समाजवादी यथार्थवाद सर्वहारा क्रान्ति का साहित्य होता है। प्रगतिशील

साहित्यिक आन्दोलन के समय सर्वहारा वर्ग, किसान समुदाय तथा उत्पीड़ित मध्यवर्ग को ध्यान में रखकर राष्ट्रवादी, जनवादी एवं समाजवादी गतिशील यथार्थ के चित्रण पर बल दिया गया केवल समाजवादी यथार्थवाद पर ही नहीं। यह सत्य है कि रूसी साहित्यकारों के लिए समाजवादी यथार्थवाद एकमात्र स्वीकार्य एवं निर्णायक धारा थी। परन्तु भारतीय लेखकों के लिए आलोचनात्मक यथार्थवाद क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म तथा समाजवादी यथार्थवाद तीनों धाराएँ एक सीमा तक ही स्वीकार थीं।

प्राचीन और समकालीन, जनवादी और समाजवादी, जातीय और अन्तर्जातीय के अन्तर्विरोध के प्रश्न को हल करना भी प्रगतिशील समीक्षा का कार्य था। इस प्रश्न को लेकर शिवदान सिंह चौहान तथा रामविलास शर्मा में वैचारिक संघर्ष था। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप शिवदान सिंह चौहान ने समाजवादी यथार्थवाद के कलात्मक मानदंडों की सैद्धान्तिक प्रस्थापना के लिए विश्व प्रसिद्ध महान कृतियों को संदर्भ ग्रन्थ के रूप में नहीं अपितु आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया तथा अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के अध्ययन विश्लेषण द्वारा सैद्धान्तिक निष्कर्ष भी दिये। इस सन्दर्भ में राहुल सांकृत्यायन, भगवत शरण उपाध्याय और मुक्तिबोध की समीक्षा कृतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। शिवदानसिंह द्वारा लिखित 'भारत की जननाट्यशाला' (१९३६) शीर्षक निबन्ध नाटक और रंगमंच को समाजवादी यथार्थवाद के कलात्मक मानदंडों के अनुसार व्यवहारिक रूप में ढालने जैसे जटिल एवं महत्वपूर्ण प्रश्न को काफी हद तक हल किया जैसा कि वे लिखते हैं "हम जिस जननाट्यशाला की कल्पना करते हैं वह फारसी कंपनियों की परिपाटी को लेकर नहीं चल सकती और न उच्चवर्ग की रुचि का विचार कर मानसिक वेश्यालय का केन्द्र बन सकती है। उसे पूर्व-निर्दिष्ट जन-आधार पर ही खड़ा होना होगा और जनसंस्कृति को परिमार्जित और परिष्कृत कर उसे सौन्दर्य और सौष्ठव प्रदान करना होगा।"^{४८}

'कविता में शब्दों का चुनाव' नामक निबंध में रूप और वस्तु के सम्बन्ध की समस्या को कविता के सन्दर्भ में हल करने का प्रयास किया गया। भाव, विचार, रुचि, सौन्दर्यवृत्ति और इन्द्रियबोध साहित्य की विषय वस्तु, उसका रूप आदि परस्पर सम्बन्धों को समझने के लिए रामविलास शर्मा का 'युग की परिधि १ और साहित्य की व्यापकता' शीर्षक निबन्ध महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं "साहित्य शब्द द्वारा, चित्रों द्वारा मुनष्य को प्रभावित करता है। उसका प्रभाव दर्शन और विज्ञान से ज्यादा व्यापक इसीलिए होता है कि उसका सम्बन्ध इन्द्रियबोध से है। उसका माध्यम ही रूपमय है, कल्पना के सहारे वह तरह-तरह के रूप पाठक और श्रोता के मन में जगाता है। उसकी विषय वस्तु रूपमय है। वह चिंतन के निष्कर्ष को नहीं देता जीवन के

चित्र भी देता है। दर्शन और विज्ञान से भिन्न उसकी निजी कलात्मक विशेषता जीवन के चित्र देने में है।¹⁴

किसी रचनाकार के कृतित्व का मूल्यांकन विचार के आधार पर हो या साहित्य के समाज सापेक्ष कलात्मक मानदंडों से भी उसका सम्बंध हो। इस प्रश्न पर भी प्रगतिशील समीक्षों के विचार भिन्न हैं। एक विचार के समीक्षकों का मानना है कि अगर कोई लेखक खुले तौर पर व्यवस्था का समर्थन और प्रतिक्रियावादी है तो उसे निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी कहना चाहिए परन्तु अगर कोई लेखक समाजवादी विचारधारा का अपने साहित्य में प्रचार करता है तथा इन्द्रियबोध आदि के कलात्मक चित्रण की दृष्टि से वह कमजोर हैं फिर भी उसे प्रगतिशील और श्रेष्ठ करार देना चाहिए।

स्त्री पुरुष संबंध के चित्रण को लेकर सृजनात्मक साहित्यकारों के बीच प्रगतिवादी आन्दोलन के पूर्व से ही दो विचार धाराएँ रही हैं। प्रगतिशील लेखकों के समक्ष यह प्रश्न था कि इस सामाजिक समस्या के लिए कौन सा दृष्टिकोण अपनाए। हंसराज रहबर ने 'नया साहित्य और नारी' नामक निबंध का सार तत्व प्रस्तुत किया। यह समस्या अधिक जटिल इस लिए हुयी क्योंकि कुछ प्रगतिशील लेखक मार्क्सवाद और फ्रायडवाद का मेल करना चाहते थे। 'अंगारे' कहानी संग्रह के अतिरिक्त सज्जाद जहीर का नाटक 'बीमार' यशपाल का उपन्यास 'दादा कामरेड', मटों की कहानी 'बू', कृशन चंदर की कहानियाँ 'तिरंगी चिड़िया', 'हुस्न और हैवान', 'दर्दे गुर्दा', 'चिड़िया का गुलाम', अंचल का उपन्यास 'चढ़ती धूप', अशक की 'गिरती दीवारें' नागार्जन का 'रतिनाथ की चाची' आदि को दृष्टि में रखकर अज्ञेय तथा इलाचन्द्र जोशी ने प्रगतिवादी आन्दोलन को फ्रायडवादी रास्ते पर चलता हुआ बताया। प्रगतिवादी आन्दोलन के अन्दर तथा बाहर के कुछ कृतिवारों की नजर में नारी समस्या एक जैसी ही है। ये लेखक शरच्चंद, रवीन्द्र, प्रेमचन्द्र आदि के नारी चित्रण को आदर्शवाद कहकर नकारते हैं। इन लेखकों के लिए जोला, फलावेयर, लारेंस की परम्परा यथार्थवादी परम्परा थी। हंसराज रहबर ने इस सन्दर्भ में सही निर्णय लेते हुए मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाया। उनका आरम्भ से ही यही दृष्टिकोण था "नारी भी एक सामाजिक प्राणी है समाज के साथ उसके अनेक संबंध हैं, उसके एक यौवन संबंध भी है, जो किसी विशेष परिस्थिति में महत्वपूर्ण हो सकता है। लेकिन हरेक परिस्थिति में इसी सम्बंध को उभारना और उसे ही विशेष महत्व प्रदान करना यथार्थ नहीं है, झूठ है, नारी के साथ अन्याय है और यह उसका अपमान है।"¹⁵

यशपाल, कृशनचंदर, नरोत्तम नागर, मुल्कराज तथा पहाड़ी आदि यौनचित्रण के संदर्भ में फ्रायडवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे जबकि हंसराज रहबर, चन्द्रवली सिंह, केदार नाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा,

अमृतराय आदि सामायिक यथार्थवाद अथवा प्रगतिशील विचारधारा का समर्थन कर रहे थे।

प्रतिक्रियावादी लेखक तथा समीक्षक प्रगतिवादी साहित्य को राजनीतिक प्रचार या प्रोपगंडा कहते हैं। जिसका कारण है कि वे न केवल साहित्य के वर्गीय अन्तर्वस्तु से दूर भागते थे बल्कि कुछ तो वर्ग सहयोग का साहित्य लिख रहे थे। उस साहित्यिक परिवेश में प्रगतिशील समीक्षकों के सामने प्रगतिशील साहित्य को सैद्धान्तिक आधार प्रदान करना एक चुनौती थी। इस चुनौती को प्रगतिशील समीक्षा ने स्वीकार किया। उनका कहना था कि लेखक की रचना जनता से जुड़कर ही सार्थक तथा जीवन्त हो सकती है।

प्रगतिशील आन्दोलन के दौरान साहित्य को नये ढंग से परिभाषित करने की आवश्यकता थी। क्योंकि समीक्षा में एक तरफ जहाँ सामन्ती रूढ़िवादी आग्रहों से ग्रस्त रसवादी प्रतिमान प्रचलित थे, वही दूसरी तरफ निरपेक्ष ढंग से साहित्य के गुण दोषों की परख की जाती थी। तीसरी तरफ व्यक्तिवादी चिंतन धारा अथवा अनेक प्रकार की भाव वादी विचार धाराओं की ओर से खतरा था। इस खतरे को नजर अंदाज करते हुए प्रेमचन्द ने प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में यह कहा कि साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। वर्ग समाज में दो वर्गों के हितों का परस्पर टकराव है, वर्ग विरोध है और उत्पादन शक्तियों तथा उत्पादन संबंध के बीच अन्तर्विरोध होने की वजह से वर्ग संघर्ष तीव्र हो रहा है अतः रचनाकार निरपेक्ष रूप से प्रगतिशील होता ही है। यह दृष्टिकोण भ्रामक था। यह भ्रम सामाजिक विकास के मूलभूत नियम अर्थात् द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को न पहचानने के कारण हुआ। डा० रामविलास शर्मा ने साहित्यकार की प्रगतिशीलता तथा समालोचनक की प्रगतिशीलता की व्याख्या करते हुए लिखा “न तो साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है न आलोचक। वे प्रगतिशील तभी होते हैं जब वे जन साधारण का पक्ष लेते हैं”^{५१}

प्रगतिशीलता यथार्थ का चित्रण मात्र है या गतिशील यथार्थ का चित्रण, साहित्यकार की प्रगतिशीलता सापेक्ष है या निरपेक्ष – इन प्रश्नों पर प्रगतिशील समीक्षकों में दो धारा का संघर्ष रहा है। शिवदान सिंह चौहान का मत है “किसी भी युग के कलाकार और साहित्यकारों की प्रतिभा, ईमानदारी और उनकी कृतियों की कलात्मक श्रेष्ठता को परखने की वैज्ञानिक कसौटी भी यही है कि जाँच करके देखा जाए कि अपने जीवन काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों द्वारा प्राप्त अनिवार्य विचार सीमाओं से होते हुए भी उन्होंने सच्चे कलाकार की सत्यान्वेषी वस्तुनिष्ठा से अपने युग जीवन की वास्तविकता या सत्य का कितना यथार्थ और मूर्त चित्रण किया।”^{५२} इस तर्क को ध्यान में रखकर अगर जैनेन्द्र और अज्ञेय का अध्ययन करें तो वे महान, श्रेष्ठ और यथार्थवादी दिखाई देते हैं। क्योंकि शिवदानसिंह चौहान सत्यान्वेषी वस्तुनिष्ठा और युग जीवन

की वास्तविकता को निरपेक्ष बना देते हैं। साहित्य की परख के लिए प्रगतिशील समीक्षा को ऐसे मानदंड की आवश्यकता थी, जिस पर हर चीज सही ढंग से कसी जा सके। अतः रामविलास शर्मा की यह मान्यता उचित प्रतीत होती है। “युग जीवन की वास्तविकता अखण्ड इकाई नहीं है। कोई भी युग सत्य द्वन्द्व से परे नहीं होता। आज के युग का सत्य यह है एक तरफ जनता साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही है। दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतें और उसके हिमायती उसे दबाने और गुलाम बनाये रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस द्वंद्व में कलाकार किसी अद्वैत युग सत्य का सहारा न लेकर जनता या उसके विरोधियों का पक्ष लेता है। इसीलिए स्वभावतः प्रगतिशील न होकर उसे युग विशेष और समाज विशेष के संघर्ष में जनता का पक्ष लेने पर ही प्रगतिशील कहा जा सकता है।”⁴³

वर्ग संघर्षों की पहचान अथवा क्रान्तिकाल में जनसाधारण के संघर्ष से लेखक की संपृक्तता तथा तज्जन्य यथार्थबोध से रचनाकार की रचनाशीलता में परिपक्वता आती है अथवा नहीं। उसकी सौन्दर्यवृत्ति तीव्र होती है या नहीं उसकी चित्रण क्षमता बढ़ती या कुंठित होती है। ये सारे प्रश्न ऐसे हैं, जिससे समालोचकों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। परन्तु कुछ प्रगतिशील समीक्षक ऐसे भी थे, जो समालोचना तथा रचना दोनों क्षेत्रों में सक्रिय थे। यही कारण है कि प्रगतिशील समीक्षकों का ध्यान इस तरफ गया तथा उन्होंने इस पर प्रकाश भी डाला। इस क्षेत्र में प्रगतिवादी समीक्षा के योगदान का मूल्यांकन नामवर सिंह ने किया। उनका विचार है कि समीक्षा की मुख्य समस्या यह बतलाने की रही है कि कौन सी रचना कितनी सुन्दर है। मुख्य समस्या यह है कि रचना में सौन्दर्य और शक्ति आती कहां से है? इस प्रश्न का सही उत्तर रचनात्मक समीक्षा के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में समीक्षा निष्प्राण तथा निष्क्रिय हो जाती है। भाववादी समीक्षक यह मानते हैं कि रचना में सौन्दर्य रचयिता की अपनी प्रतिभा से आता है, और यह प्रतिभा लेखक की अपनी चीज है, अथवा ईश्वर प्रदत्त है या पूर्वजन्म के पुण्य का फल है या पैतृक उत्तराधिकार है। व्यवहारिक तौर पर विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि यह धारणा गलत है। अगर ऐसा होता तो कोई भी लेखक एक अच्छी कृति देने के पश्चात् साधारण कृति की रचना नहीं करता। बल्कि वह निरन्तर अच्छी से और अच्छी की तरफ बढ़ता। जबकि व्यवहारिक रूप से ऐसा नहीं है। नामवर सिंह का मानना है कि “इस सवाल का जवाब केवल प्रगतिशील समीक्षा दे सकती है और देती है। उसका कहना है कि लेखक में शक्ति जनता से आती है। जनता के साथ उसका संबंध जितनी ही घनिष्ठ होता है, उसमें उतनी ही रचनाशक्ति आती है और उसकी रचना में उतना ही सौन्दर्य बढ़ता है। इसके विपरीत ज्यों ही लेखक अपने इस अक्षय स्रोत से कट जाता है, उसकीसारी शक्ति जवाब दे जाती है। हिरण्यकश्यप की तरह उसकी मृत्यु तभी होती है

जब उसका पाँव धरती से उठ जाता है।^{५४} यही प्रगतिशील समीक्षा यह भी स्थापित करती है कि रचना में सौन्दर्य वास्तविकता के अधिकाधिक चित्रण से आती है। रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द और निराला पर लिखी अपनी पुस्तकों में प्रगतिशील समीक्षा के इस देन का अनुशीलन किया है। रामेश्वर शर्मा द्वारा नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, त्रिलोचन आदि पर लिखित निबन्ध भी इसी विशेषता से युक्त है। हंसराज रहबर ने प्रेमचन्द पर लिखित अपनी समीक्षा पुस्तक में इसी प्रणाली को और अधिक स्पष्ट तथा सुसंगत रूप में प्रस्तुत किया है। इन समीक्षकों ने यह दिखलाया है कि वास्तविकता के प्रगतिशील पक्षों के उद्घाटन से रचना में कलात्मक सौन्दर्य आता है। व्यापक अर्थों में प्रगतिशील समीक्षा की यहवर्गीय अन्तर्वस्तु है।

जातीय मुक्ति आन्दोलन, वर्ग संघर्ष, नारी पराधीनता के सामाजिक पहलू तथा सबसे महत्वपूर्ण चीज यह है कि यथार्थ के गतिशील पक्षों का अंतरंगता के साथ उद्घाटित करना ही प्रगतिशील यथार्थवाद में प्राण प्रतिष्ठा करता है। साहित्य की विषयवस्तु का विश्लेषण प्रगतिशील समीक्षा इन्हीं प्राणतत्वों के आधार पर प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ

- १.. कुछ विचार – प्रेमचन्द, पृ० १५
२. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड – डा० रांगेय राघव, पृ० ३२८
३. रसवन्ती (भूमिका) – रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ५-६
४. डायलेक्टिकल मेटिरियलिज्म (भाग १) मारिस कानफोर्थ, पृ० ६०
५. भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 'भारत में ब्रिटिश शासन – कार्ल मार्क्स, पृ० ११
६. भारत सम्बन्धी लेख – कार्ल मार्क्स, पृ० १६
७. आज का भारत – रजनी पामदत्त
८. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास – मनमथनाथ गुप्त, पृ० २११
९. भारत : वर्तमान और भावी – रजनी पामदत्त, पृ० १२१
१०. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास – मनमथनाथ गुप्त, पृ० २२१
११. सिंहावलोकन भाग I – यशपाल, पृ० ३४५
१२. मेरी कहानी – जवाहरलाल नेहरू, पृ० २८८
१३. सिंहावलोकन II – यशपाल, पृ० १०७-१०८
१४. प्रगतिवाद और समान्तर साहित्य – रेखा अवस्थी, पृ० ७
१५. प्रगतिवाद – पुर्नमूल्यांकन – हंसराज रहबर, पृ० १५
१६. प्रगतिवाद – पुर्नमूल्यांकन – हंसराज रहबर, पृ० १६
१७. प्रगतिवादी आन्दोलन का आलेखात्मक इतिहास – कर्णसिंह चौहान, पृ० २६
१८. प्रगतिवादी आन्दोलन का आलेखात्मक इतिहास – कर्णसिंह चौहान, पृ० २७-२८
१९. साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचन्द, पृ० १०-११
२०. साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचन्द, पृ० १६
२१. साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचन्द, पृ० २१
२२. प्रगतिशील आन्दोलन का आलेखात्मक इतिहास – कर्णसिंह चौहान, पृ० ४४
२३. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – रामविलास शर्मा, पृ० २५
२४. हंस अक्टूबर १९४४ (मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास – डा० एन. रवीन्द्रनाथ से उद्धरित, पृ० ६५)
२५. साहित्य की समस्याएँ – शिवदान सिंह चौहान, पृ० १७६
२६. जनजीवन और साहित्य – श्रीपाद अमृत डांगे (प्रगतिवादी आन्दोलन का आलेखात्मक इतिहास – कर्णसिंह चौहान, पृ० ५८ से उद्धरित)
२७. वही, पृ० ५८-५९
२८. प्रगतिवाद पुर्नमूल्यांकन – हंसराज रहबर, पृ० १४३
२९. वही, पृ० १४३

३०. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डा० नामवर सिंह, पृ० ११५-१६
३१. भारतेन्दु युग – डा० रामविलास शर्मा, पृ० ५३
३२. वही, पृ० ५
३३. वही, पृ० ५
३४. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शर्मा, पृ० ४१५
३५. सरस्वती पत्रिका – १९२०, अंक २१
३६. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शर्मा, पृ० ५१४
३७. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग – डा० उदयभानु सिंह, पृ० ३०२
३८. हिन्दी साहित्य के अस्सीवर्ष – शिवदान सिंह चौहान, पृ० ५१
३९. आधुनिक साहित्य – नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ३४८
४०. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद भाग १ – डा० रामविलास शर्मा, पृ० १४१
४१. साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचन्द, पृ० ६
४२. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास – हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २८८
४३. निराला की साहित्य साधना खण्ड १, पृ० ३५१
४४. आधुनिक हिन्दी साहित्य – अज्ञेय, पृ० ३२
४५. प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम घोषणा पत्र, अप्रैल १९३६
४६. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – डा० रामविलास शर्मा, पृ० २५
४७. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – डा० रामविलास शर्मा, पृ० २५
४८. साहित्य की समस्याएँ – शिवदान सिंह चौहान, पृ० १४६
४९. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य – रामविलास शर्मा, पृ० २५-२६
५०. प्रगतिवादी मूल्यांकन – हंसराज रहबर, पृ० २१२
५१. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – रामविलास शर्मा, पृ० ४
५२. साहित्य की परख – शिवदान सिंह चौहान, पृ० ३४
५३. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – रामविलास शर्मा, पृ० ६
५४. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ – नामवर सिंह, पृ० १०५

द्वितीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा और प्रगतिवादी उपन्यास

१. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास की अवस्था।
२. प्रेमचन्द का उदय और उपन्यास विधा में मूलभूत परिवर्तन।
३. उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियाँ।
४. हिन्दी की प्रगतिवादी उपन्यास परम्परा तथा प्रमुख उपन्यासकार।

हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा और प्रगतिवादी उपन्यास

भारत अनादि काल से कथा प्रेमी देश रहा है। यहाँ हजारों वर्षों से विभिन्न प्रकार की कथाएँ प्रचलित रही हैं। जिन्हें कहने और सुनने की परम्परा भी विद्यमान रही। यूरोप ने भारत से ही कथा कहना तथा सुनना सीखा था। देश की यह पुरानी कथा परम्परा आधुनिक काल में आकर उपन्यास तथा कहानी के रूप में विकसित हुई। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल की विविध गद्य विधाओं निबन्ध, नाटक, आलोचना आदि के समान हिन्दी उपन्यास का भी जन्म हुआ। जो क्रमशः समृद्ध होती हुई आज एक साहित्य विधा के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठित हैं। इस अवस्था तक पहुँचने में उपन्यास साहित्य को यद्यपि बहुत अधिक समय नहीं लगा, परन्तु इसके ११५ वर्षों के इतिहास में अनेक उतार चढ़ाव आये जिसको अध्ययन की सुविधा के लिए तीन भागों में बाँटा गया है।

१. पूर्व प्रेमचन्द युग।
२. प्रेमचन्द युग।
३. प्रेमचन्दोत्तर युग।

१. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास की अवस्था

लाला श्रीनिवास दास के परीक्षा गुरु १८८२ से प्रेमचन्द के सेवासदन के प्रकाशन १९१८ के पूर्व का काल हिन्दी उपन्यास साहित्य का संक्रान्ति काल^१, आरम्भिक काल^२, उदय काल^३ तथा पूर्व प्रेमचन्द आदि नामों से अभिहित किया जाता है। हिन्दी कथा साहित्य में सन् १८६० महत्वपूर्ण वर्ष था। जिसके पश्चात् हिन्दी कथा पुस्तकों की बाढ़ सी आ गयी। सन् १९१७ तक विपुल मात्रा में उपन्यास साहित्य का सृजन तथा दूसरी भाषाओं से अनुवाद कार्य सम्पन्न हुआ। इस काल के उपन्यासों में कथा विन्यास द्वारा कुतूहल रहस्य और रोमांच के आश्रय से मनोरंजन तथा उपदेश की प्रवृत्ति प्रमुख रही। रहस्यमयी अद्भुत असम्भाव्य घटनाओं को सूत्रबद्ध कर एक अपरिचित लोक में पाठकों को भुलाने भटकाने का काम लेखकों द्वारा खूब हुआ। जीवन तथा समाज की यथार्थ गम्भीर समस्याओं पर आधारित उपन्यासों के सृजन की परम्परा विकसित नहीं हो पायी थी। हिन्दी उपन्यास का पूर्व प्रेमचन्द युग प्रयोग का युग था। कोई भी साहित्यिक विधा अपने प्रयोग के माध्यम से ही उपयुक्त भूमि का संधान करती है। उस सहज भूमि में उसका प्रस्फुटन तथा पल्लवन

होता है। उपन्यास के इस प्रयोग युग में भी सच्चे प्रयोगशील लेखकों की संख्या अधिक नहीं है। वे लीक पर चलने की ही प्रवृत्ति का परिचय अधिक देते हैं। अनुकरण इस काल की एक विशेषता है। इस काल के उपन्यास लेखकों में देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी तथा ब्रजनन्दन सहाय प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। खत्री जी की चन्द्रकान्ता सतति (चौबीस भाग) तथा भूतनाथ (इक्कीस भाग) ऐसी ऐयारी-तिलस्मी कृतियाँ हैं जिसको पढ़ने के लिए असंख्य लोगों ने हिन्दी सीखी। इन उपन्यासों की सामान्य विशेषता घटना प्रधान तथा कथा प्रधान होना है। घटना वैचित्य की सृष्टि कर उनके द्वारा मनोरंजन कर पाने में ही उनकी सफलता मापी जाती थी। इन उपन्यासों के वस्तु विन्यास में मानवीय भावनाओं या चरित्रों का अभाव हुआ करता था। साहित्यिक सौन्दर्य तथा उच्च विचारों का भी अभाव है। इन उपन्यासों में कल्पना की जादूगरी और कथा-वैचित्य का ऐसा साम्राज्य था जिसमें उलझा पाठक सम्भाव्य-असम्भाव्य घटना जाल को देखकर क्यों और कैसे की अपेक्षा आगे क्या हुआ इस जिज्ञासा से अभिभूत होता था। इन घटनाओं में देशकाल और पात्र के जटिल यथार्थ से आँखें मूँदकर लेखक सारी सम्भाव्य असम्भाव्य बातों का नियोजन करता चलता था। आर्थिक विकास की दृष्टि से यह काल अवरुद्धता का शिकार रहा।

ब्रिटिश-शासन के आगमन से मुद्रण कला का विकास हुआ। नव शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ। यातायात के साधनों का विकास हुआ। यथार्थ के प्रति आग्रह का भाव जगा। जनतात्रिक भावना को स्वीकृति मिली। मध्यवर्ग का उदय हुआ तथा वैयक्तिकता को महत्व प्राप्त हुआ और इन सबके सामूहिक प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दी की नवविधा उपन्यास साहित्य का जन्म हुआ। इस काल में बंगला की तुलना में श्रेष्ठ हिन्दी साहित्य का अभाव रहा। इस तथ्य से साहित्य साधक भी परिचित थे। मनोरंजन के नाम पर बिकने वाली पुस्तकों की अधिकता से न तो जातीय गौरव की वृद्धि होती है और न ही साहित्य की समृद्धि होती है। महत्वपूर्ण विषयों पर भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में असमर्थ साहित्य के व्यवसायी ऐसे साहित्य का सृजन करने लगते हैं जो हल्की होने के कारण अल्पजीवी होती है। चन्द्रकान्ता की बढ़ती लोकप्रियता को दृष्टि में रखकर राधिका रमण प्रसाद ने कहा था “यदि चन्द्रकान्ता की शत सहस्र सतति हो, आज से कुछ वर्ष बाद उसका पता भी न मिलेगा।”¹ इसी भाषण में उन्होंने तत्कालीन साहित्य की स्थिति पर खेद व्यक्त करते हुए आगे कहा था, “आज हिन्दी में न बकिम है, न रवीन्द्रनाथ न गिरीश है न द्विजेन्द्रनाथ। इस अभाव को दूर करना हमारा एकान्त धर्म है।”² इन अभावों की पूर्ति के लिए बंगला के अनेक उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ। हिन्दी उपन्यास के नवयुग निर्माण में बंगला और अंग्रेजी से किये गये अनुवाद कार्यों की प्रेरक तथा सहायक भूमिका अत्यधिक सराहनीय रही परन्तु इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता

है कि अनुवादको में अधिकांश का ध्यान अंग्रेजी के जासूसी तथा प्रेमसाहित्यिक उपन्यासों तक ही सीमित रहा। श्रेष्ठ उपलब्धियों से अनुवादक वंचित रह गये। इसके अनेक कारण हो सकते हैं या तो श्रेष्ठ कृतियों से अनुवादक परिचित नहीं हो पाये थे या लोक रुचि परिमार्जित नहीं हो पायी थी। फिर भी इस अनुवाद कार्य से हिन्दी जगत को दो लाभ हुए प्रथम तो कथा साहित्य की लेखन शैली का विकास हुआ। द्वितीय हिन्दी के मौलिक उपन्यास लेखन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। हिन्दी जगत् में उपन्यासों के पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई। लोग बड़ी रुचि के साथ नये-नये उपन्यास पढ़ने लगे। इस युग के पाठकों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए उपन्यास लेखकों का अविर्भाव हुआ।

पूर्व प्रेमचन्द युग में दो उपन्यास लेखक बाबू देवकीनन्दन खत्री तथा पंडित किशोरी लाल गोस्वामी ने विशेष ख्याति अर्जित की। इन दोनों उपन्यास लेखकों ने अनेक रोचक मौलिक उपन्यासों की रचना कर जहाँ एक तरफ पाठकों की माँग को पूरा किया वहीं अनेक नये उपन्यासकार भी उत्पन्न किये।

यद्यपि खत्री जी को हिन्दी में तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों का जनक माना जाता है परन्तु उनके चन्द्रकान्ता से तीन वर्ष पूर्व प्रकाशित रतनचन्द्र प्लीडर का 'नूतन रहस्य' तिलस्मी ऐयारी घटनाओं से परिपूर्ण उपन्यास प्रकाश में आया। यह उपन्यास पाठकों को उतना अधिक आकर्षित तो नहीं कर पाया जितना कि खत्री जी के उपन्यासों ने किया था। फिर भी यह उपन्यास इस बात का परिचायक है कि उस युग के हिन्दी उपन्यास लेखक तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों से परिचित थे। सम्भवतः इस युग के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास लेखकों ने फैजी लिखित 'तिलस्म होशरूबा' से प्रभाव तथा प्रेरणा ग्रहण किया।

खत्री जी काशी के निवासी थे। जंगल के ठेके आदि के सिलसिले में मिर्जापुर चुनार आदि के जंगलों में खूब घूमने फिरने का मौका मिला, जो उनके उपन्यास लेखन के समय काफी सहायक सिद्ध हुआ। खत्री जी ने चन्द्रकान्ता १८८८, चन्द्रकान्ता सतति २४ भाग १८९६, नरेन्द्रमोहनी १८९३, वीरेन्द्रवीर १८९५, कुसुम कुमारी १८९६ तथा भूतनाथ १९०६ आदि तिलस्मी-ऐयारी घटनाओं से युक्त उपन्यासों की रचना कर हिन्दी साहित्य में धूम मचा दी। इसके उपन्यास अपनी रोचकता के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए। "देवकीनन्दन खत्री ने तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की जो परम्परा प्रारम्भ की। उसके पीछे मनोरंजन और कौतुहल का उद्देश्य प्रधान रहा। इनमें सामाजिक और नैतिक आशय के आरोप की भी प्रवृत्ति दिखाई देती है। ऐसे उपन्यासों को पढ़ लेने के बाद प्रायः एक उपदेशात्मक बात जरूर खड़ी हो जाती है कि कर्मफल से कोई बच नहीं सकता। अच्छे का फल बराबर अच्छा और बुरे का बुरा होता है। इसी के साथ उपन्यास

समाप्त होता है। ऐसे उपन्यासों का सारा आकर्षण विस्मयपूर्ण घटनाओं की योजना पर अवलम्बित है।¹⁴ इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी इस युग में प्रकाशित उपन्यासों में मात्र खत्री जी के उपन्यास पढ़े जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल खत्री जी को मौलिक उपन्यास लेखक मानते हैं परन्तु उनके उपन्यासों को साहित्यिक कोटि का नहीं मानते हैं “पहले मौलिक उपन्यास लेखक जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण की धूम हुई काशी के बाबू देवकीनन्दन खत्री थे.... उक्त काल के आरम्भ में तो चन्द्रकान्ता सन्तति नामक इनके ऐयारी के उपन्यासों की चर्चा चारों ओर इतनी फैली कि जो लोग हिन्दी की किताबें नहीं पढ़ते थे वे भी इन नामों से परिचित हो गये। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना वैचित्र्य रहा, रस संचार भावानुभूति या चरित्र चित्रण नहीं। वे वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से हैं। जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्यिक कोटि में नहीं आते। पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकी नन्दन खत्री का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये उतने किसी और ग्रन्थकार ने नहीं।”¹⁵ इस प्रकार शुक्ल जी खत्री जी का ऐतिहासिक महत्व तो स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके उपन्यासों को साहित्यिक उपन्यासों की कोटि में रखना उन्हें स्वीकार नहीं है। जबकि डा० श्री कृष्णलाल ने देवकीनन्दन खत्री के चन्द्रकान्ता को हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास माना है। खत्री जी के उपन्यासों पर विचार व्यक्त करते हुए शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं – “पर साहित्य की दृष्टि से कोई मूल्य न रखते हुए भी ऐसे उपन्यासों का अपना महत्व तो होता ही है। चन्द्रकान्ता का विधाता साधारण प्रतिभा का मानव न रहा होगा। उसकी बुद्धि की प्रशंसा सभी सहृदय करते हैं और करेंगे। घटनाओं का एक जटिल, सघन, दुरुह जाल दूर तक फैलाकर, फिर अन्त में अपनी विलक्षण स्मृति के बल पर इस फैले हुए तथ्यों को समेट लेना साधारण व्यक्तित्व का काम नहीं। इसी से आज भी ये रचनाएँ कुछ न कुछ आश्चर्य और कुतूहल का विषय बनी हुयी हैं।”¹⁶

बाबू देवकीनन्दन खत्री को जितनी लोकप्रियता अपने जीवन काल में प्राप्त हुई। उतनी शायद ही किसी अन्य हिन्दी उपन्यास लेखक को प्राप्त हुई हो। खत्री जी अपने उपन्यासों के माध्यम से मात्र मनोरंजन करना चाहते थे। किसी प्रकार का उपदेश देना उनका लक्ष्य नहीं था। इनके उपन्यास अश्लीलता से दूर सरल-सहज-सुबोध तथा बोलचाल की भाषा के अत्यन्त निकट थी। यही कारण है कि साधारण हिन्दी ज्ञान रखने वाला भी इसका आनन्द प्राप्त कर सकता था। आचार्य शुक्ल ने खत्री जी की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है “बाबू देवकीनन्दन खत्री के सम्बन्ध में इतना और कह देना जरूरी है कि उन्होंने ऐसी भाषा

का व्यवहार किया है जिसे थोड़ी हिन्दी और थोड़ी उर्दू पढ़े लोग भी समझ ले। कुछ लोगों का यह समझना कि उन्होंने राजा शिवप्रसाद वाली उस पिछली 'आम-फहम' भाषा का बिल्कुल अनुकरण किया है जो एकदम उर्दू की ओर झुक गयी थी, ठीक नहीं। कहना चाहे तो कह सकते हैं कि उन्होंने साहित्यिक हिन्दी न लिखकर 'हिन्दुस्तानी' लिखी, जो केवल इसी प्रकार की हल्की रचना में काम दे सकती है।¹⁶ इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक्ल जी खत्री जी के उपन्यासों में साहित्यिकता का अभाव तो मानते हैं परन्तु उपन्यास को लोकप्रिय बनाने तथा एक सहज सरल-सुबोध भाषा का आदर्श प्रदान करने के लिए खत्री जी के योगदान को अवश्य स्वीकार करते हैं।

गोपालराम गहमरी ने कुछ अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया तथा बड़ी संख्या में मौलिक उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों के प्रकाशन के लिए उन्होंने 'जासूस' नामक मासिक पत्रिका निकाली जो ५०-६० वर्षों तक निरन्तर चलता रही। इस पत्रिका में उनके उपन्यास धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते थे। ये उपन्यास भी अत्यधिक लोकप्रिय हुए। गहमरी जी के उपन्यासों में अद्भूत लाश गुप्तचर आदि उल्लेखनीय हैं। इनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। इसी समय हरिकृष्ण जौहर ने भी अनेक तिलस्मी-ऐयारी एवं जासूसी उपन्यासों की रचना की। इस युग के दूसरे प्रमुख मौलिक उपन्यास लेखक किशोरीलाल गोस्वामी उल्लेखनीय हैं। लगभग पैसठ सामाजिक व ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन कर हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया। इनके उपन्यासों में तारा १६०२ ई०, चपला १६०३-४, तरुण तपस्विनी १६०६ ई०, रजिया बेगम १६०४, राजकुमारी १६०२, लीलावती १६०१, लवंगलता, हृदयहारिणी १६०४, लज्जनऊ की कब्र १६१७, आदि प्रमुख हैं। इन्होंने पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा घटनाओं की ओर ध्यान दिया जिसका आदर्शवाद की ओर पर्याप्त झुकाव रहा। इसी कारण यथार्थ उजागर नहीं हो सका। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इतिहास सम्बन्धी अनेक विसंगतियों के चित्रण होते हैं। इनके उपन्यासों में वासनात्मक वर्णनों की भी भरमार है। इनकी भाषा के विषय में शुक्ल जी ने लिखा है "एक और बात जरा खटकती है वह है उनका भाषा के साथ मजाक। कुछ दिन पीछे उन्हें उर्दू लिखने का शौक हुआ। उर्दू भी ऐसी वैसी नहीं, उर्दू-ए-मुअल्ला। इस शौक के कुछ आगे पीछे उन्होंने राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का चरित्र-चित्रण किया, जो सरस्वती के आरम्भ के तीन अंकों में निकला। उर्दू जबान और शेर सरबुन की बंदगी नकल से, जो असल से कभी-कभी साफ अलग हो जाती है उनके बहुत से उपन्यासों का साहित्यिक गौरव घट गया है। गलत या गलत मानी में लाये हुए शब्द भाषा को शिष्टता के दर्जे से गिरा दर्जे से गिरा देते हैं। खैरियत यह हुई कि अपने सब उपन्यासों को आपने मगनी का लिबास नहीं पहनाया 'मल्लिकादेवी या बग

सरोजिनी' में संस्कृत प्रायः समाज बहुला भाषा काम में लाई गई है। इन दोनों ही लिखावटों को देखकर कोई विदेशी चकपका कर पूछ सकता है कि क्या दोनों हिन्दी हैं? हम यह भी कह सकते हैं वह भी कर सकते हैं इस हौसले ने जैसे बहुत से लेखकों को किसी एक विषय पर पूर्ण अधिकार के साथ जमने न दिया। वैसे ही कुछ लोगों की भाषा को बहुत कुछ डांवाडोल रखा। कोई एक टेड़ा सीधा रास्ता पकड़ने न दिया।^{१०}

इस युग के ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में राधाचरण गोस्वामी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने भारतेन्दु नामक मासिक पत्रिका निकाला। जिसमें इनके ऐतिहासिक उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित होते थे। इन उपन्यासों का प्रकाशन अलग से नहीं हो सका। वे मात्र पत्रिका में प्रकाशित होकर रह गये। इस युग के अन्य ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में गंगाप्रदा गुप्त, जयरामदास गुप्त, मुंशी देवी प्रसाद, बलदेव प्रसाद मिश्र, ठाकुर बलभद्र सिंह आदि हैं।

इसी समय भाषा की दृष्टि से कुछ नये प्रयोग पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने किया। हरिऔध ने 'बेनिस का बाँका' नाम से शेक्सपियर के 'मर्चेंट आफ वेनिस' का अनुवाद किया तथा दो मौलिक उपन्यास ठेठ हिन्दी का हाट १८६६ ई० तथा अधखिला फूल १६०७ ई० में लिखा। इन उपन्यासों की रचना उन्होंने ठेठ हिन्दी में की उपन्यास कला की दृष्टि से तो नहीं अपितु भाषा प्रयोग की दृष्टि से इनका उल्लेखनीय प्रयास सराहा जा सकता है।

समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर मेहता लज्जाराम शर्मा ने भी कई उपन्यास लिखे धूर्तरसिक लाल, स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी, हिन्दू गृहस्थ, आदर्श दम्पति, बिगड़े का सुधार, आदर्श हिन्दू आदि। बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने सौन्दर्योपासक १६१२ ई०, राधाकान्त १६१८ ई०, राजेन्द्र मालती आदि उपन्यास लिखे। ये उपन्यास बंगला उपन्यास शैली के अनुकरण पर लिखित भावों-मनोविकारों की व्यंजना करने वाले हैं। सुन्दर सरोजिनी नामक एक उपन्यास देवीप्रसाद शर्मा ने लिखा। जिसको तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सराहा गया। इसी युग में हिन्दी में पहली बार ग्रामीण समस्याओं को आधार बनाकर भुवनेश्वर मिश्र ने दो उपन्यास घराऊ घटना तथा बलवन्त भूमिहार की रचना की जिसमें ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण है। बिहार के एक क्षेत्र विशेष को कथा का केन्द्र बनाने के कारण इसे आंचलिक उपन्यास भी माना जा सकता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य का जिस युग में जन्म हुआ। उस युग की मूल चेतना समाज सुधार तथा

राजनीतिक जागरण की थी। परन्तु हिन्दी उपन्यास समाज सुधार तथा मनोरजन तक ही सीमित रहा। इन उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियों मदिरापान, वेश्यागमन जुआ आदि का विरोध किया गया है। यथार्थ की अपेक्षा कल्पना को और चरित्र चित्रण की अपेक्षा घटनाओं को प्रमुखता प्रदान की गयी है। इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरजन करना था। यही कारण है कि इस युग में सामाजिक ऐतिहासिक, भावप्रधान तथा मनोरजन प्रधान तिलस्मी-ऐयारी तथा जासूसी उपन्यासों में मनोरजन प्रधान उपन्यासों की संख्या सर्वाधिक रही है। ये सभी उपन्यास सामान्य स्तर के रहे। परन्तु युग विशेष को ध्यान में रखते हुए ये प्रयास सराहनीय कहे जा सकते हैं। क्योंकि कोई भी साहित्य धीरे-धीरे अपने उत्कृष्ट स्वरूप को प्राप्त करता है। शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं “इस आरम्भ युग में उपन्यास क्षेत्र में बीज-वपन मात्र हो सका। अभी उस युग की प्रतीक्षा ही थी जब वह बीज प्रस्फुटित होकर नाना रूपात्मक जगत में अपनी शाखाएँ फैलाकर छा जाता। कला के क्षेत्र में शीघ्र ही ऐसे युगान्तकारी परिवर्तन की आवश्यकता थी जिसके फलस्वरूप कलाकृतियाँ मनोरजन मात्र की वस्तुएँ न रह जाएँ। मानव जीवन में उसका कुछ उपयोग हो, उसमें मानव का सच्चा चित्र हो, उसकी समस्याओं के साथ सहानुभूति दिखाई गई हो और उसका हल सुझाया गया हो। कहना न होगा कि स्वर्गीय प्रेमचन्द ने उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण करके इन सारी आवश्यकता को पूरा किया।”⁹⁹

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी युग के साहित्य में कोई भी प्रवृत्ति आकस्मिक रूप में उभर कर नहीं आती, अपितु उसकी प्रेरणा तत्कालीन वातावरण में अन्तर्निहित रहती है और उपयुक्त परिस्थितियों में धीरे-धीरे विकसित होती हुयी एक दिन अपने स्वरूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है। आज उपन्यास पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुका है किन्तु विकास की यह स्थिति एक दिन में सम्भव नहीं हुई है वह तो विकास की सतत प्रक्रिया का सहज परिणाम है।

२. प्रेमचन्द का उदय और उपन्यास विधा में मूलभूत परिवर्तन

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द का आगमन एक युगान्तरकारी घटना है। कथा साहित्य में उनकी महत्ता परिमेय है। प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी साहित्य में नया युग आरम्भ होता है। बल्कि यँ कहा जाय कि वास्तविक अर्थों में उपन्यास युग का आरम्भ होता है। हिन्दी उपन्यास का उद्भव जिस उद्देश्य को लेकर हुआ था, उस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों द्वारा नहीं हो पायी। पहली बार प्रेमचन्द ने उपन्यास के मौलिक क्षेत्र स्वरूप तथा उद्देश्य को पहचाना तथा साथ ही इस दृष्टि से उपन्यास साहित्य

को समृद्ध कर नयी अर्थवत्ता प्रदान की। साहित्य के प्रति दृष्टिकोण बदला। पूर्व प्रेमचन्द युग के उपन्यास लेखकों में मौलिक प्रतिभा का अभाव था। इन उपन्यास लेखकों ने अपने पूर्ववर्ती कृतियों के अनुकरण को अपना कर्तव्य मान लिया था। परम्परा से अलग नया पथ प्रशस्त करने का सामर्थ्य उनमें न था।

उपन्यास सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करता है। प्रेमचन्द ने समसामयिक जीवन में गहरे पैठकर उसकी एक-एक प्रवृत्ति को समझा और पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर उसे उसकी परिस्थितियों के प्रति सचेत किया। हिन्दी साहित्य को कुछ पाश्चात्य-साहित्य प्रेमी पाश्चात्य प्रभाव से रंगने का प्रयास करने लगे। इस स्थिति को देखते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है "जैसे भाषा का पूरा अभ्यास और उस पर अच्छा अधिकार रखने वाले, प्राचीन और नवीन साहित्य के स्वरूप को ठीक-ठीक परखने वाले अनेक लेखकों द्वारा हमारा साहित्य पुष्ट और प्रौढ़ हो चला, वैसे ही पाश्चात्य साहित्य के किसी कोने में आँख खोलने वाले और यूरोप की हर नयी पुरानी बात को 'आधुनिकता' कहकर चिल्लाने वाले लोगों के द्वारा बहुत कुछ अनाधिकार चर्चा बहुत सी अनाड़ीपन की बातें भी फैल चली। इस दूसरे ढाँचे के लोग यूरोप की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर उठे हुए नाना वादों और प्रवादों को लेकर और उनकी उक्तियों के टेढ़े-सीधे अनुवाद की उद्धरणी करके ही अपने को हमारे वास्तविक साहित्य निर्माताओं से दस हाथ आगे बता चले।.....हँसी तब आती है जब कुछ ऐसे व्यक्ति भी मध्ययुग की प्रवृत्ति क्लासिकल, रोमांटिक इत्यादि शब्दों से विभूषित अपनी आलोचना द्वारा नए युग की वाणी का संचार समझाने खड़े होते हैं, जो इन शब्दों का अर्थ तो दूर रहा, अंग्रेजी भी नहीं जानते। उपन्यास के क्षेत्र में देखिए तो एक ओर प्रेमचन्द ऐसे प्रभावशाली उपन्यासकार हिन्दी की कीर्ति का देश भर में प्रचार कर रहे हैं दूसरी ओर कोई उसकी भरपेट निन्दा करके टालस्टाय का 'पापी के प्रति घृणा नहीं दया' वाला सिद्धान्त लेकर दौड़ता है। एक दूसरा आता है जो दया वाले सिद्धान्त के विरुद्ध यूरोप का साम्यवादी सिद्धान्त ला भिड़ाता है और कहता है कि गरीबों का रक्त चूसकर उन्हें अपराधी बनाना और फिर बड़ा बनकर दया दिखाना तो उच्च वर्ग के लोगों की मनोवृत्ति है। वह बड़े जोश के साथ सूचित करता है कि इस मनोवृत्ति का समर्थन करने वाला साहित्य हमें नहीं चाहिए। हमें तो ऐसा साहित्य चाहिए जो पद-दलित अकिंचनों में रोष, विद्रोह और आत्मगौरव का संचार करें और उच्चवर्ग के लोगों में नैराश्य, लज्जा और ग्लानि का।"^{१२}

इस तरह शुक्ल जी प्रेमचन्द के महत्व को स्वीकार करते हैं कि वे पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त रहते हुए हिन्दी उपन्यास के गौरव वृद्धि में सहायक हुए। हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द ने ऐसा कौन सा योगदान दिया, जिसके कारण इस युग को 'प्रेमचन्द युग' तथा प्रेमचन्द को उपन्यास सम्राट के नाम से जाना जाता

है। हिन्दी के वरिष्ठ समीक्षक शिवनारायण श्रीवास्तव इस प्रश्न का उत्तर देते हैं – “विकासोन्मुख हिन्दी साहित्य ने किंचित क्षोभ के साथ ही अनुभव किया कि प्राणहीन गुड़ियों से खेलने वाले बचपन के वे दिन निकल गये। अब तो सामने एक संघर्षपूर्ण विस्तृत संसार अपने कठोर यथार्थ का प्रदर्शन करते हुए खड़ा था। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए हिन्दी संसार को इस चेतन जगत में अधिक समीप आने की आवश्यकता अनुभव हुई। इस आवश्यकता ने ही प्रेमचन्द को जन्म दिया। सारे रूढ़ि बन्धनों को तोड़कर उन्होंने उपन्यास वाङ्मय में युगान्तरकारी परिवर्तन कर दिया और हिन्दी के नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा हुई। काव्य के चित्रों में मानव के भिन्न-भिन्न अनुभवों और वृत्तियों का प्राचुर्य ही उत्कृष्ट काव्य की कसौटी है। जो काव्य जीवन के हर्ष और शोक, शक्ति और दुर्बलता, कुरूपता और सुरुपता, सभी पक्षों का प्रतिनिधि है, वह अवश्य ही उस काव्य की अपेक्षा महान है जिसमें चित्रित जीवन एकांगी हो। आधुनिक उपन्यास वाङ्मय जीवन की व्यापकता से होड़ लेता है। मानव की एक-एक वृत्ति समाज का एक-एक अंग तथा युग की एक-एक समस्या के चित्रण को ध्येय बनाकर ही आधुनिक उपन्यास आगे बढ़ता है। यही नहीं बल्कि इस कोरे चित्रण से भी आगे आकर उपन्यासकार अपनी विशेष प्रतिभा से मानव तथा समाज का पथ प्रदर्शित करता, उसकी वृत्तियों को मोड़ता तथा उसकी गुत्थियों को सुलझाता भी है। अपनी रचनाओं में उपन्यास के उपयुक्त आदर्शों की स्थापना करके प्रेमचन्द जी ने अन्य लेखकों के लिए पथ प्रदर्शित किया।”⁹³

प्रेमचन्द के साहित्य में हमें तत्कालीन युग का बड़ा सजीव तथा सामर्थ्य चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द के आगमन के समय समाज के स्वरूप, राजनीतिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था तथा नैतिक परम्पराओं में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा था। युग जीवन के साथ कदम मिलाते हुए अपनी दृष्टि को यथोचित विस्तार देना तथा व्यापक बनाना साधारण प्रतिभा के सामर्थ्य से परे थी। प्रेमचन्द समय की माँग को समझते हुए। अपने असाधारण प्रतिभा के बल पर इस चुनौती को स्वीकार किया तथा यथासामर्थ्य इस दिशा में सराहनीय प्रयास भी किया। तत्कालीन समाज व्यवस्था के अन्तर्गत किसान और मध्यवर्ग की स्थिति सोचनीय थी। वैसे तो प्रेमचन्द का साहित्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत है परन्तु निम्नवर्ग तथा मध्यवर्ग को उनके साहित्य में विशेष स्थान मिला। प्रेमचन्द ने उनका सांगोपांग अध्ययन किया तथा उनकी समग्रता में अपने साहित्य में उन्हें अभिव्यक्त किया। प्रेमचन्द ने किसानों की दुर्दशा का कारण जहाँ एक ओर उनके अन्ध विश्वासों को ठहराया है वही इसके लिए विदेशी लूटनीति को भी दोषी माना। यही कारण है कि स्वाधीनता उनके सामने महत्वपूर्ण प्रश्न था। प्रेमचन्द का सम्बन्ध मध्यवर्ग से था। इसी कारण वे उसकी सभी कम्बजोरियों, विशेषताओं तथा परिस्थितियों से अवगत थे। निम्नवर्ग से उनका सम्बन्ध अनुभूतिगत था। दलित

पीड़ित वर्ग की ओर उनकी समस्त भावनाएँ केन्द्रित थी।

हिन्दी उपन्यास साहित्य ही नहीं अपितु भारतीय उपन्यास साहित्य में भी प्रेमचन्द पहले उपन्यास लेखक है जिन्होंने किसान तथा मध्यवर्ग के जीवन को इतनी ईमानदारी तथा तत्परतापूर्वक चित्रित किया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की केन्द्रीय भावना सामाजिक है। समाज की मर्मन्तक वेदना की प्रेमचन्द ने अपनी आत्मा में अनुभव किया। यह सच्चाई उनके साहित्य को अत्यधिक प्रभावात्मकता प्रदान करती है। प्रेमचन्द ने किसानों तथा दीन-दुखियों के प्रति मानवीय प्रेम तथा सहानुभूति का सन्देश दिया। उन्होंने मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की समस्या को अत्यधिक निकट से देखा अनुभव किया तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया। प्रेमचन्द का युग राष्ट्रीय जीवन तथा साहित्य में नैतिकता व उपयोगितावाद का युग था। जिसके लिए समस्त अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान थी। गाँधीजी उपयोगितावाद को कला का मूल मानते थे। अन्य रचनाकारों की भाँति प्रेमचन्द भी तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित देखे जा सकते हैं। प्रेमचन्द एक सचेष्ट जागरूक रचनाकार थे। अपने युग की आवश्यकता को समझने आत्मसात् करने की उनमें अपूर्व क्षमता थी। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से नैतिकता का एक विशेष मानदण्ड स्थापित किया तथा उसे सामाजिक ध्येय की सिद्धि तथा जीवन की आलोचना-विवेचना के लिए सशक्त अस्त्र के समान अपने उपन्यास साहित्य में प्रयोग किया। इस युग के साहित्य में उपयोगिता तथा सुधार दो ठोस उद्देश्य तथा नीति एवं विवेक दो महत्वपूर्ण साधन थे। जिसको प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी परिफलित देखा जा सकता है। साहित्य के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के विचार अत्यधिक स्पष्ट हैं। उनके विचारों में निरन्तर प्रौढ़ता, गंभीरता तथा स्थिरता आती गयी जीवन तथा जगत के अनुभवों से इन विचारों में परिवर्तन भी आया। ये परिवर्तन प्रेमचन्द की महत्ता तथा ईमानदारी के द्योतक हैं।

उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द के आगमन के साथ जीवन के प्रति उपन्यास लेखकों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन आया। प्रेमचन्द ने साहित्य को न सिर्फ जीवन से जोड़ने का प्रयास किया अपितु जीवन को साहित्य की नींव के रूप में स्वीकार किया। साहित्य में प्रेमचन्द के साथ जो सापेक्षता आयी वह उनकी सबसे बड़ी देन है। साहित्य को घटना वैचित्र्य की परिधि से अलग कर समाज से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य प्रेमचन्द ने किया। जीवन को अन्तर्जगत तक सीमित नहीं माना बल्कि जीवन की महत्ता समाज सापेक्षता में स्वीकार किया। संघर्ष समाज सापेक्ष जीवन का सत्य है। प्रेमचन्द ने जीवन का उद्देश्य 'आनन्द' माना है। परन्तु इनका आनन्द भौतिक सुख सुविधाओं का पर्यार्य न होकर मानसिक तृप्ति का पर्यार्य है। जिसका आधार सत्य और सुन्दर है। इस सत्य और सुन्दर के साथ शिव नामक अनिवार्य तत्व को जोड़ने का कार्य

भी प्रेमचन्द ने किया। प्रेमचन्द उद्देश्य रहित साहित्य या कला कला के लिए सिद्धान्त के समर्थक कभी नहीं रहे। यही कारण है कि उन पर प्रचारवादिता का आरोप लगाया गया। इस आरोप के जवाब में उन्होंने कहा था कि जिस लेखक के पास विचार का अभाव होगा केवल वही प्रचार नहीं करेगा अन्यथा अपनी विचारधारा प्रस्तुत किए बिना साहित्यकार रह ही नहीं सकता उसे चाहे प्रचार कहिये या और कुछ। किन्तु अपने उद्देश्य की स्थापना कलाकार को अत्यन्त सूक्ष्म-अदृश्य तन्तुओं के माध्यम से करनी चाहिए। यदि उपयोगिता का स्तर परिस्फुट हो गया तो वह कलाकार की असफलता होगी – 'साहित्य का जन्म उपयोगिता की भावना का ऋणी है। जो चतुर कलाकार है वह उपयोगिता को गुप्त रखने में सफल होता है, जो इतना चतुर नहीं है, वह उपदेशक बन जाता है और अपनी हंसी उड़वाता है।'

प्रेमचन्द के उपन्यास 'प्रेम' से लेकर 'गोदान' तक का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि प्रेमचन्द ने आधुनिक जीवन की अधिक से अधिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के चित्रण को अपनी कला का उपकरण बनाया। परिवार की छोटी से छोटी घटनाओं से लेकर समाज और देश की बड़ी समस्याओं के अंकन का उन्होंने प्रयास किया और सफल भी रहे। इस सफलता का प्रधान कारण उनकी अलौकिक पर्यवेक्षक शक्ति तथा सांसारिक अनुभव की प्रचूरता थी। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने समाज तथा देश को उसकी समग्रता में देखा तथा सभी परिस्थितियों में स्थित मानव स्वभाव को भलीभाँति पहचाना था। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण वातावरण एवं मनःस्थिति के चित्रण में उनकी प्रतिभा अत्यधिक उद्दीप्त हुई है। ग्रामीण जीवन की जितनी अधिक स्थितियाँ, ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियाँ जितने अधिक चित्र इनकी रचनाओं में मिलते हैं उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं। नागरिक जीवन के चित्रण में उच्चवर्ग की अपेक्षा निम्नवर्ग तथा मध्यवर्ग का चित्रण अधिक मार्मिक सजीव तथा हृदयस्पर्शी है। उनके उपन्यासों की प्रत्येक घटना, प्रत्येक पात्र एवं प्रत्येक परिस्थिति हमारी पहचानी सी लगती है। अपने उपन्यासों में इन परिचित उपकरणों के प्रयोग के कारण ही इनकी कथावस्तु से हमारे मनःचेतन में कोई नया आवेग नहीं आता। उसकी शान्त, सरल गति में कहीं कोई रुकावट, कोई रहस्यमय उलझन नहीं होती, ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह हमारे ही अनुभव की अनुगामिनी हो। उनकी वस्तु-विन्यास-प्रणाली अलौकिक रंजन-शक्ति-सम्पन्न होती है। बाह्य और आभ्यान्तर दोनों का ही मार्मिक विश्लेषण होने के कारण छोटी से छोटी घटना तथा स्थिति का वर्णन भी सजीव होता है। ये घटनाएँ चाहे नई हो या पुरानी, परिचित हो या अपरिचित परन्तु इनके उपन्यासों में उनका विकास क्रमिक, संगत और सम्बद्ध होता है। प्रेमचन्द में ऐसी जागरूक प्रतिभा थी कि वह सामान्य से सामान्य घटना, व्यक्ति एवं परिस्थिति को अपने वर्णन कौशल से अद्भुत प्रभावोत्पादकता प्रदान करते

थे। प्रतिभा के इसी अविचल प्रभाव के कारण इनकी वस्तु-विन्यास-कला सर्वथा दोष-शून्य न होकर भी बड़ी ही प्रौढ़ मार्मिक और मनोरंजक होती है।

‘सेवासदन’, ‘गबन’ तथा ‘निर्मला’ अधिक सुगठित उपन्यास हैं। इन उपन्यासों की समस्याएँ एक ही वर्ग या परिवार की हैं। व्यक्ति अथवा घटना विशेष को केन्द्र बनाकर कथा अग्रसर हुई है तथा सारी कथाएँ मुख्य कथा की पूरक एवं पोषक हैं। इन तीनों उपन्यासों में कथासूत्र एक ही है। इसके विपरीत प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि तथा गोदान में अनेक स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाली कथाएँ एक ही में ग्रंथित हैं जिससे यह कहना कठिन हो जाता है कि मूलकथा कौन सी है। ये सभी उपन्यास विभिन्न वर्गों की समस्याओं से सम्बन्धित नवीन जागृति के परिचायक, आन्दोलन प्रधान हैं। इनमें एक ओर किसान मजदूर वर्ग है तो दूसरी ओर जमींदार-पूँजीपति वर्ग, एक ओर नागरिक जीवन है तो दूसरी ओर ग्रामीण जीवन। प्रेमचन्द ने विभिन्न रंग-रूप वाली कथाओं को एक साथ प्रस्तुत करके भी उनके सम्बन्ध सूत्र को कहीं भी विश्रुंखलित नहीं होने दिया है।

घटनाओं के संगठन में प्रेमचन्द के पात्रों का सक्रिय सहयोग होता है। इनके उपन्यासों को न तो चरित्र-प्रधान कहा जा सकता है और न घटना प्रधान। प्रेमचन्द एक विशेष वातावरण एवं परिस्थिति में कुछ विशिष्ट मनःस्थिति वाले पात्रों को रखकर कथा का सूत्रपात कर देते हैं। तदुपरान्त व्यक्ति एवं परिस्थिति की प्रतिक्रिया से कथानक अग्रसर होता है। व्यक्ति के क्रियाकलाप नई-नई परिस्थितियों का निर्माण करते हैं और परिस्थितियों के अनुसार ही चरित्र का विकास होता है। यद्यपि चरित्र विवशतापूर्ण घटनाओं के साथ आबद्ध है फिर भी उनका मनोबल इतना प्रबल है कि घटनाओं को साथ लिए चलता है। मानव परिस्थितियों से कैसे प्रभावित होता है तथा मानव ही किस प्रकार नयी परिस्थितियों की सृष्टि करता है। इसका चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यास में मिलता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द की कृतियों में यथार्थवादी कला का विकास तथा उत्कर्ष देखा जा सकता है। इनके पात्र कहीं निराले लोक के निवासी नहीं अपितु हमारी तरह इसी दुःख संताप पूर्ण संसार के निवासी होते हैं। इन मानव में दुर्बलता-सबलता दोनों ही हैं। इनके उपन्यास के पात्र हमारे अपने चारों ओर चलने-फिरने उठने-बैठने वाले प्राणी हैं। इनके रंग-रूप, बोल-चाल, कार्य-प्रणाली, मनोदशा, रहन-सहन का इतना जीवन्त वर्णन किया है कि वास्तविकता का भ्रम हो जाता है। परिस्थितियों से संचालित इनके चरित्र मानव सीमा तथा सौन्दर्य के प्रतीक हैं। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में व्यक्तियों का चित्रण न करके वर्गों का चित्रण किया है। इनके पात्र वर्ग विशेष की मनोवृत्ति के परिचायक हैं। किसान, जमींदार, साहूकार, हाकिम, वकील, दरोगा, पटवारी आदि विभिन्न एवं

पेशे के व्यक्तियों में से जहाँ एक व्यक्ति का चित्रण किया है वहीं उस वर्ग की समस्त विशेषताओं को एकत्रित कर दिया है। जिससे व्यक्ति के रूप में हम पूरे वर्ग को समझ सकते हैं। प्रेमचन्द ने व्यक्ति को केन्द्र न मानकर समाज को केन्द्र माना है। इनके उपन्यास सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने में सफल रहे हैं। साथ ही समाज सापेक्ष व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं में भी उनकी पैठ रही है। ऐसे पात्रों के व्यवहारिक मनोविज्ञान का सुन्दर परिचय होता है।

प्रेमचन्द कुछ चुने हुए व्यंजक शब्दों के द्वारा पात्र विशेष को हमारे सामने ला देते हैं। प्रेमचन्द की सफलता का रहस्य भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी आरम्भिक कृतियों की भाषा अवश्य ही थोड़ी शिथिल है। परन्तु बहुत ही कब समय में उनकी भाषा में जो तेजस्विता, सरलता, भाव व्यंजकता तथा मधुरता आयी, वह हिन्दी साहित्य की नवीन उपलब्धि थी। उर्दू के साधारण शब्दों के मेल से बनी हुई जिस भाषा का प्रयोग प्रेमचन्द ने किया उसमें अपनी गति एवं प्रवाह है। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। प्रेमचन्द का महत्व केवल इसी बात में नहीं है कि उन्होंने तत्कालीन समाज की अनेक पक्षीय समस्याओं एवं विकृतियों की ओर संकेत करके सुधार किया तथा अपने युग एवं समाज के साहित्यिक स्वर बने वरन् उनका महत्व इस बात में भी है कि उन्होंने कथा-साहित्य को एक नूतन कलात्मक गरिमा दी। प्रेमचन्द के ऊपर बहुत बड़ा दायित्व था। क्योंकि वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार थे। अतएव उनके लिए आवश्यक था। उनकी रचनाओं में जीवन की अधिक मार्मिक दशाओं तथा समाज और देश की अधिक से अधिक समस्याओं का समाहार हो। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन को अपने साहित्य का विषय बनाया जो मानव मंगल के लिए आवश्यक भी था। प्रेमचन्द के उपन्यास हमारी जागृति का इतिहास है। राजनाथ शर्मा ने प्रेमचन्द की विचारधारा और उनके कथा-साहित्य का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि "प्रेमचन्द अपने युग की सम्पूर्ण गतिविधियों तथा उनसे प्रभावित समाज के अत्यन्त सजग और सूक्ष्म-दृष्टा कथाकार थे। उस समाज तथा उसके प्रत्येक वर्ग की स्थिति तथा तज्जनित समस्याओं से उनका निकट का घनिष्ठ परिचय था। उनके अपने व्यापक जीवनानुभवों, युग-द्रष्टा की सी सूक्ष्म अन्वेषणशील गहरी दृष्टि, अमित मेधा, उर्वर कल्पना तथा सहज सरल भाषा शैली के बल पर ही वे अपने समकालीन युग का ऐसा यथार्थ और मार्मिक चित्रण करने में सफल हुए थे कि उनकी गणना विश्व-साहित्य के मूर्धन्य कलाकारों में की जाती है। उनके कथा साहित्य में हमें समकालीन भारतीय समाज का ऐसा मुखर और ज्वलन्त चित्र अंकित मिलता है कि उसके आधार पर उस युग का एक सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है। यदि उस युग के समाज और इतिहास को हम जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द साहित्य से अधिक प्रामाणिक साक्षी हमें कोई

दूसरा नहीं मिल सकता।”^{१४}

३. उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियाँ

उपन्यास मानव जीवन की स्थापना या चित्रण करता है। ‘प्रवृत्ति’ का अर्थ है – ‘किसी काम, विषय या बात की ओर अथवा विशिष्ट दिशा में प्रवृत्त होने या बढ़ने की क्रिया का भाव।’^{१५} अतः उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियों से तात्पर्य है – उपन्यासों में निरूपित मानव जीवन की विधि और उसकी दिशा। मनुष्य व्यक्ति रूप में जीवन ग्रहण करता है तथा समाज के सम्पर्क में आकर जीवन यापन करता है। “मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों को लिये-दिये दूसरों के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलाता और कहीं लड़ाता हुआ अन्त तक चला चलता है और इसी को जीना कहता है।”^{१६} अतः जीवन का अर्थ हुआ सामाजिक जीवन। मनुष्य के सामाजिक जीवन तथा सामाजिक सम्बन्धों को प्रस्तुत करना – सामाजिक उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्ति है। सामाजिक उपन्यास जीवन की व्यक्त, बाह्य गतिविधि को प्रस्तुत करता है। उसके पात्र समाज से निरन्तर अपना सामंजस्य बनाये रखते हैं। वे कभी सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को, तो कभी स्वयं के अनुसार परिस्थितियों को निर्मित करते हैं। सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण करते हैं। मानव के विकास क्रम में ही समाज स्थापित हुआ। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं आदि की पूर्ति अकेले नहीं कर सकता अतः उसे परिवार तथा समाज की आवश्यकता हुई। सामाजिक भावना उत्तरोत्तर विकसित होती रही है। समाज सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है। समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में सहायक है। प्रेमचन्द ने व्यक्तिवादी साहित्य का विरोध किया और ऐसे साहित्य के निर्माण का समर्थन किया जो व्यक्ति एवं समाज की उन्नति में सहायक हो।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में सन् १९३६ महत्वपूर्ण वर्ष है। प्रेमचन्द के निधन के साथ जहाँ एक समृद्ध युग समाप्त होता है, वहीं दूसरा युग आरम्भ होता है। इस नये साहित्यिक युग में पूर्ववर्ती युग की परिणति तथा विकास देखा जा सकता है। यही कारण है कि प्रेमचन्दोत्तर युग में जिन नवीन प्रवृत्तियों का उद्भव एवं विकास हुआ। उसका पूर्वाभास प्रेमचन्द की कृतियों में मिलने लगा था। प्रेमचन्दोत्तर युग में विषय-वस्तु तथा शैली शिल्प दोनों में ही विविधता आई। इस युग के लेखकों ने परम्परागत विषय तथा शैली दोनों का विरोध किया। कुछ लेखकों के विषय तथा शैली दोनों में परिवर्तन आया तथा कुछ ने विषय भिन्न अपनाये लेकिन शैली की दृष्टि से पूर्ववर्ती युग के अनुयायी रहे। तो कुछ इसके विपरीत विषय की दृष्टि से प्रेमचन्द के अनुयायी रहे तथा शैली में परिवर्तन किया। प्रेमचन्द की परम्परा का पूर्ण निर्वाह करने वाले उपन्यास

लेखकों का अभाव सा हो गया। उपन्यास लेखकों का स्थूल जगत के प्रति आकर्षण कम हो गया। शायद इसका कारण यह था कि प्रेमचन्द बाह्य जगत के सम्बन्ध में इतना अधिक लिख चुके थे कि इन उपन्यास लेखकों के लिए कुछ नया बचा ही न था। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह हो सकता है कि उस समय मानव मन के विश्लेषण अर्थात् मनोविश्लेषण का एक नया उत्साह लेखकों में पैदा हो गया था। जिससे उपन्यास बहिरंग जगत को छोड़कर मनोजगत् की ओर प्रवृत्त हुआ। इस युग की मुख्य प्रवृत्ति स्थूल से सूक्ष्म की ओर थी। हिन्दी उपन्यास साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हम पाते हैं कि प्रेमचन्द युग में ही कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगी थी। परख, सुनीता, त्यागपत्र आदि इनके उदाहरण हैं। यही प्रवृत्तियाँ प्रेमचन्दोत्तर युग में और अधिक प्रबल हुई। मौलिकता एवं बहुपक्षीय प्रयोग के परिणामस्वरूप हिन्दी उपन्यास साहित्य की जहाँ अनेक मूल्यवान् कृतियाँ 'चित्रलेखा', 'सुनीता', 'शेखर एक जीवनी', 'वाणभट्ट की आत्मकथा', 'सन्यासी', 'देशद्रोही', 'गिरती दीवारें', 'बलचनमा', 'परती परिकथा', 'बूँद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर', 'झूठा-सच' आदि प्रकाश में आयी, वहीं अनेक कृतियाँ प्रयोग तथा मौलिकता का आग्रह मात्र होकर रह गयी। तत्कालीन उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्ति सामाजिक, व्यक्तिवादी तथा मनोविश्लेषणवादी है।

सामाजिक उपन्यास

सामाजिकता की प्रवृत्ति उपन्यासों में मुख्य रूप से मिलती है। हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' भी सामाजिक परिवर्तनों का आभास देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान भी जब उपन्यास साहित्य की तरफ गया तो सबसे पहले सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले मराठी उपन्यास 'पूर्ण प्रभाचन्द्र प्रकाश' का अनुवाद कराकर लेखकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया तथा उन्हें प्रोत्साहित भी किया। हिन्दी उपन्यास साहित्य में समाज के यथार्थ रूप का चित्रण प्रेमचन्द युग से प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द सुधारवादी लेखक थे। इन्होंने हिन्दी उपन्यास को 'चन्द्रकान्ता संतति' जैसे तिलस्मी ऐयारी उपन्यास तथा जासूसी उपन्यासों के पाठकों को 'सेवासदन' तक पहुँचाया। प्रेमचन्द समाज समस्याओं तथा बुराईयों का तटस्थ चित्रण करना ही कलाकार का उद्देश्य नहीं मानते थे। उनका मानना था कि समाज की वर्तमान स्थिति में जो कुछ अच्छा है उसका विकास हो तथा जो कुछ घृणित और त्याज्य है उसका निराकरण किया जाय। इस दृष्टि से वे सुधारवादी लेखक के साथ मानवतावादी तथा आदर्शवादी लेखक भी थे। परन्तु जीवन के कटु अनुभवों ने उन्हें आदर्श और उपदेश के खोखलेपन से अवगत कर दिया। यही कारण है कि गोदान तक आते-आते वे सुधार तथा आदर्श से बहुत कुछ मुक्त हो जाते हैं तथा यथार्थ जीवन का अध्ययन तथा विश्लेषण करने लगते हैं।

प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनेक प्रवृत्तियों का जन्म हुआ परन्तु प्रेमचन्द की परम्परा को जीवित रखने वाले उपन्यास लेखकों का भी अभाव नहीं रहा। ऐसे उपन्यासकारों की एक लम्बी परम्परा है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को अपने उपन्यासों का केन्द्रीय वस्तु बनाया। ऐसे उपन्यास लेखकों में जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, उदयशंकर भट्ट, डा० रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अशक, राजेन्द्र यादव, भाकर माचवे आदि मुख्य हैं। इन सभी उपन्यास लेखकों का मुख्य उद्देश्य समाज हित है परन्तु उसे सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से देखा समझा तथा व्यक्त किया है। सामाजिक उपन्यास की प्रवृत्ति के पोषक तथा समर्थक के रूप में इन उपन्यास लेखकों को स्वीकार किया जाता है। सामाजिक उपन्यास लेखक परिवर्तनशील समाज की परिस्थितियों तथा विचारधाराओं से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। परिणामस्वरूप यह उपन्यास अविच्छिन्न रहती हुई क्रमशः समृद्ध होती गयी। उपन्यास लेखक प्रेमचन्द की भाँति समान व्यक्ति को सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश में रखकर चित्रित करते हैं। इन का मानना है कि समाज व्यक्ति को प्रभावित करता है, व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में समाज की भूमिका महत्वपूर्ण है। व्यक्ति अपनी अन्तर्गुहा में बन्दी सामाजिक सत्यों से अप्रभावित कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है और न अकेले उसकी कोई सार्थकता ही है। वह सामाजिक जीवन के प्रवाह में बहता हुआ, उसकी समूची चेतना को झेलता हुआ गतिशील सत्ता है, अपनी जगह स्थित नदी का द्वीप नहीं है।¹ व्यक्ति के लिए समाज एक आवश्यक आवश्यकता है। इसके बिना उसका अस्तित्व नहीं है।

सामाजिक उपन्यासों में समाज की समस्याओं को उठाया गया है तथा उसके समाधान की ओर भी संकेत किया गया है। जाति-पाति, अंधविश्वास, किसानों का शोषण, चुनाव के दृश्य, नारी समस्या आदि को विविध भूमियों पर विविध रूप में इन उपन्यासों को चित्रित किया गया है। मध्यवर्गीय समाज इन उपन्यासों में अधिक अभिव्यक्त हुआ है। ये उपन्यासकार विशेष रूप से मध्यवर्गीय नारी की समस्याओं को चित्रित करते हैं। निम्नवर्गीय नारी की समस्याओं को अपेक्षाकृत कम स्थान मिला है। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने नारी के सर्वांगीण जीवन तथा व्यक्तित्व को संवेदनापूर्वक चित्रित किया। प्रेमचन्दोत्तर युग में फ्रायड, एडलर युग से प्रभावित उपन्यास लेखकों ने नारी मन की उथल-पुथल, स्त्री-पुरुष के आकर्षण-विकर्षण की समस्या को प्रस्तुत करना आरम्भ किया। पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा इस युग में नारी के वैयक्तिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता का समर्थन अधिक हुआ। सामाजिक उपन्यासों के प्रधान पात्र अधिकांशतः आदर्शवादी होते हैं। सामाजिक उपन्यासों के प्रधान पात्र अधिकांशतः आदर्शवादी होते हैं। प्रेमचन्द के प्रायः सभी पात्र विशेष रूप से नायक उदात्त भावना से युक्त हैं। इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द पूरे

समाज को चित्रित करते हैं। यही कारण है कि एक पात्र के अध्ययन से समाज के उस वर्ग का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है। जिससे उसका सम्बन्ध होता है। प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक उपन्यासों के पात्र भी इनसे मिलते जुलते हैं। यद्यपि मनोवैज्ञानिक तत्वों के समावेश के कारण उनका व्यक्तित्व कुछ अलग है। प्रेमचन्दोत्तर युग के अधिकांश लेखकों ने मध्यवर्गीय जीवन की विकृतियों एवं कुष्ठाओं पर अपनी दृष्टि विशेष रूप से केन्द्रित की है, व्यक्तिगत और संस्थागत जीवन के चित्रणों के लिए सामग्री, समसामायिक परिस्थितियों को देखते हुए इस युग में उपलब्ध थी उतनी और कहीं नहीं जिसका इस युग के उपन्यासकारों ने काफी फायदा उठाया। इस युग के सामाजिक उपन्यास लेखकों ने प्रायः दो प्रकार के सामाजिक उपन्यास लिखे। समष्टि रूप से सामाजिक उपन्यासों में समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सापेक्षिक महत्व और स्थान को केन्द्र मानकर उनकी स्थितियों तथा संघर्षों का चित्रण होता है। यही कारण है इन उपन्यासों के पात्र समाज के किसी एक विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किये गये हैं। सामाजिक उपन्यास कला की आधारभूत व्यक्ति धारा व्यक्ति चिन्तन से सम्बद्ध न होकर लोक मंगल की भावना से अनुप्रेरित हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी ने सामाजिक उपन्यास की प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है “सामाजिक यथार्थवाद अन्य यथार्थवादों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ एवं विकासोन्मुख है। इसके द्वारा जीवन तथा समाज में अधिकाधिक संतुलन एवं समन्वय स्थापित किया जा सकता है।”^{२७} सामाजिक प्रवृत्ति के उपन्यासकार परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा विचारधाराओं से प्रेरणा प्राप्त करके अपनी कला को क्रमशः नवीन साँचे में ढालते आए हैं जिसके फलस्वरूप सामाजिक उपन्यास की परम्परा अविच्छिन्न रहकर उत्तरोत्तर समृद्ध होती रही है। इस परम्परा के अक्षुण्ण होने के कारण लेखकों द्वारा व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग स्वीकार करने में दृढ़ विश्वास है। इस प्रकार उपन्यास की सामाजिक प्रवृत्ति जिसका अनागत उज्ज्वल है। प्रेमचन्द से लेकर नागर तथा रेणु तक विकासशील रही है। इसकी विकासशीलता अथवा गतिशीलता का हेतु लेखकों का किसी मतवाद के अधीन न होकर व्यक्ति और समाज में सामंजस्य और जीवन में संतुलन स्थापित करने का प्रयास है।

व्यक्तिवादी उपन्यास

आधुनिक युग में व्यक्ति समाज के समक्ष अपने अस्तित्व का बोध कराता हुआ खड़ा है। समाज पीछे रह गया है, व्यक्ति सामने आ गया है। व्यक्ति का महत्व समाज सापेक्षता में नहीं, स्वतंत्र व्यक्तित्व में है। प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास लेखकों में गाँधीवाद के उदात्त रूप मानवतावाद को अपनाया है। इनके उपन्यासों का केन्द्र समाज न होकर व्यक्ति है। व्यक्तिवादी उपन्यास के लक्षणों का उल्लेख करते हुए

नन्ददुलारे वापजेयी उन सभी कृतियों को व्यक्तिवादी उपन्यास की संज्ञा देते हैं "जिनमें व्यक्तिगत जीवन घटना, व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान या व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण या निर्देश सर्वोपरि रहता है।"^{१६} इस तरह कहा जा सकता है कि व्यक्तिवादी उपन्यासों में समाज तथा सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा व्यक्ति, व्यक्तिगत समस्या तथा वैयक्तिक मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। वैयक्तिक जीवन का चित्रण व्यक्तिवादी उपन्यास की प्रमुख विशेषता है। इस विशेषता के कारण यह सामाजिक उपन्यास से भिन्न है परन्तु व्यक्ति को केन्द्र मानने के कारण मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों से निकट जान पड़ता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या व्यक्तिवादी और मनोविश्लेषणवादी उपन्यास एक ही है? इस प्रश्न का उत्तर देती हुयी सुषमा धवन लिखती हैं "जब किसी उपन्यास में वैयक्तिक चेतना की अभिव्यक्ति इतनी अर्न्तमुखी तथा आत्मकेन्द्रित हो कि इसके परिणामस्वरूप सामाजिक चेतना की व्यंजना नितान्त क्षीण पड़ गयी है तो रचना विशेष को मनोविश्लेषणवादी उपन्यास की संज्ञा दी गई है।"^{१७} व्यक्तिवादी जीवन दर्शन आधुनिक युग की उपज है। सामन्ती समाज व्यवस्था में व्यक्ति का जीवन सामाजिक रूढ़ियों तथा मर्यादाओं की एक विशेष श्रृंखला में बंधा था। व्यक्तिवादी जीवन दर्शन मानव चेतना के विकास का परिणाम है। मध्यवर्ग के उदय के साथ व्यक्ति भावना अस्तित्व में आयी। आरम्भ में इसे सामाजिक उपन्यासों में स्थान मिला। जिसमें राष्ट्रीय चेतना भी विद्यमान थी। यही व्यक्तिवादी भावना क्रमशः विकसित होती हुई विराट रूप धारण कर व्यक्तिवादी उपन्यासों में परिणति हुई। मध्यवर्गीय समाज के साथ सीधा सम्बन्ध होने के कारण इसका विकास एवं ह्रास मध्यवर्गीय ह्रास एवं विकास से प्रभावित होता रहता है। व्यक्तिवादी उपन्यासकार व्यक्ति के विचार तथा मनोभावों को चित्रित करता है। यह मध्यवर्गीय समाज की जन संस्कृति तथा जीवन की चेतना को व्यक्त करता है। प्रेमचन्द के पात्रों की भाँति इसके पात्र वर्गगत नहीं होते अपितु वे व्यक्तिगत विशेषताओं से युक्त होते हैं। उपन्यास लेखक व्यक्ति को उसकी सम्पूर्णता में समझने-समझाने के साथ उसके महत्व को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। व्यक्ति का अस्तित्व उसके लिए एक जटिल समस्या है। व्यक्ति को केन्द्र मानने के कारण इसका क्षेत्र सीमित हो जाता है। लेखक व्यक्ति के बाह्य चित्रण की अपेक्षा उसके आन्तरिक जीवन के चित्रण में अधिक रुचि लेता है। अन्तः एवं बाह्य पक्षों के परस्पर संघात को प्रस्तुत करना मानो उसके साहित्य का लक्ष्य हो। यह व्यक्ति के वैयक्तिक अस्तित्व तथा उसकी स्वतंत्रता को महत्व प्रदान करता है। व्यक्तिवादी उपन्यास के पात्र प्रायः सामाजिक रूढ़ियों के विरोधी होते हैं। वे परम्परावादी रूढ़ियों तथा विचारों की अपेक्षा स्वतंत्र वैयक्तिक विचारों से प्रेरित तथा प्रभावित है। प्रेम तथा विवाह इनके जीवन की जटिलतम समस्या है। ये पाप पुण्य, नैतिकता-अनैतिकता को एक दम नयी कसौटी

पर परखते हैं। इस नये आलोक में अपना विकास पथ प्रशस्त करते हैं। व्यक्तिवादी जीवन दर्शन से प्रभावित होने के कारण इन उपन्यासों की शैली भी इससे प्रभावित है। व्यक्तिवादी उपन्यास लेखकों में भगवतीचरण वर्मा, जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अशक आदि प्रमुख हैं। इनकी उपन्यास कला व्यक्तिवादी जीवन दर्शन से प्रभावित है। भगवती चरण वर्मा ने अपने उपन्यासों चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढ़े-मेढ़े रास्ते तथा आखिरी दाँव में व्यक्ति व समाज की समस्याओं को वैयक्तिक प्रगति के मानदण्ड पर देखने का प्रयास किया है। इन उपन्यासों में नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया। वर्मा जी की जीवन दृष्टि व उपन्यास कला दोनों ही व्यक्तिवादी जीवन दर्शन से प्रत्यक्ष प्रभावित हैं। जबकि अशक जी दोनों दृष्टियों से परोक्ष प्रभावित जान पड़ते हैं। जयशंकर प्रसाद अपने उपन्यासों में धार्मिक आडम्बर, सामाजिक विषमता व विरूपता को व्यक्तिवादी जीवन दर्शन की दृष्टि से अंकित किया है, तो उदयशंकर भट्ट मानवता की महिमा व महत्व को स्थापित करने के लिए दुख संतप्त व्यक्ति, शोषित नारी को केन्द्र बनाया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के व्यक्तिवादी उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु मध्यवर्गीय परिवार का व्यक्ति उसकी समस्याएँ व चिंताएँ हैं। उनका विचार है कि समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति की उन्नति आवश्यक है। यही कारण है कि उनका साहित्य समाजवादी, वर्गवादी न होकर व्यक्तिवादी है।

व्यक्तिवादी उपन्यासों में समष्टि-मानस की तुलना में व्यक्ति मानस को अधिक स्थान मिला है। सामाजिक चेतना की अपेक्षा वैयक्तिक चेतना अधिक मुखर है। इस उपन्यासों में सामाजिकता का जो जितना प्रयोग हुआ है वह भी व्यक्तिनिष्ठ है। व्यक्तिगत भावना व समस्या सामाजिक जीवन व समस्या पर हावी है। व्यक्ति के महत्व को प्रकट करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "विभिन्न युगों में साहित्यिक साधनाओं के मूल में कोई न कोई व्यापक मानवीय विश्वास होता है। आधुनिक युग का यह व्यापक विश्वास मानवतावाद है.....नवीन मानवतावादी विश्वास की सबसे बड़ी बात है इसकी ऐहिक दृष्टि और मनुष्य के मूल्य और महत्व की मर्यादा का बोध। इस नवीन मानवतावाद को स्वीकार करने का युक्तिसंगत परिणाम हो सकता है मनुष्य की मुक्ति। सब प्रकार के सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक शोषणों से मनुष्य को मुक्त किया जाना चाहिए क्योंकि मनुष्य के जीवन का बड़ा मूल्य है।"²⁹ यह मानवतावाद का व्यापक जीवन दर्शन है जिसका प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर भी पड़ा। व्यक्ति समाज की इकाई है। परन्तु इन उपन्यासों का व्यक्ति समाज की इकाई मात्र न होकर अपना पूर्ण एवं स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। यही कारण है कि व्यक्तिवादी उपन्यास लेखक मध्यवर्गीय स्थिति, यथास्थितिवादिता के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करता है

और समाज जीवन के रूढ़िबद्ध आदर्शों से मुक्त कर व्यक्ति को उसकी पूर्ण गरिमा के साथ प्रतिष्ठित करता है। कंकाल और तितली में जयशंकर प्रसाद समाज द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति को उसके मानवीय गुणों के आधार पर प्रतिष्ठित किया है।

व्यक्तिवादी उपन्यास व्यक्ति के अन्तर्मन का विश्लेषण करने के कारण जीवन का विस्तृत चित्र नहीं खींच सका जिसके कारण जीवन का एक अंश ही विवेचन का आधार बना। व्यक्ति अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभरा तथा उपन्यास की कथा जीवन के अधिक निकट आ गयी। व्यक्ति के जीवन के बिखराव को लेकर लिखे गये उपन्यासों के कथानक में घटनाओं का अभाव होने लगा। टूटे व्यक्ति की खण्ड-खण्ड संवेदनाओं और अनुभूतियों का प्रतीकात्मक चित्रण इन उपन्यासों का उद्देश्य बन गया। जीवन की कुछ अनुभूतियों, संवेदनाओं और एक दो घटनाओं के आधार पर ही कथानक निर्मित किये जाने लगे। दो एकात्म (नरेश मेहता), चोंदनी के खण्डहर (गिरिधर गोपाल), सोया हुआ जल (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) आदि उपन्यासों में ये प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण व्यक्ति से सम्बन्धित है। व्यक्ति का दृष्टिकोण समाज सापेक्ष भी हो सकता है और समाज निरपेक्ष भी। इसका प्रेरक अह भी हो सकता है और बौद्धिक आग्रह भी। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि व्यक्तिवादी उपन्यास व्यक्ति के अन्तर्मन का उद्घाटन करता है। उपन्यास व्यक्ति को केन्द्र मानकर लिखे जाने के कारण व्यक्तिवादी और विकसित रूप में मनोविश्लेषणवादी उपन्यास कहलाते हैं।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यास

व्यक्तिवादी उपन्यास की तरह मनोविश्लेषणवादी उपन्यास भी आधुनिक युग चेतना की देन है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों ने बाह्य क्रिया-कलाप तथा घटना व्यापारों को चित्रित किया। प्रेमचन्द अन्तः तथा बाह्य से समन्वित सजीव सप्राण तथा विश्वसनीय चरित्र निर्मित करने में सफल रहे हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विवेचन खूब मिलता है किन्तु उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में परिलक्षित होता है। प्रेमचन्द के पश्चात् उपन्यास शनैः शनैः मानव व मानवमन का अन्वेषण विश्लेषण प्रधान हो गया तथा आधुनिक उपन्यास नितान्त व्यक्तिगत अनुभूतियों को आधार बनाकर लिखे जाने लगे।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का तात्पर्य उन उपन्यासों से है जो मूलतः मनोविश्लेषण पर आधारित हैं। साहित्य के लिए मनोविज्ञान नयी वस्तु नहीं है, वह आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक के

सभी कवियों और साहित्यकारों की कृतियों में लक्षित होता है, किन्तु मनोविश्लेषणवादी अपने सीमित अर्थ में आधुनिक चीज है। मनोविश्लेषणवाद मस्तिष्क के तीन विभाग चेतन उपचेतन और अवचेतन को महत्व देता है। मनोविश्लेषणवाद के अनुसार यही अवचेतन हमारे व्यक्तित्व, हमारे सारे कार्य व्यापारों, हमारे सारे दैनिक आचारों का निर्माता और नियता है। अवचेतन में मनुष्य की कुछ आदिम-वासनाएँ रहती हैं। फ्रायड इन्हें यौन वासनाएँ, एडलर इन्हें हीनता की भावनाएँ, युग जीवनेच्छाएँ मानते हैं। मानव के अवचेतन में जो आदिम वासनाएँ पैदा होती हैं। वे अपनी प्रकृति में बड़ी ही अपरिष्कृत एवं उदण्ड होती हैं, स्वार्थी होती हैं, सामाजिक सम्बन्धों को समझने व निभाने वाला चेतन इन उठती हुयी वासनाओं को बार-बार दमित करता है और ये वासनाएँ फिर अपनी जगह पर लौट आती हैं तथा बाँध दी गयी नदी के समान अवचेतन में एक प्रकार के दलदल की सृष्टि करती हैं जिसको ग्रन्थियाँ कहते हैं। इनके सम्बन्ध में इलाचन्द जोशी का कथन है “उसने वैज्ञानिक आधार पर अवचेतन मन सम्बन्धी सिद्धान्त की स्थापना की और वैज्ञानिक पद्धति से ही उसका विश्लेषण तथा विवेचन किया। इस कोरे वैज्ञानिक युग में उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या अत्यन्त लोकप्रिय हो उठी। उसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि उसने यौन प्रवृत्ति से सम्बन्धित मनोवेगों को भरसक अपने मन के भीतर दबाते रहने का प्रयत्न करता चला आता है। वे दमित मनोवेग एकदम लुप्त नहीं हो जाते वे उसके अचेत मन के नीचे मन के अवचेतन भाग में एकत्र होते रहते हैं। उससे दमित मनोवेगों में कभी-कभी भूकम्प आ जाता है या मन्थन होने लगता है। सचेत तथा अवचेतन मन के बीच द्वन्द्व मचता है जिसके फलस्वरूप विविध मानसिक उलझने उत्पन्न हो जाती हैं। फ्रायड के अनुसार हमारे स्वभाव की जितनी भी विकृतियाँ हैं उसका मूल कारण दमित यौन प्रवृत्ति है।”^{२२}

फ्रायड के अनुसार मस्तिष्क में वास्तविक कर्म तर्क से नहीं प्रवृत्ति और आवेग से संचालित होते हैं। मस्तिष्क स्पन्दन, विचारों, बोध, ज्ञान और तार्किक क्रमों या कुछ निश्चित आध्यात्मिक सारों का समुच्चय नहीं है बल्कि वह एक गहरा उर्मिल बिन्दु है जिसके रहस्यमय तत्त्व उसके चेतन स्तर या तर्क में उपलब्ध नहीं होते बल्कि पूर्ण अवचेतन और प्रवृत्तियों की गहराई से ही प्राप्त होते हैं।

एडलर की धारणा है ससार में व्यक्ति कमजोर असहाय तथा महत्वहीन रूप में आता है। वह प्रकृति से लड़ने तथा अपनी आवश्यक आवश्यकता को पूर्ण करने में असफल होता है। वह अनुभव करता है कि उसके बड़े उसकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति तथा ज्ञान रखते हैं। अपनी इच्छानुसार जीवनयापन करते हैं। इन सब कारणों को देखता हुआ वह बड़ों की शक्ति से अभिभूत होता है तथा अपने अन्दर हीन भावना का अनुभव करता है। इस हीन भावना की क्षतिपूर्ति के लिए वह अपने वातावरण को प्रभावित करना चाहता

है। इस प्रकार एडलर के अनुसार हीन भावना की अनुभूति बच्चों को प्रयत्न के लिए प्रेरित करती है।

युग जीवनेच्छा को मूल प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। इन जीवनेच्छा में लोक वित्त और पुत्र तीनों एषणाएँ समाविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जीना चाहता है उसका अस्तित्व अमर रहे इस इच्छा से वह अनेक प्रयत्न करता है। साहित्य सृजन की इन प्रयत्नों में एक प्रमुख प्रयास है। युग के जिजीविषा सिद्धान्त में फ्रायड एडलर के सिद्धान्त समाविष्ट हो जाते हैं। युग व्यक्तिगत अवचेतन के साथ सामूहिक अवचेतन को भी स्वीकार करते हैं तथा दोनों का अन्तर भी प्रस्तुत करते हैं।

मनोविज्ञान के इन नये सिद्धान्तों का महत्व स्वीकार करते हुए जोशी जी लिखते हैं “फ्रायड, युग एडलर के मनोविज्ञान से सम्बन्धित कुछ ऐसे नये सिद्धान्तों की खोज की जिससे मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्रचण्ड क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर दी। इन नये सिद्धान्तों में सबसे प्रमुख बात अवचेतन मन सम्बन्धी खोज है।”²³ इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्वीकार कर जिन उपन्यास लेखकों ने उपन्यास की रचना की वे किसी शक्तिशाली स्मरणीय चरित्र की सृष्टि नहीं कर सके। वे पात्रों की अवचेतन-स्थित मूल प्रवृत्तियों और चेतन के साथ उनके सघर्षों की उधेड़-विवेचना दोनों पक्षों को न सिर्फ प्रभावित किया अपितु बहुत कुछ बदला भी। जीवन के समस्त स्वीकृत मूल्यों को अस्वीकार कर मनोविश्लेषणवाद ने जीवन के सत्यो तथा मूल्यों के बारे में नयी विचार दृष्टि प्रस्तुत की। मानव चरित्रों के स्वीकृत प्रतिमानों को नकार कर उनके भीतर स्थित नयी वास्तविकता को अभिव्यक्त किया। इन सिद्धान्तों को आधार बनाकर सर्जना और विवेचना करने वालों का एक अलग ही स्कूल बन गया।

मनोविज्ञान की नयी खोजों और प्रयोगों ने चरित्र सम्बन्धी पूर्व धारणाओं को परिवर्तित करके यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य का चरित्र चेतन से नहीं अवचेतन से निर्मित व संचालित होता है। मनुष्य के अवचेतन में वह आदिम वृत्तियाँ होती हैं जो उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाकलापों की मूल प्रेरक हैं। इसलिए मनुष्य के चरित्र की खोज इन अवचेतन स्थित वृत्तियों में ही की जानी चाहिए। मनोवैज्ञानिक उपन्यास इन्हीं वृत्तियों की देन है। उपन्यास लेखक अविस्मरणीय प्रभावशाली, सशक्त नायकों, पात्रों आदि के स्थान पर ऐसे पात्रों की सृष्टि में प्रवृत्त हुआ जो व्यक्तित्वहीन, सामाजिक उद्देश्य-विरहित होते हुए भी सत्य हैं। इन उपन्यासों का उद्देश्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है। वास्तव में मनुष्य कैसा है इस का पता लगाना ही इन उपन्यासों का लक्ष्य है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखकों ने सामान्य व्यक्ति की असामान्य मनोदशा तथा असामान्य व्यक्ति की असामान्य आचारों को चित्रित किया है।

मानव जीवन अत्यधिक जटिल है। यह जटिलता व्यक्ति के भीतर भी है तथा उसके आपसी सम्बन्धों में भी है। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षणों का विशेष महत्व है। मनोवैज्ञानिक क्षणों में ही सत्य की प्राप्ति होती है। यही कारण है मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों के पात्रों में सुसंबद्ध व्यक्तित्व का अभाव है। इन उपन्यासों के पात्र क्षणों में जीते हैं। एक क्षण में वे अच्छे, एक क्षण में बुरे, एक क्षण में आकाश की ऊँचाई का स्पर्श करने वाले तो एक क्षण पाताल को स्पर्श करते हुए चित्रित किये जाते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की वस्तु स्थिति का वर्णन करते हुए चित्रित किये जाते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की वस्तु स्थिति का वर्णन करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं "मनोवैज्ञानिक उपन्यास विषयगत और शैलीगत विशेषताओं को लिए मध्यवर्गीय समाज नवीन वस्तु स्थिति को चित्रित करने में सफल हुआ है और आधुनिक युग चेतना की आवश्यकताओं ने उपन्यास और शैली को नवीन सांचे में ढाला है। इन दोनों का केवल परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध ही नहीं है वरन् ये एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। अन्तरचेतनावादी उपन्यासकार ने युग परिस्थितियों के प्रभाव वश साहित्य की परिभाषा ही बदल दी है। वह साहित्य को रसात्मक वस्तु न मानकर उसे केवल वैयक्तिक और अर्न्तमुखी पदार्थ मानता है।" आन्तरिक जीवन के चित्रण के कारण इसमें बिम्बों और प्रतीकों की भी योजना होती है। हिन्दी साहित्य के मनोविश्लेषणवादी उपन्यास लेखकों में अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी तथा जैनेन्द्र प्रमुख हैं। जैनेन्द्र ने 'सुनीता' तथा 'त्यागपत्र' के माध्यम से पात्रों का मनोविश्लेषण किया है। इनके उपन्यास 'सुनीता' का पात्र श्रीकान्त जो सुनीता का पति तथा हरिप्रसन्न का मित्र है। यथार्थ दृष्टि से विश्वसनीय नहीं लगता परन्तु सम्भावना तो हर बात की हो सकती है। 'त्यागपत्र' की मृणाल का व्यक्तित्व भी परिस्थितियों ने निर्मित नहीं है अपितु लेखक के दर्शन से निर्मित है। चिन्तन की एकांगिता, असंगति तथा नकारात्मकता के बावजूद अपनी तीव्र संवेदनशीलता, सांकेतिकता, जीवनयातना के उपन्यास बहुचर्चित तथा महत्वपूर्ण रहा है।

इलाचन्द्र जोशी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासिता', 'जिप्सी', 'जहाज का पंक्षी' है। जोशी जी ने अपने उपन्यासों में कुंठाओं से ग्रस्त व्यक्तियों की अहम्भन्यता, आत्मरति, मानसिक विकृति, वैद्विक यन्त्रणा, संशय, संदेह, संताप, ईर्ष्या, मतिभ्रम, परपीडन, आत्मपीडन, निरुद्देश्य दौड़ धूप आदि का वर्णन किया है। प्रायः इनके पात्र मानसिक रोगों से ग्रस्त होते हैं। यदाकदा ग्रन्थियों के खुलने से स्वस्थ भी हो जाते हैं।

अज्ञेय ने हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़ रूप प्रदान किया। अज्ञेय ने अपने उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में मनोविज्ञान के सिद्धान्त बनाकर प्रस्तुत नहीं

किया अपितु उससे आलोक ग्रहण कर उस आलोक में जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्यों की अनुभूतियों, बोधों, मनःस्थितियों, चेतन-अवचेतन स्थित सत्यों और उनके द्वन्द्वों से प्रभावित परिचालित आचारों-विचारों को अत्यधिक सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टि से देखा तथा अभिव्यक्त किया है।

४. हिन्दी की प्रगतिवादी उपन्यास परम्परा तथा प्रमुख उपन्यासकार

हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों ने मार्क्स के सिद्धान्त तथा उससे प्रभावित विश्वराजनीति साहित्य को दृष्टि में रखा। भारतीय जनजीवन की यथार्थता को निकट से देखा। हिन्दी उपन्यास ने इन दोनों प्रेरक तत्वों से नई दिशा व शक्ति प्राप्त की। भारतीय लेखकों में प्रेमचन्द्र इस दृष्टि से अग्रणी थे। रूसी साहित्य के प्रगतिवादी विचारों को उन्होंने निकट से समझा प्रेमचन्द्र का गोर्की तथा उनकी प्रसिद्ध कृति 'माँ' से पर्याप्त परिचय था। भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् १९३६ में हुई थी। प्रेमचन्द्र ने इसका सभापतित्व किया था। इस संगठन का विस्तार अखिल भारतीय स्तर पर किया गया तथा इसका प्रचार प्रसार विभिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों में भी हुआ। उपन्यास लेखकों में किसानों, मजदूरों तथा समाज के उपेक्षित, पददलित वर्ग की चेतना को मुखरित व विकसित करने की भावना विकसित हुई। उपन्यासों में यथार्थवाद तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दृष्टि से विचार व्यक्त होने लगे उक्त विचार धाराओं की सफल अभिव्यक्ति प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में देखी जा सकती है। प्रगतिवादी लेखकों ने परम्परागत अस्वस्थ सामंतीय विचारों तथा तत्वों का विरोध किया। ऐसा करके उन्होंने सुनिश्चित यथार्थवाद को प्रतिष्ठित किया, जिसकी परिकल्पना साम्यवाद में ही की जा सकती है।

सन् १९३५ तक भारतीय लेखकों की मानसिकता काफी बदल चुकी थी। भारतीय साहित्यकारों को नयी दिशा प्रदान करने वाली एक गोष्ठी इसी वर्ष नैनकिंग होटल लन्दन में हुयी। जिसकी अध्यक्षता अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार इ०एम० फोर्स्टर ने की थी। इसके प्रमुख सदस्यों में डा० मुल्कराज आनन्द, डा० सैय्यद एजाज हुसैन व सज्जाद जहीर थे। इन्ही की प्रेरणा से भारतीय साहित्य में एक स्वतंत्र आन्दोलन की शुरुआत हुई। जिसका प्रधान लक्ष्य था सामंतवादियों तथा अप्रगतिशील वर्गों से साहित्य को मुक्त कराकर उसे जन सामान्य के निकट लाना। इसके पश्चात् भारत में प्रगतिशील लेखक संघ प्रेमचन्द्र के सभापतित्व में आगे अग्रसर हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ के दूसरे अधिवेशन १९३८ में रवीन्द्रनाथ ने सभापति पद से साहित्यकारों का आवहन किया कि साहित्य की साधना समाज से अलग रहकर नहीं बल्कि समाज में रहकर की जानी चाहिए। इसका आशय यह नहीं लिया जाना चाहिए कि इन अधिवेशनों ने ही भारतीय साहित्य

तथा उसकी चेतना को जनवादी बनाय। परन्तु यह निश्चित है कि इन अधिवेशनों के कारण प्रगतिवादी आन्दोलन अवश्य की आगे बढ़ा।

हिन्दी साहित्य का प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित अवश्य है परन्तु यह सर्वथा विदेशी वस्तु नहीं है। तत्कालीन देशकाल की स्थिति के अनुसार इसका अपना निजी अस्तित्व भी है। प्रगतिवाद एक वैचारिक दृष्टि है जो भारतीय सामाजिक जीवन से उत्पन्न है जिसका मूल्यांकन केवल मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर ही नहीं किया जा सकता अपितु इसका सरलता पूर्वक पृथक् रूप से मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रभाकर माचवे इसे अपने देश के युगानुरूप विचार धारा माना है। "प्रगतिवाद ऐतिहासिक आवश्यकताओं से उत्पन्न वस्तु है। वह विदेशी चीज नहीं है। हम प्राचीन को यथायोग्य अंशों की तरह पूजना नहीं चाहते।"^{२५} भारतीय साहित्यकारों तथा हिन्दी के लेखकों ने यहाँ की आम जनता की बेकसी, बेबसी, बदहाली को अपनी आँखों से देखा तथा हृदय से महसूस किया। प्रगतिवादी उपन्यास लेखक भारतीय सर्वहारा वर्ग की जिन्दगी को निकट से देखकर ही अपने लेखन की प्रेरणा ग्रहण की तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान की। इसे अभिव्यक्त करने वाले लेखकों में प्रेमचन्द निराला तथा रेणु आदि हैं। जिन्होंने भारतीय जनजीवन को गहराई से देखा। इसके पश्चात् इन्होंने उसमें मार्क्स के सिद्धान्तों की अनुरूपता प्राप्त की गयी। हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों का मुख्य लक्ष्य शोषण तथा उत्पीड़न की शिकार जनता की वेदना को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करना तथा सर्वहारा की चेतना को उदबुद्ध करना था। परिणाम स्वरूप हिन्दी उपन्यासों में अपने देश की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप प्रगतिवादी दृष्टि सहज और स्वाभाविक रूप से ग्रहण करती गयी। हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों ने अपने उपन्यासों में समाजवादी यथार्थ को मुक्त भाव से अभिव्यक्त किया। इसके लिए लेखक का जनता से निकट का परिचय अधिक आवश्यक है न की उसका मार्क्सवादी होना। जनता की निकटता के अभाव में मात्र मार्क्सवादी सिद्धान्तों से कोई भी साहित्यकार प्रगतिवादी नहीं हो सकता। यही कारण है कि हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने सबसे पहले सामाजिक यथार्थ के चित्रण के दायित्व को सफलता पूर्वक निभाया तथा बाद में मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्तों को भी परखा।

प्रगतिवादी लेखकों का यथार्थवाद से गहरा सम्बन्ध है। यही कारण है कि छोटी-छोटी घटनाएँ तथा अत्यन्त नगण्य समझे जाने वाले चरित्रों का वर्णन ब्योरेवर किया गया है। ये वर्णन भी प्रत्यक्ष जीवनानुभव तथा सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है "आधुनिक यथार्थवादी लेखकों ने अपनी रचना प्रक्रिया में छोटे-छोटे अनुभवों नन्हीं-नन्हीं प्रकट में अकिंचन और निरर्थक पर यथार्थ जीवन पर गहरा असर छोड़

जाने वाली तफसीलो के वर्णन पर अधिक जोर दिया, क्योंकि उनकी धारणा है कि उन नन्ही-नन्ही निरर्थक तफसीलो और उन छोटे-छोटे अकिचन, अतिहेय पात्रों को जिनसे हमारा जीवन पथ अटा पड़ा है और जिन्हे आसमान में लगी हमारी दृष्टि देखकर भी नहीं देख पाती उसको दैनिक जीवन को दलदल से निकाल बना सवार कर अपनी अन्यमनस्क उदासीन आँखों के सामने इस प्रकार रखा कि आप उन्हें देखने और नोटिस लेने को विवश हो जाए कम कष्ट साध्य नहीं। सूर्य की भव्यता का दिग्दर्शन कराने वाले दूरबीन के मुकाबले में नन्हे-नन्हे अदृश्य अकिचन कीटाणुओं को दिखाने वाले खुरदबीन कम महत्वपूर्ण और उपादेय नहीं।^{१४} साहित्य पर अबतक जिस वर्ग का आधिपत्य था उसे अपदस्त कर प्रगतिवादी लेखकों ने उन्हें प्रतिष्ठित किया जिनको अबतक साहित्य में स्थान ही न मिला था। यथार्थवादी लेखक सतुलित जीवन दृष्टि, मर्मस्पर्शिता तथा प्रभावपूर्ण अभिव्यजना की क्षमता से जीवन का समन्वित चित्रण करता है। यथार्थवादी चित्रण में लेखक की जागरूकता तथा कलात्मकता का परिचय मिलता है। प्रेमचन्द ने अपनी प्रतिभा के बल पर प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों को आगे बढ़ाया। इन्होंने भारतीय जनता के विस्तृत चित्रफलक पर कथा का सृजन किया। प्रेमचन्द ने उपन्यास की यथार्थवादी धारा को कार्यकारण श्रृंखला में बाधकर सुनियोजित तथा सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। इस परम्परा को आगे बढ़ाने तथा नयी चेतना प्रदान करने का कार्य यशपाल, रागेय राघव, नागार्जुन तथा रेणु आदि ने किया। नागार्जुन तथा रेणु ने अपनी आचलिक कृतियों में जनवादी यथार्थदृष्टि के साथ नये शिल्प विधान को अपनाया। आचलिक उपन्यासों में समाज की प्रगतिशील चेतना तथा जनजीवन का यथार्थ चित्रण होता है। आचलिक उपन्यास का अचल विशेष से निकट का सम्बन्ध होता है। वह अनुभव के धरातल पर खड़ा उस अचल विशेष की घटनाओं सेवेदनाओं को अभिव्यक्त करता है। यही कारण है कि इनकी अभिव्यक्ति कल्पना पर आधारित नहीं अपितु प्रत्यक्ष दर्शन व अनुभव का प्रमाण होती है।^{१५} आचलिक उपन्यास अचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। आचलिक उपन्यास लिखना मानो हृदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुयी जीवनाभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है।^{१६} अचल विशेष के सर्वहारा वर्ग उनकी समस्याओं को अंकित कर हिन्दी के आचलिक उपन्यास लेखकों ने प्रगतिवादी आन्दोलन को बल प्रदान किया।

जहाँ तक हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा का प्रश्न है इसका आरम्भ प्रेमचन्द के उपन्यासों से माना जाता है। इनका 'गोदान' सर्वहारा के शोषण पर आधारित एक सफल कलात्मक उत्कर्ष है। जिसकी रचना सन् १९३६ में हुई। हिन्दी उपन्यास में सन् १९३० के बाद जिस प्रगतिवादी दृष्टि की विधिवत शुरुआत हुई उस पर मार्क्स की विचारधारा का प्रभाव तो अवश्य था परन्तु तत्कालीन युग

की परिस्थितियाँ अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। युगीन परिस्थितियों की ही देन है कि उस समय जहाँ जीवन की मानसिकता में तेजी से बदलाव आ रहा था। राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों ने हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यासों को भी उत्प्रेरित किया। यही कारण है कि भारतीय समाज तथा साहित्य में प्रगतिवादी चिन्तन का उदय स्वाभाविक रूप से हुआ तथापि इस पर मार्क्स के विचारों के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों ने अपने उपन्यासों में प्रगतिशील तत्वों की प्रेरक परिस्थितियों का चित्रण किया है। प्रगतिशीलता की प्रेरक परिस्थितियों की अभिव्यजना प्रेमचन्द के रंगभूमि तथा गोदान में देखी जा सकती है। प्रेमचन्द ने भारतीय जनता के शोषण उत्पीड़न तथा आर्थिक वैषम्य का कारण अंग्रेजी शासन को माना है। इनकी दमन तथा शोषण नीति ने समूचे देश को संकट में डाल रखा था। प्राकृतिक आपदाओं अकाल, महामारी आदि से जनता त्रस्त थी ऊपर से टैक्सों की वृद्धि के अतिरिक्त बोझ से और अधिक दब गयी। सामन्त, महाजन, जमींदार, किसान, पूँजीपति तथा मिल मालिक आपस में टकरा रहे थे। शहरों में कल कारखानों की स्थापना से सामन्ती व्यवस्था तथा रूढ़ियाँ टूट रही थी। मजदूरों का शोषण हो रहा था। जमींदार खेतीहर मजदूरों का शोषण कर विदेशी पूँजीवाद को बढ़ावा दे रहे थे। “प्रकारान्तर से किसान अपने खून से जमींदारों और साम्राज्यवादी सरकार तथा सरकार की गोद में पलते हुए पूँजीवाद इन सबको सींच रहे थे।”²⁰ किसान और मजदूर महाजनी ऋण की समस्या से ग्रस्त थे। कृषि मजदूरों की स्थिति गुलामों सी थी। अशिक्षा आपसी मतभेद तथा दरिद्रता इसकी स्थिति को और भी अधिक भयावह बना रही थी। इस स्थिति से जनता को उभारने का काम प्रगतिवादी साहित्य ने किया। हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों ने अपने उपन्यासों में न सिर्फ इस सर्वहारा वर्ग के आर्थिक वैषम्य तथा उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण किया अपितु उनकी वर्ग संघर्ष की चेतना को भी मुखर रूप प्रदान किया। “स्वाभाविक रूप से जिन देशों में शोषण मूलक पद्धतियों का अभी अन्त नहीं हुआ है, वहाँ प्रगतिवादी साहित्य शोषण के विरुद्ध संग्राम के लिए उकसायेगा, पर जहाँ सच्चे अर्थों में जनवादी शासन स्थापित हो चुका है। वहाँ वह निर्माण के हाथों को मजबूत करेगा, अवश्य वह हर हालत में शोषकों के षड़यन्त्रों के विरुद्ध जनता को जागरूक रखेगा।”²¹ यही कारण है कि सभी प्रगतिवादी लेखक पूँजीपतियों के शोषण के विरुद्ध घृणा तथा रोष व्यक्त किया है तथा उनके हृदय की सारी सहानुभूति सर्वहारा वर्ग के प्रति है।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी उपन्यास लेखक की जो परम्परा प्रेमचन्द से आरम्भ हुई। उसे आगे बढ़ाने तथा भारतीय समाज के आर्थिक वैषम्य तथा शोषण से पीड़ित सर्वहारा वर्ग की भावना को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करने वाले निराला, यशपाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, रेणु, राहुल सांकृत्यायन, अमृतराय,

भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, सतीश जमाली, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित, जगदीश चन्द आदि लेखकों ने महत्वपूर्ण योगदान किया। इन प्रगतिवादी उपन्यासकारों में से केवल रागेय राघव तथा उनके समकालीन प्रगतिवादी उपन्यासकारों का अध्ययन यहाँ किया जा रहा है।

राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। उन्होंने भारतीय किसानों, मजदूरों की स्थिति को निकट से देखा तथा अनुभव किया। इस व्यवहारिक जीवन से प्राप्त अनुभव के आधार पर उन्होंने जनसाधारण के जीवन के यथार्थ सत्य को अभिव्यक्त किया। यही कारण है कि राहुल जी मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के बाद भी मार्क्स के सिद्धान्तों को मात्र सिद्धान्त बनाकर नहीं प्रस्तुत किया अपितु उसे भारतीय समाज तथा परिस्थिति के अनुरूप ढालकर अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं। वे आज की परिस्थितियों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आवश्यक एवं व्यवहारिक मानते हैं। वे उन सभी परम्परागत रूढ़ियों का विरोध करते हैं जो मानव जीवन के सहज एवं स्वाभाविक विकास में बाधक हैं। राहुल जी के उपन्यास 'जीने के लिए', 'सिंह सेनापति' तथा 'भागो नहीं दुनिया बदलो' में मार्क्सवादी विचारों की सफल अभिव्यक्ति हुई है। 'जीने के लिए' (१९४२ ई०) उपन्यास का नायक मोहन लाल है। वह सामान्य जन की परतंत्रता का मुख्य कारण दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था मानते हैं। तो बाबू राम कहते हैं 'मुझे तो समाज की बुनियाद ही सड़ी मालूम होती है।' उनकी दृष्टि में समाज में आर्थिक आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। अमीर व्यक्ति अपने व्यर्थ के ऐशोआराम पर जितना अधिक व्यय करता है उसके एक अंश मात्र से कितने गरीब व्यक्तियों के आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। उपन्यास का एक पात्र देवराज जिसे भारतीय जनजीवन के शोषण की पर्याप्त जानकारी है। वह एक नया साहित्य लिखकर साम्राज्यवादी शोषण को नग्न रूप में आम जनता तक पहुँचाना चाहता है। हमें नया साहित्य तैयार करना है। भारतीय दोहरी चक्की में पिस रहे हैं.....भारतीय श्रमिकों और मजदूरों का शोषण यहाँ की तरह वहाँ (ब्रिटेन) भी है.....हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकार होकर राजनीतिक दास हैं।³⁰ इस उपन्यास में भारतीय तथा विश्व समाज के लिए मंगलदायक प्रगतिवादी जीवन दर्शन के मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहा है।

'सिंह सेनापति' में राहुल जी ने पाँच सौ वर्ष ई०पू० बुद्धकालीन गणराज्यों में सामान्य जन की स्थिति पर प्रकाश डाला है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर सामाजिक जीवन का चित्रण करते हुए मुख्यतः दास

प्रथा, दासता की भावना, रक्त सम्बन्ध, वर्ण एवं जाति प्रथा, आर्थिक विषमता जनित अभिशप्त जीवन, स्त्री समस्या, हिंसा अहिंसा, श्रम, कृषि, व्यवसाय, व्यापार, मिथ्यादर्श, लोक परलोक तथा राजनीतिक समस्या आदि को समग्रता के साथ चित्रित करने का प्रयास किया है।

‘भागो नहीं दुनियाँ बदलो’ में राहुल के मार्क्सवादी विचारों का विस्तृत रूप देखने को मिलता है। इस समस्या में कथात्मक उतार-चढ़ाव की अपेक्षा प्रगतिवादी चिन्तन तथा कटु सामाजिक यथार्थ को रख देना ही कृतिकार का लक्ष्य है। मार्क्सवादी सिद्धान्त गाँव की चौपाल में किसानों की सरल भाषा अभिव्यक्त हुआ है। गाँव के भूमिहीन किसान, मजदूरों को आधार बनाकर झोपड़ियों का यथार्थ व्यक्त किया है। झोपड़ियों में “पैदा होने वाली संततियाँ सिर्फ गरीबी का नंगा नाच देखती है – तिलमिलाती अंतड़ियाँ, सूखा मुंह, नंगा बदन।”³⁹ इस उपन्यास में इस स्थिति को बदलने का आह्वान किया गया है कि पूँजीवादी शासन व्यवस्था के स्थान पर सर्वहारा का राज्य स्थापित हो। इनके अन्य उपन्यासों में दुनिया नरक है, जोंक पुराना, ‘जोंकों का दुश्मन मरकस बाबा’, लालचीन आदि प्रमुख हैं। इस तरह राहुल जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रगतिवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया।

यशपाल

यशपाल की विचारधारा मार्क्सवादी अथवा समाजवादी सिद्धान्तों से प्रभावित है। यह प्रभाव उनकी औपन्यासिक कृतियों में भी देखी जा सकती है। यशपाल विचारों से भी मार्क्सवादी थे। उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर मार्क्सवादी सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है। जिसे वह स्वयं भी स्वीकार करते हैं। आपके उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज के जीवन और चरित्र का चित्रण मिलता है। मध्यवर्गीय समाज के बुद्धिजीवी सदस्यों पर मार्क्स के विचारों का प्रभाव अधिक है। समाज के यथार्थ का चित्रण मार्क्सवादी दृष्टि से किया गया है। यशपाल मार्क्सवादी सिद्धान्तों को प्रायः पचाकर अपनी कृतियों में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में जिस समस्या या प्रश्न को उठाया है। उसका मार्क्सवादी दृष्टि से विश्लेषण व निरूपण किया है। यशपाल अपने उपन्यास लेखन का अभिप्राय व्यक्त करते हुए लिखते हैं “उपन्यास लिखने से मेरा अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि मनुष्य समाज परम्परागत विचारधाराओं का दास नहीं हैं, बल्कि वह अपनी विचारधारा का सृष्टा है। समाज के जीवन में प्रायः घटने वाली घटनाओं को उपन्यास के परीक्षण पात्र में रखकर यह दिखाना चाहता हूँ कि किस प्रकार इन घटनाओं से हमारी विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है या समाज के नये अनुभव कैसी नयी विचारधारा को जन्म दे देते हैं।”³⁹ इस विचारधारा के मूल में मार्क्सवादी जीवन

दर्शन है।

दादा कामरेड राजनीतिक धारणा तथा सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देने वाला यशपाल का पहला उपन्यास है। इसमें लेखक की नवीन चेतना अभिव्यक्त हुई है। राजनीतिक दृष्टि से आतंकवाद, गोंधरीवाद तथा साम्यवाद तीन शक्तियाँ सक्रिय थी। लेखक के अनुसार अहिंसा तथा आतंकवाद असफल सिद्ध हो रहे थे। ऐसे में साम्यवाद आशा की किरण बनकर उभरा। दादा का कामरेड रूप इसका उदाहरण है। यशोदा और शैल के माध्यम से लेखक अतिशय परम्परावादिता तथा घोर अराजकतावाद का विरोध कर दोनों में सामंजस्य की आवश्यकता पर बल दिया है।

देशद्रोही में भी यशपाल का उद्देश्य 'दादा कामरेड' की तरह सर्वतोमुखी जीवन में प्रगतिवादी चेतना को उभारना तथा उसे परिपुष्ट करना है। मध्यवर्गीय डॉ० खन्ना सीमा प्रान्त के एक फौजी अस्पताल में डाक्टर है। एक रात सीमा प्रान्त से ही उनको अपहृत कर गजनी लाया गया जहाँ वह अब्दुल्ला के प्राण की रक्षा करता है। खन्ना जहाँ कहीं भी होता है, उसके हृदय में भारतीय जनता के पिछड़े व्यक्तियों के प्रति एक तड़प रहती है। रूस से लौटकर वह कानपुर के मजदूरों के साथ अपना समय व्यतीत करता है। शोषित तथा उत्पीड़ित मजदूरों के साथ अपना समय व्यतीत करता है। शोषित तथा उत्पीड़ित मजदूरों की समस्याओं के समाधान में यथोचित योगदान देकर उसे संतोष मिलता है।

'दिव्या' की मुख्य समस्या सामन्ती समाज में नारी की स्थिति तथा उसे उस स्थिति से मुक्त कराने का प्रयास है। बौद्धकालीन मद्र गणराज्य में सामन्ती व्यवस्था थी। सामन्ती समाज व्यवस्था की समस्त समस्याओं को इस उपन्यास में स्थान मिला है। इस समय दास प्रथा प्रचलित थी। वर्ण व्यवस्था के कारण सारे गुणों से युक्त श्रेष्ठी तथा सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी दास की उपेक्षा होती थी। धर्मस्थ एक ऐसा पात्र है जो सामन्ती परिवेश में रहकर भी प्रगतिशील तथा न्यायप्रिय है।

अभिजात्य वंश उत्पन्न रूप गुण सम्पन्न दिव्या शोषित भारतीय नारी का प्रतीक है। जिसको सामन्ती समाज निम्नकुल में उत्पन्न प्रतिभाशाली सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी पृथुसेन से प्रेम की अनुमति नहीं देता है। परन्तु दिव्या न सिर्फ समय-समय पर पृथुसेन से मिलती रही अपितु युद्ध क्षेत्र में सेनापति बनकर जाते हुए पृथुसेन को अपना शरीर सौंपकर गर्भवती भी हो जाती है। युद्ध क्षेत्र से लौटने के बाद पृथुसेन से दिव्या प्रयत्न के बाद भी मिलने में असफल रहती है। लज्जा और वेदना से ग्रस्त असहाय दिव्या अपनी धाता के साथ घर से निकल जाती है। वह एक ब्राह्मण के हाथ बेच दी जाती है जहाँ उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण

के घर असहाय वेदना से दुखी दिव्या पुत्र सहित नदी में कूद पड़ती है। राजनर्तकी रत्नप्रभा द्वारा दिव्या तो बचा ली जाती है परन्तु पुत्र की मृत्यु हो जाती है। रत्नप्रभा के यहाँ दिव्या अशुमाला के नाम से नर्तकी बन जाती है। पृथुसेन का विवाह सीरो से हो जाता है। जो बाद में बौद्ध भिक्षु बन जाता है। मल्लिका रत्नप्रभा से दिव्या को मॉगकर उसे मद्र गणराज्य में अपना उत्तराधिकारी घोषित करती है जिसका अभिजात्य वर्ग द्वारा विरोध होता है। “मद्र में द्विज कन्या वेश्या के आसन पर बैठकर जन-जन के लिए भोग्या बन वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती।”³³ दिव्या वहाँ से निकलकर पथशाला में शरण लेती है। जहाँ पृथुसेन उसे भिक्षुणी बनने का उपदेश देता है तथा रुद्रधीर उससे कुलवधु बनने का आग्रह करता है। परन्तु दिव्या मारिश का वरण करती है। सामंती समाज में शोषण का कारण सिर्फ आर्थिक नहीं है अपितु परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों भी हैं जो मानव के स्वतंत्र विकास में बाधक हैं। सामंती समाज में व्यक्ति की कुलीनता का महत्व उसके सद्गुणों की अपेक्षा अधिक है। यशपाल ने दिव्या के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण मानवीय तथ्यों का प्रगतिवादी दृष्टि से मूल्यांकन किया है।

‘पार्टी कामरेड’ मजदूरों की आर्थिक समस्याओं को लेकर लिखा गया उपन्यास है। मार्क्सवादी दिवारो से प्रभावित गीता भारतीय जन जीवन का मूल्यांकन इसी दर्शन की रोशनी में करती है “किसी एक पदार्थ को तैयार करने की मजदूरी मजदूर को बहुत कम मिलती है और बाजार में उस वस्तु का दाम काफी अधिक रहता है। यह उत्तर ही मालिक का मुनाफा और मजदूर का शोषण है। मुनाफा कमाने के लिए पूँजीपति व्यवसाय और मजदूरों पर अधिकार जमाता है।”³⁴ इस उपन्यास में चुनावी राजनीति के भी दर्शन होते हैं।

यशपाल ने ‘झूठा-सच’ में देश की सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ का प्रगतिशील दृष्टि से चित्रण किया है। इस उपन्यास में विभाजन के पूर्व तथा बाद के जनजीवन की समस्याएँ तथा संघर्ष वर्णित हैं। अधी साम्प्रदायिकता में जलती हुई हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान की जनता का मार्मिक चित्रण है। लेखक ने साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज की है। अपना स्वार्थसिद्ध करने वाले राजनेता जनता की भलाई के नाम पर उनका शोषण करते हैं तथा राजसत्ता प्राप्त करने के प्रयत्न में साम्प्रदायिकता की आग भड़का रहे थे। साम्प्रदायिकता के कारण आतंक और हिंसा की घटनाएँ बढ़ रही थीं तथा समस्त मानवीय मूल्य समाप्त हो गये थे। समाज में शरणार्थी स्त्री-पुरुषों की समस्याओं के कारण अव्यवस्था फैल गयी थी। अर्थाभाव के कारण अनेकों स्त्रियाँ देह व्यापार करने को विवश थीं। यशपाल ने देश की आजादी को भारतीय जनता की नजरों से देखा “दो ही साल में ‘गान्धी की जय’ खोखली पड़ गयी है। सब शासन पुराने

आई०सी०एस० लोग चला रहे हैं। उन लोगों ने सेवा करना नहीं शासन करना सीखा है। उन्हें डेमोक्रेसी नहीं ब्यूरोक्रेसी चाहिए वही कानून है, वही पुलिस का राज.....।³⁴ यशपाल का मानना है कि परिवर्तन के नाम पर केवल नीति निर्धारण करने वाले बदल गये हैं। अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी साम्यवादी पार्टी की सक्रियता दिखाई गई है। जो पूँजीवादी तथा नौकरशाही शासन के खिलाफ सामान्य जनता तथा मजदूरों को उसका हक दिलाने के लिए कृत संकल्प है। मि० चड्ढा मार्क्सवादी विचारों का व्यक्ति है जो पूँजीवादी अधिनाकत्व को समाप्त करना, जमींदारी प्रथा के उन्मूलन, कृषि तथा बड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण में विश्वास रखता है।

इस प्रकार यशपाल अपने सभी उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की व्याख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से करते देखे जा सकते हैं।

नागार्जुन

नागार्जुन समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। दरभंगा जिले की कहानी के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय सर्वहारा वर्ग की पीड़ा तथा वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्ति करने में सफल रहे हैं। “समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा को व्यक्त करते हुए यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त ने भी उपन्यास लिखे हैं पर उन लोगों के उपन्यासों में पीड़ित वर्ग के प्रति सहभोक्ता की उस तीव्र संवेदना का अभाव है जो नागार्जुन के उपन्यासों का प्रमुख आकर्षण है।³⁵ नागार्जुन ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आत्मसात कर लिया है। यही कारण है कि उसकी रचनाएँ मार्क्सवादी सिद्धान्तों के बोझ से दबी हुई नहीं हैं। लेखक का देहाती जीवन से व्यक्तिगत गहरा तथा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे भारत के शोषित एवं अभावग्रस्त इन्सानों के जीवन को सुधारने के लिए प्रयासरत है। इस वर्ग के लोगों को सगठित होकर अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करने को प्रेरित किया है। नागार्जुन यथार्थ जीवन की उन शक्तियों को उभारते हैं जिनसे समाज की विषमता दूर होगी, रूढ़ियों का नाश होगा और मानव का विकास होगा।

‘रतिनाथ की चाची’ एक कुलीन विधवा की कहानी है। वलचनमा एक साधनहीन किसान के दुखद जीवन की गाथा है तो नई पौध में अनमेल विवाह को मुख्य समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बाबा बटेसर नाथ में सामूहिक सामाजिक चेतना को विकसित रूप में दर्शाया गया है।

रतिनाथ की चाची (१९४८) सामन्तवर्गीय कुलीन मैथिल ब्राह्मण समाज की विधवा भारतीय नारी की करुण कहानी है। वैधव्य के असहाय पीड़ाओं से दुखी चाची की स्थिति उस समय और अधिक दयनीय

हो जाती है। जब वह जयनाथ द्वारा किये गये यौन अत्याचार के परिणामस्वरूप गर्भवती हो जाती है। अपने दुःखमय जीवन से दुखी तथा समाज द्वारा दिये गये लांछन अपमान व तिरस्कार के भार को सहन करने में असमर्थ होकर मृत्यु का वरण करती है। जिसका अंतिम संस्कार उसके मानसपुत्र रतिनाथ द्वारा किया गया। इस उपन्यास के माध्यम से नागार्जुन ने अनेक सामाजिक रूढ़ियों, अप्रगतिशील विचारों व मान्यताओं का यथार्थ वर्णन किया है। अनमेल विवाह, युवती विधवा, वरों का क्रय-विक्रय छुआछूत, कुलीनता अकुलीनता आदि अनेक प्रसंग सामंती रूढ़ियों को व्यक्त करते हैं। गाँव के जीवन तथा प्रकृति का अत्यन्त सहज स्वभाविक चित्रण हुआ है, जिससे मिथिला अंचल साकार हो उठा है। उपन्यास के समस्त पात्र स्थानीय रीति-रिवाज, रहन-सहन तीज-त्यौहार, वेषभूषा, स्थानीय शब्दों का प्रयोग खानपान आदि का चित्रण कथानक को यथार्थ और संश्लिष्ट बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। वह उपन्यास प्रगतिवादी परम्परा को समृद्ध करता है।

‘बलचनमा’ (१९५२) एक साधनहीन परिश्रमी एवं ईमानदार किसान के जीवन की कथा है। सन् १९३७ तक मिथिला के किसानों की अवस्था, जमींदारों के द्वारा किये जाने वाले शोषण और किसान की उभरती हुई विकासोन्मुख चेतना को बलचनमा के चरित्र निर्माण द्वारा प्रतिबिम्बित किया गया है। बलचनमा तत्कालीन भारतीय किसान का प्रतिनिधि है। बलचनमा के माध्यम से ग्राम जीवन का यथार्थ प्रगतिवादी दृष्टिकोण से व्यक्त किया गया है। तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन तथा राजनीतिक दलों की सांकेतिक व्याख्या भी इसी दृष्टि से की गयी है। परन्तु उपन्यास में कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं मिलता। बलचनमा का जीवन संघर्ष से प्रारम्भ होता है। जमींदारों के जुल्मोसितम से बलचनमा के पिता की मृत्यु हो जाती है। वह बारह साल की उम्र में जमींदार के घर भैंस चराने का कार्य करता हुआ गुलामों की तरह रहता है। बलचनमा की माँ और बहन भी जमींदारों के अत्याचार का शिकार होती है। बचपन से ही उसने गरीबी और शोषण की घटना को अपनी आँखों से देखा है। वह होरी की भाँति सब कुछ नतमस्तक होकर स्वीकार नहीं करता। अपितु उसमें वर्ग संघर्ष की चेतना उभरती है। वह अपनी परिस्थितियों से लड़ता है। अन्याय और शोषण की चक्की में पिसकर वह अपने शत्रु को न सिर्फ पहचानता है अपितु संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग का आह्वान भी करता है “सच जानों भैया, उस वक्त मेरे मन में यह बात बैठ गयी जैसे अंग्रेज बहादुर से स्वराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे हैं हल्ला गुल्ला और झगड़ा झड़ट चला रहे हैं उसी तरह जन बनिहार, कुली मजदूर और बनिया ख्वास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना होगा।”^{३०} वह सर्वहारा वर्ग में क्रान्ति की मशाल जलाये भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

बलचनमा हर शोषण और अत्याचार को ईश्वर प्रदत्त समझकर स्वीकार नहीं करता अपितु उसका मानना है कि यह स्थिति ईश्वर प्रदत्त नहीं मानवकृत है। ईश्वर का नाम लेकर उसका भय दिखाकर ईश्वरकृत बनाकर शोषक समाज जनसाधारण को ठगता है। बलचनमा जनसाधारण की अन्धी श्रद्धा पर प्रहार करता हुआ व्यंग्य करता है। चार परानी का परिवार छोड़कर मेरा बाप मर गया यह भी ईश्वर ने ठीक किया। भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर-चूर कर फाँकती हैं यह भी भगवान ठीक ही करते हैं। और सरकार आप कननजीर और तुलसीफूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, हरी, दही चटनी खाते हैं, सो यह भी भगवान की ही लीला है। होरी के जीवन के निराशावादी स्वर की परिणति बलचनमा के जीवन के आशावादी स्वर में दिखाई गयी है हिन्दी उपन्यास साहित्य में 'गोदान' के होरी के बाद 'बलचनमा' का पात्र बलचनमा निश्चित रूप से एक उपलब्धि है तथा हिन्दी उपन्यास साहित्य में बलचनमा एक प्रतिनिधि रचना है।

नई पौध में लेखक अनमेल विवाह की समस्या को उठाकर उस समस्या को नूतन ढंग से हल किया है। मिथिलांचल के ही प्रगतिशील नवयुवक जो नवीन चेतना के प्रतिनिधि हैं। समाज में प्रचलित पुरानी वैवाहिक कुरीतियों तथा अनमेल विवाह जैसे अन्याय के विरुद्ध सशक्त विद्रोह करते हैं। अनमेल विवाह को रोककर यथायोग्य विवाह सम्पन्न कराने के अपने प्रयास में सफल भी होते हैं। इन नवयुवकों ने साठ साल के बूढ़े वर चतुरानन चौधरी से खोखाई झा की नतनी वैसेसरी के अनमेल विवाह को रोककर वाचस्पति नामक प्रगतिशील युवक से उसकी शादी सम्पन्न कराई। उनका यह क्रान्तिकारी कदम गाँव और समाज की जड़ता को तोड़ने वाला नयी दिशा का परिचायक है। इस उपन्यास में अभिजात्य कुल में उत्पन्न एक ऐसे स्वार्थी अर्थलोलुप कुत्सित ग्रामीण व्यक्ति का चरित्र वर्णित है जो मात्र धन प्राप्ति के लिए पशुओं के समान अपनी बेटियों को वृद्ध वरों के हाथ बेच देता है। नातिन को बेचे जाने की घटना में गाँव के प्रगतिशील नवयुवकों के हाथों पराजित होता है। यह घटना सड़ी गली परम्पराओं व रूढ़ियों पर नवीन स्वस्थ चेतना तथा विचारधारा का परिचायक है।

'बाबा वटेसरनाथ' (१९५४) में नागार्जुन ने कथाशिल्प सम्बन्धी नवीन प्रयोग किये हैं। इस उपन्यास में विदेशी राज्य की स्वार्थनीति, जमींदारों की निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों, कांग्रेस शासन का इतिहास, जमींदारी उन्मूलन आदि को चित्रित किया गया है। वर्तमान शासन व्यवस्था से असंतुष्ट लेखक समाजवादी शासन व्यवस्था को आदर्श मानता है। "जीने के लिए जीना, जीना नहीं है, परोपकार के लिए जीना ही जीना है।"³⁰ लेखक सामूहिक शक्ति में विश्वास रखता है। जैसा की वटेसरनाथ

एक स्थान पर कहता है "झींगुर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों हजारों की तादात में जब वे एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समाज बंध जाता है। झींगुरों की यह अखण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती रहती है, सामूहिक स्वर की इस एकाग्र गरिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है और होता रहेगा।³⁶ उपन्यास का परवर्ती अंश सर्वहारा वर्ग की जागृति संगठन शक्ति तथा संघर्ष की कहानी है। जिसमें कृषक भी अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध उन्मुख होकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है। इस जागृति, संगठन तथा संघर्ष का प्रारम्भ वट वृक्ष के माध्यम से समझा जा सकता है। पेड़ की कहानी देहाती जीवन के क्रमिक विकास की कहानी है। उपन्यास लेखन में समस्त वर्तमान समस्याओं का समाधान साम्यवादी प्रगतिवादी समाज व्यवस्था में देखा है।

दुःखमोचन (१९५४) एक ऐसे व्यक्ति दुःखमोचन की कथा है जो जन जीवन को दुखों से मुक्ति दिलाने वाला पुरुष है। जो झूठे अभिमान, झूठी मर्यादा तथा अनावश्यक भावुकता जैसी बातों में दूर रहता है। गाँव के सुधार तथा विकास से सम्बन्धित उसके विचार उच्चकोटि के हैं। उसकी प्रगतिवादी विचारधारा शोषित पीड़ित निर्धन आदि को नवचेतना तथा स्फूर्ति प्रदान करती है।

'वरुण के बेटे' में जमींदारी उन्मूलन के पश्चात स्वतंत्र भारत के जमींदारों को चुनौती देने वाले मछुआरों के वर्ग संघर्ष को चित्रित किया गया है। मछुआरों ने संघ बनाया है तथा अपने अधिकारों के लिए एक जुट होकर जमींदारों से लड़ते हैं। इस प्रकार नागार्जुन के समस्त उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना का उन्मेष देखा जा सकता है।

भैरवप्रसाद गुप्त

प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों में भैरवप्रसाद गुप्त का नाम अग्रणी है। मार्क्सवाद से प्रभावित समाजवादी चेतना की तीव्र अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में मिलती है। 'मशाल', 'गंगा मैया', 'जंजीर और नया आदमी', 'सती मैया का चौरा' तथा 'धरती' में इनकी प्रगतिशील विचारधारा मुखरित हुई है।

मशाल में श्रमिक वर्ग के कष्ट दयनीय स्थिति तथा उनके संघर्ष को चित्रित किया है। इस उपन्यास में लेखक प्रगतिवादी सिद्धान्तों को मात्र बौद्धिक स्तर पर स्वीकार कर पाया है अनुभूत्यात्मक रूप में नहीं। समाज के विभिन्न लोगों को कष्टप्रद असहाय स्थिति का विवरण मात्र देकर प्रगतिवादी चेतना को अभिव्यक्त करने का प्रयास उपन्यास को कलात्मक दृष्टि से अस्वाभाविक बनाता है। उपन्यास लेखक ने श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई शक्ति को मुखरित करने तथा समाजवादी चेतना को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

लेखक इस उद्देश्य को व्यक्त करते हुए कहता है "मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगा। आठ मजदूर शहीदों तथा सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलाई है वह कभी न बुझेगी उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायेगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी रास्ता दिखायेगी"^{४०} इस उपन्यास का नायक नरेन है। जो अल्प आयु में ही पितृहीन होकर माँ तथा रूढ़िवादी चाचा के साथ रहने को विवश हो जाता है। परन्तु रूढ़िग्रस्त विचारों के विरुद्ध विद्रोह करके घर से निकल जाता है तथा सेना में भर्ती होता है। दूसरे महायुद्ध के बाद आजाद हिन्द सेना का सिपाही बनकर गाँव लौटता है वहाँ गाँव की उधड़ी हुई स्थिति तथा माँ व भाभी को न पाकर दुखी होता है। संयोग से श्रमिकों के बीच पहुँच जाता है। इस उपन्यास का पात्र शकूर को रूस का रास्ता ही श्रमिकों को अच्छा रास्ता लगता है। उसका कहना है "हमने दुनिया बनाई है। लेकिन दुनिया के चन्द सरमायादारों ने इन चीजों पर अपना नाजायज हक जमा रखा है हमें बेवकूफ बनाकर। वे हमसे गुलामों की तरह काम करते हैं और हमारी मेहनत की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं।"^{४१} यह उपन्यास शैली शिल्प तथा चरित्राकन की दृष्टि से उतनी सफल नहीं है जितनी उद्देश्य की दृष्टि।

गंगा मैया मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार के विधवा की अवस्था तथा किसानों जमींदारों के पारस्परिक संघर्ष का निरूपण प्रगतिवादी दृष्टि से किया है। महरू तथा गोपी नामक दो किसानों के माध्यम से किसानों के जीवन की समस्याओं तथा उनके संघर्ष को चित्रित किया है। आत्म विश्वास, साहस, दृढ़ निश्चय आदि गुणों से युक्त महरू अन्याय और शोषण के विरुद्ध विद्रोह की प्रबल भावना रखता है। जो उसकी प्रगतिशील चेतना का परिचायक है। वह परिस्थितियों से परास्त नहीं होता अपितु उस पर विजय प्राप्त करने के लिए निरंतर संघर्ष करता है। गंगा मैया का किसान जागृति, अदम्य साहस तथा शक्ति का प्रतीक है। जिसके आधार पर लेखक नवजीवन का निर्माण करना चाहता है। महरू सामूहिक किसानों को आधार बनाकर जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध सम्पूर्ण शक्ति से लड़ता है तथा विधवा नारी का पुनः विवाह सम्पन्न कराकर न सिर्फ सामाजिक अन्याय उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द करता है अपितु अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देता है।

जजीरे और नया आदमी (१९५६) में लेखक सामन्ती समाज के शोषण का चित्रण किया है। इसमें गुलामों की जिन्दगी व्यतीत करने वाले दास दासियों के विद्रोहात्मक चेतना को अभिव्यक्त किया गया है। नारियों को भी जागृत रूप में चित्रित किया है जो चिरकाल से दासी के रूप में रहती हुई अपने ऊपर किये

जाने वाले प्रत्येक अत्याचार को सर झुकाकर सहती थी, वही अब अपना शोषण बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है। सर्वहारावर्ग अपनी गरीबी, गुलामी तथा पराधीनता के कारण मानसिक यातनाएँ भोगता है। यही कारण है जब पेंगा को सरकार शारीरिक यातना देता है तो वह भाग खड़ा होता है। वह गुलामी की पीड़ा को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है। दासी गुदरी सरकार की दुश्चरित्रता तथा शोषण को सबके सामने साफ साफ शब्दों में व्यक्त करती हुई कहती है "मैं किसी से डरती नहीं है? मैं एक एक बखिया उधेड़ कर रख दूँगी। इस बड़े सरकार को कटघरे में खड़ा करो – सब स्त्रियों को बुलाओ और नोच डालो इस पापी के सिर के एक-एक बाल को।"^{४२} दासियों की दयनीय स्थिति से वेश्या की स्थिति को बेहतर बताती हुयी एक दासी की माँ कहती है "यह बात हमेशा याद रखना कि लौण्डी से एक वेश्या की जिन्दगी कहीं अच्छी होती है और बड़ी से बड़ी वेश्या भी एक अदना ब्याहता औरत को देखकर सरम से गढ़ जाती है जो भी दुख पड़े झेलना लौण्डी की जिन्दगी हरगिज न जीना।"^{४३} यह उपन्यास चिरकाल से दासता में जकड़े उन व्यक्तियों की कथा है जो नवीन चेतना से उदबुद्ध होकर अपनी जड़ता को तोड़ते हुए दासता से निकलने के लिए संघर्षरत है।

सती मैया का चौरा (१९५६) भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद तथा संप्रदायगत रूढ़ियों को चित्रित करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास में रूढ़िवादी समाज के समस्या विसंगतियों को अभिव्यक्त किया गया है। मुन्नी तथा मन्ने नामक दो पात्रों के माध्यम से हिन्दु-मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के प्रगाढ़ मित्रता को दर्शाया गया है। वर्षों से गाँव में दोनों सम्प्रदाय तथा धर्म के मानने वाले आपस में एकता तथा भाई चारे के साथ रहते हैं। मानवीय संवेदना ने कहीं दोनों को बहुत गहरे जोड़े हुए है। परन्तु रूढ़िवादी तथा अप्रगतिवादी सामाजिक विश्वास उनके इस चिरसंचित मानवीय संवेदना को हिला देती है। यही कारण है कि अब तक जो मुन्नी और मन्ने साथ साथ रहते खाते पीते थे उन्हें रोका जाने लगा। मित्र का जूठा खाने पर मुन्नी को मार खानी पड़ती है। हिन्दु बाहुल गाँव में मुस्लिम छात्र के प्रथम आने पर हेडमास्टर को धमकी मिलती है जिसका परिणाम होता है कि मेधावी छात्र मन्ने फिर कभी प्रथम नहीं आ पाता। इस तरह सती मैया का चौरा में लगभग एक सदी के सामाजिक राजनतिक, आर्थिक इतिहास की दृष्टि में रखकर उपन्यास लेखक ने प्रगतिवादी दृष्टि से उन परिस्थितियों की व्याख्या तथा विश्लेषण किया है। उपन्यास रूढ़िवादी समाज के विसंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करने में सफल रहा है।

धरती समाज के पीड़ित सर्वहारा वर्गीय मजदूरों से सम्बद्ध है। कथानायक मोहन प्रगतिवादी विचारों का व्यक्ति है। वह मध्यवर्गीय समाज का व्यक्ति है परन्तु समाज के निम्न वर्गीय जीवन को अत्यधिक निकट

से देखा तथा समझा है। उन्हीं अनुभवों को उसने सिद्धान्त रूप में व्यक्त किया है। वह गरीबों तथा किसान मजदूरों की समस्याओं पर हमदर्दी के साथ विचार व्यक्त किया है। मोहन भारतीय समाज की यथार्थ स्थिति को व्यक्त करता हुआ कहता है “हमारे देश में करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके जीवन का कोई भी अर्थ नहीं है.....जैसे भी हो केवल साँस को कायम रखना ही क्या जीवन है?.....जन्म से मृत्यु तक केवल दो रोटी की समस्या में उलझे रहना.....भीख मांगना, मजदूरी करना, खोमचे लगाना पकौड़ी और मूंगफली बेचना, फुटपाथों पर सोना.....न कपड़ा न लत्ता।”^{४४} भारत की इस गरीबी तथा बेहाली का कारण राजनीतिक भी है। सरकारी नीति मात्र नीति बनकर रह जाती है व्यवहार में इसका क्रियान्वयन नहीं हो पाता है। नेताओं के भाषण तथा दावे खोखले होते हैं। किसान धरती का पुत्र है। उसका जीवन उसी के सहारे चलता है। परन्तु जब धरती भी उससे छिन जाती है। तब वह विवश होकर बंधुआ मजदूर बन जाता है। उपन्यास का मंगल इसका उदाहरण है। उपन्यास में मोहन के अतिरिक्त भी रामस्वरूप आदि कुछ ऐसे प्रगतिवादी पात्र हैं जो स्वतंत्रता आन्दोलन से अवगत हैं तथा किसान मजदूर के हक की लड़ाई को उचित बताते हैं। इस प्रकार भैरव प्रसाद गुप्त अपने सभी उपन्यासों में प्रगतिवादी चिंतन को अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं।

सन्दर्भ

१. आलोचना, १३ अक्टूबर, १९५४, पृ० ५५
२. वही
३. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन-गणेशन, पृ० ५३
४. बिहार की साहित्यिक प्रगति - राधिकारमण सिंह के अध्यक्षीय भाषण, पृ० ३७
५. वही, पृ० ३८
६. आलोचना १३, उपन्यास विशेषांक, पृ० ७२
७. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४०-४१
८. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ४३
९. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४१
१०. वही, पृ० ३४१
११. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ४८
१२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य शुक्ल, पृ० ३४२
१३. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ४५
१४. प्रेमचन्द की विचारधारा और कथा साहित्य - राजनाथ शर्मा, पृ० ५७
१५. मानक हिन्दी कोश, तीसरा खण्ड, पृ० ६३७
१६. चिन्तामणि (पहला भाग), रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १४१
१७. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - डा० रामदरश मिश्र, पृ० ११२
१८. नया साहित्य : नये प्रश्न - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १३८
१९. वही, पृ. १८४
२०. हिन्दी उपन्यास - सुषमा धवन, पृ० ८८
२१. विचार और वितर्क - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ६०
२२. विश्लेषण - इलाचन्द जोशी, पृ० १०७
२३. वही, पृ० १०६
२४. नया साहित्य : नये प्रश्न - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ३
२५. हंस, जून, १९४६
२६. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अशक - भूमिका
२७. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - डा० रामदरश मिश्र, पृ० १६०
२८. वही, पृ० ६३
२९. प्रगतिवाद की रूपरेखा - मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १३
३०. जीने के लिए - राहुल सांकृत्यायन, पृ० २१७

३१. भागों नहीं दुनियाँ बदलो – राहुल सांकृत्यायन, पृ० ५
३२. देखा सोचा समझा – यशपाल, पृ० १०१
३३. दिव्या – यशपाल, पृ० ३७
३४. पार्टी कामरेड – यशपाल, पृ० ३६८
३५. झूठा-सच – यशपाल, पृ० ३६८
३६. नागार्जुन जीवन और साहित्य – डा० प्रकाश चन्द भट्ट, पृ० ४०
३७. बलचनमा – नागार्जुन, पृ० ६६
३८. बाबा वटेसरनाथ – नागार्जुन, पृ० ६६
३९. वही, पृ० ११
४०. मशाल – भैरव प्रसाद गुप्त – भूमिका
४१. वही, पृ. १०८
४२. जंजीरें और नया आदमी – भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० २३४
४३. वही, पृ० २६२
४४. धरती – भैरव प्रसाद गुप्त, पृ० ८८

तृतीय अध्याय

रांगेय राघव का उपन्यास साहित्य : सामान्य अध्ययन

- | | |
|----------------------|----------------------|
| १. सामाजिक उपन्यास। | २. ऐतिहासिक उपन्यास। |
| ३. राजनीतिक उपन्यास। | ४. आंचलिक उपन्यास। |

रांगेय राघव के उपन्यास साहित्य का सामान्य अध्ययन

डा० रांगेय राघव बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से सृजन कर हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। वैसे तो उन्होंने कविता, कहानी, रिपोर्टाज, नाटक, आलोचना, इतिहास तथा अनुवाद आदि के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया, परन्तु उन्हें साहित्य जगत में एक उपन्यासकार के नाते विशिष्ट स्थान व सम्मान प्राप्त है। समाज की विभिन्न समस्याओं का आकलन करते हुए उन्होंने कुल इकतालिस उपन्यास लिखे हैं। इनके कुछ उपन्यासों में जहाँ समसामयिक परिस्थितियों घटनाओं का यथार्थ अंकन हुआ है वही कुछ उपन्यासों में इतिहास सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं को अपने स्वस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा व्याख्यायित करने का प्रयास भी किया गया है। राघव जी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाणों द्वारा अपनी स्थापनाएँ भी दी हैं। स्वतंत्रता तथा सामाजिक गतिविधियों का यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों में हुआ है। शिल्प की दृष्टि से भी राघव जी ने उपन्यास साहित्य में कई नये प्रयोग किये तथा कुछ नयी उपलब्धियाँ भी हासिल की।

औपन्यासिक विधा के विभिन्न रूपों में लिखे गये उनके उपन्यासों का निम्नलिखित वर्गीकरण करते हुए अध्ययन किया जा सकता है –

१. सामाजिक उपन्यास।
२. ऐतिहासिक उपन्यास।
३. राजनीतिक उपन्यास।
४. आचलिक उपन्यास।

१. सामाजिक उपन्यास

हिन्दी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की परम्परा नयी नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धाराम फिल्लौरी के 'भाग्यवती' (१८७७) उपन्यास से हिन्दी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों का प्रारम्भ माना है। 'परीक्षा गुरु' (१८८२) अग्रेजी ढंग से लिखा हुआ हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। लाला श्रीनिवासदास के इस उपन्यास में सामाजिकता के बहुत से पहलू देखने को मिलेंगे। सासारिक अनुभवों का यह लेखा-जोखा है। 'परीक्षा गुरु' के बाद हिन्दी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों के लेखन का अत्यधिक प्रचलन रहा। इस

वर्ग के उपन्यासकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'पूर्ण प्रकाश'^१। रत्नचन्द्र प्लीडर का 'नूतन चरित्र' (१८८३), बाबू राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दु' (१८९०), बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६), लज्जाराम शर्मा का 'धूर्त रसिकलाल' (१८९६), अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'ठेठ हिन्दी का ठाट' (१८९६) और अधखिला फूल (१९०७), ठाकुर जगमोहन सिंह का श्यामा स्वप्न (१८८६), किशोरीलाल गोस्वामी का 'त्रिवेणी' (१८८६) एवं प्रणयिनी-परिणय (१८९०), गोपालराम गहमरी का 'सास पतोहू' (१८९८) और बड़ा भाई (१९००) महत्वपूर्ण हैं।

इन उपन्यासों के बाद हिन्दी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की बाढ़ सी आ गयी। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को उपन्यास साहित्य के माध्यम से चित्रित किया जाने लगा। प्रेमचन्द युगीन उपन्यास समाज के यथार्थ चित्रण की ओर ही उन्मुख नहीं हुआ अपितु आदर्श का दामन भी उससे छूटने लगा। प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' में सामाजिक यथार्थ की परम्परा की पूर्ण परिणति है। प्रेमचन्द के बाद ऐसे उपन्यासकारों की एक लम्बी परम्परा है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को लक्ष्य बनाकर चले हैं। ऐसे उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अशक', राजेन्द्र यादव तथा प्रभाकर माचवे आदि मुख्य हैं।

प्रगतिशील आन्दोलन के दौर में राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव और नार्गाजुन आदि लेखकों के सतत् प्रयास से हिन्दी उपन्यासों में एक नयी चेतना आई। इस काल के लेखकों के उपन्यासों में परिस्थितियों की जटिलताओं से मुक्त होने के लिए सतत् प्रयत्नशील एवं संघर्षशील व्यक्ति के चित्र प्राप्त होने लगे। अपने निकट और अपनी ही संज्ञापूर्ण हीनताओं से जूझने वाला व्यक्ति प्राकृतिक रूप से समाज में जिस रूप में था उसका यथार्थ चित्रण बड़ी सजीवता से इनके उपन्यासों में हुआ। इनमें संघर्षशील व्यक्ति के टूटने और बनने की प्रक्रियाएँ सहज रूप में प्रदर्शित होता है।^२

इस परम्परा में रांगेय राघव ने तेरह सामाजिक उपन्यास लिखे –

१. घरौंदे (१९४६)
२. उबाल (१९५४)
३. बौने और घायल फूल (१९५७)
४. राई और पर्वत (१९५८)
५. छोटी सी बात (१९५९)



६. पथ का पाप (१९६०)
७. दायरे (१०६१)
८. आग की प्यास (१९६१)
९. कल्पना (१९६१)
१०. पतझड़ (१९६२)
११. प्रोफेसर (१९६२)
१२. पराया (१९६२)
१३. आखिरी आवाज (१९६२)

घरौंदे

यह रांगेय राघव का प्रथम प्रकाशित मौलिक उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक, कालेज के जीवन से सम्बन्धित है। घरौंदे के पूर्व कालेज के वातावरण का इतना यथार्थ एवं आकर्षक चित्रण हिन्दी के अन्य किसी उपन्यास में नहीं पाया जाता। लेखक ने इस उपन्यास में कालेज के बहुविध समस्याओं को उठाया है। कालेज के छात्र-छात्राओं की कामुकता तथा प्रेम-सम्बन्ध, प्राध्यापक एवं छात्राओं के गुप्त प्रेम सम्बन्ध, प्राध्यापक के चरित्र का पतन, सह-शिक्षा के दुष्परिणाम, कालेज की राजनीतिक गतिविधियाँ, राजनीति तथा धर्म के आड़ में पादरियों के कुचक्र और ईसाई धर्म का प्रचार व वेश्या समस्या। इन समस्याओं में लेखक का ध्यान कालेज के छात्र-छात्राओं में परस्पर चलने वाले प्रेम सम्बन्ध पर ही केन्द्रित है। जिसे उपन्यास में भगवती-इंदिरा, कामेश्वर-लीला आदि पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में अज्ञेय जी का मत है कि "रांगेय राघव के उपन्यास के प्रतिभा और अपरिपक्वता के भी स्पष्ट लक्षण हैं। लेखक ने अनुभव किया है कि मानवीय उद्योग एक महत्तर परिपार्श्व में होता है। जिस पर उसका अधिकार नहीं है और इस अनुभव का आभास पाठक को देने की उसने पूरी चेष्टा की है। किन्तु जहाँ प्रतिभा ग्रहण शक्ति और सूझ देती है, वहाँ परिपक्वता अनावश्यक के परित्याग का निर्ममत्व भी देती है, वह निर्ममत्व रांगेय राघव में नहीं है। कालेज के विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों के अधकचरे ज्ञान और वयः संधि की अस्पष्ट लालसाओं पर आधारित वाद विवाद बिल्कुल अनावश्यक है और उपन्यास की शक्ति को क्षीण करता है। कुल मिलाकर यह कहना पड़ता है कि घरौंदे का महत्त्व उसकी उपलब्धि में नहीं, आगमिण्यत उपलब्धियों की सम्भावना में है।" रांगेय राघव के इस प्रथम उपन्यास में समीक्षकों ने उनकी सृजनात्मक शक्ति की सम्भावनाओं को पहचाना। इस दृष्टि से यह उपन्यास महत्वपूर्ण है।

उबाल (१९५४)

इस उपन्यास में ग्रामीण तथा शहरी जीवन के विभिन्न स्तरों को अंकित किया गया है। इसका मुख्य विषय दो भिन्न-भिन्न जीवन पद्धतियों और जीवन दृष्टियों का वर्णन तथा प्रेम की महत्ता का दिग्दर्शन कराना है। जिसे लेखक ने सत्यपाल-मनोरमा, विलास-सरस्वती पात्रों द्वारा व्यक्त किया है। प्रेम की महत्ता के अतिरिक्त नारी जीवन तथा सामाजिक कुरीतियों की ओर भी संकेत किया गया है। उपन्यास में चित्रित घटनाओं के साथ ही पात्रों के मनोवेग को भी अभिव्यक्ति मिली है। आवेग में आकर चंदा भाग जाती है। आवेग में सत्यपाल मनोरमा की हत्या कर देता है। इस उपन्यास के मनुष्य का व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन बहुत कुछ उसकी मनःस्थिति पर निर्भर रहता है। 'उबाल' के सम्बन्ध में राघव जी का मत है कि "उबाल का अंजाम भाप होता है लेकिन कोई नहीं जानता कि जिन्दगी की तपिश के लिए पानी कहाँ-कहाँ से इकट्ठा होता है।"^५

बौने और घायल फूल (१९५७)

डा० रांगेय राघव का यह विचार प्रधान प्रयोगात्मक उपन्यास है। लेखक ने स्वयं उपन्यास की भूमिका में लिखा है "इसमें मेरे वही विचार व्यक्त हुए हैं, जिन्हें कला के दृष्टिकोण से मैंने नये ढंग से अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है।"^६ इस उपन्यास के कथानक का चयन मध्यवर्गीय समाज के नारी जीवन से सम्बन्धित है। मध्यवर्गीय परिवारों का समाज की जिन मान्यताओं के कारण पतन होता है, वही मान्यताएं इस उपन्यास की मुख्य समस्या है। नारी जीवन में दुःखमय एवं करुण स्थिति है – वैधव्य। मध्यवर्गीय समाज में विधवा का जीवन अत्यन्त करुण है। वैधव्य वह अभिशाप है जो नारी जीवन को अत्यन्त असहाय एवं निरीह बना देता है। पुरुष उसका अनुचित लाभ उठाने में पीछे नहीं रहते। इसी भँवर में उलझी इस उपन्यास की नायिका 'कमला' है। इस उपन्यास में राघव जी 'कमला' को भारतीय मध्यवर्गीय समाज की विधवा जीवन की समस्त दयनीय विवशताओं एवं दुर्बलताओं के साथ चित्रित किया है। इस समाज को बौने तथा 'कमला' को 'घायल फूल' के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त उपन्यासकार ने दलित एवं पीड़ित व्यक्तियों के जीवन तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के बलिदानों का भी यथार्थ एवं हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है।

राई और पर्वत (१९५८)

विद्या-रामभरोसे तथा हरदेव एवं फूलों की कथा ही इस उपन्यास का कथानक है। जो ग्रामीण

जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित है। इस उपन्यास में प्रचलित नैतिक मान्यताओं से संघर्षरत व्यक्ति को तथा भ्रष्ट सामाजिक जीवन को चित्रित किया गया है। साथ ही जाति प्रथा, बेमेल विवाह आदि समस्याओं तथा पुलिस व न्याय व्यवस्था का कटु यथार्थ भी वर्णित है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डा० सुरेश सिन्हा का मत है "यह उपन्यास राई के समान लघु है। पर इसका कैन्वैस पर्वत के समान विराट है।"^{१७} साधारण शब्दों में कहा जा सकता है व्यक्ति एक राई है तथा उसके समक्ष समाज में व्याप्त सामाजिक मान्यताएँ, विषमताएँ आदि एक पर्वत के समान है।

छोटी सी बात (१९५६)

यह रांगेय राघव का पत्रात्मक शैली में लिखा गया एक लघु सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में उच्च-मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों उनकी मान्यताओं और आचरणों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग से सम्बन्धित लोगों के कथनी एवं करनी, अन्तः एवं बाह्य रूप में असाधारण अन्तर होता है। सम्भ्यता के झूठे आवरण में इस वर्ग का जीवन अत्यन्त सीमित परिधि में घूमता है। सामाजिक वास्तविक समस्याओं से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। बाह्य आडम्बर एवं पाखण्ड ही इनके जीवन का अभिन्न अंग होता है। जिसके लिए वह सब कुछ कर सकता है। राज तथा शिवपुरी इसके उदाहरण हैं। जो अपनी पत्नी तथा बहन को अर्पित कर पदोन्नति प्राप्त करते हैं या करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त नारी की सामाजिक स्थिति, नारी जागरण तथा नारी आन्दोलन आदि पर भी विचार किया गया है।

पथ का पाप (१९६०)

डा० रांगेय राघव का एक मौलिक सामाजिक लघु उपन्यास है। इसके कथानक का केन्द्र बरौठा गाँव है जो भारतीय गाँव का प्रतिनिधि है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र किशनलाल एक ऐसा पात्र है जो अपनी सारी व्यक्तिगत एवं सामाजिक बुराईयों के बावजूद समाज का एक सुखी और सफल व्यक्ति है। किशनलाल के माध्यम से उपन्यासकार इस सत्य को स्पष्ट किया है कि चरित्रहीन, बेईमान, धोखेबाज स्वार्थी व्यक्ति समाज में निरन्तर प्रगति करते हैं तथा सम्मान भी प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत एक सज्जन व्यक्ति को पग-पग पर कष्ट सहन करने पड़ते हैं। जिसका उदाहरण रामलाल है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जीवन में व्याप्त जातिवाद, मुकदमा, घूसखोरी, दहेज तथा अंधविश्वास आदि समस्याओं को स्वर प्रदान किया गया है। इस उपन्यास के विषय में डा० मधुरेश लिखते हैं "इस उपन्यास में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि व्यभिचारी और नैतिक मानव मूल्यों से हीन व्यक्ति ही समाज का सबसे सफल व्यक्ति है और समाज

का उससे भी बड़ा व्यंग्य यह है कि वही व्यक्ति समाज का आदर्श व्यक्ति भी समझा जाता है।^{१८} यह पूरा उपन्यास व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है।

दायरे (१९६१)

यह रांगेय राघव का लघु, वैचारिक औपन्यासिक कृति है। उपन्यासकार ने सामाजिक विकृतियों और विषमताओं का यथार्थ तथा सजीव चित्रण इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। उपन्यास का एक पात्र सत्यदेव अपनी आपबीती अपने मित्र भटनागर को सुनाता है। लेखक का कहना है मानवता लुप्त हो रही है। स्वस्थ मानव समाज के निर्माण के लिए सकीर्ण दायरों से ऊपर उठना आवश्यक है। दायरे का 'सत्यदेव' मानवतावाद का आदर्श है। इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए सत्यदेव कहता है 'हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, सिख कम्युनिस्ट आदि सब ही मतों के पीछे चलने वाले लोग सीमित दायरों के मनुष्य होते हैं.....इन दायरों से पार होकर देखो, आगे देखो, मनुष्य केवल मनुष्य है जो इसे स्वीकार नहीं करता वही असली असभ्य और असली बर्बर है।^{१९} दायरे का लेखक मानवतावाद के अतिरिक्त नारी समस्या, जारज संतानों की समस्या, छुआछूत, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं का चित्रण किया है तथा समाधान के कुछ संकेत भी दिये हैं। समीक्षकों ने इस उपन्यास को राघव जी का एक सशक्त उपन्यास माना है। डा० सशीलकान्त सिन्हा का मत है "रांगेय राघव का सबसे ठोस सुलझा और उद्देश्यपूर्ण उपन्यास है।"^{२०}

आग की प्यास (१९६१)

डा० रांगेय राघव का एक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास के सामाजिक धरातल के केन्द्र में मध्यवर्गीय समाज के रूढ़ आदर्शों संस्कारों तथा बढ़ती यौन अतृप्ति के आपसी संघर्ष, पूँजीवादी अनैतिकता आदि हैं। कथानक तथा प्रसंग चयन में उपन्यासकार ने यथार्थवादी साधनों का प्रयोग किया है। उपन्यास में ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं, ग्रामीणों के सुख-दुख, परिवर्तित तथा नवीन जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। उपन्यास के आरम्भ तथा अन्त को विशिष्ट दृष्टि से लिखा गया है। पाठकों की भावनाओं को स्पंदित करने वाली अनेक हृदय-विदारक घटनाओं तथा तथ्यों का इस उपन्यास में प्रयोग हुआ है। मध्यवर्ग की विषम स्थिति, करुणा तथा मार्मिकता को व्यक्त करने वाली अनेक घटनाएँ हैं। सभी प्रमुख पात्रों की मृत्यु के कारण उपन्यास दुखान्त हो जाता है।

कल्पना (१९६१)

कल्पना आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया रांगेय राघव का एक लघु सामाजिक उपन्यास है।

मृत्यु का वरण करने वाले असफल प्रेमी-प्रेमिका की कथा को आधार बना उपन्यास की रचना हुई है। उपन्यास की मुख्य समस्या नारी एवं पुरुष के परस्पर प्रेम, स्वच्छन्द प्रेम, नारी और पुरुषों का उत्तरदायित्व है। उत्तरदायित्व से सम्बन्धित अनेक दार्शनिक व्याख्यान भी दिये गये हैं। 'नीला' के माध्यम से आधुनिक नारी के जीवन सम्बन्धित प्रश्नों को उठाया गया है। अनमेल विवाह को एक समस्या के रूप में उठाते हुए लेखन में यह भी चित्रित किया है कि किस प्रकार इस प्रथा के शिकार अनेक नर नारी दुःखमय जीवन जीने को बाध्य हो जाते हैं। इन रूढ़ियों में आबध्य अनेक युवक-युवती जीवन के सच्चे आनन्द से वंचित हो जाते हैं। नीला और डाक्टर के माध्यम से लेखक ने इस समस्या को प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने नारी-समस्या की पुष्टि के लिए अतीत के इतिहास से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किया है। डा० सुरेश सिन्हा ने इसकी प्रशंसा में लिखा है "इसके कथा गठन में लेखक ने विशेष कुशलता प्रदर्शित की है, जिससे उपन्यास में तीव्र गति और प्रवाह है।"^{११}

पतझर (१९६२)

यह शहरी जीवन से सम्बन्धित घटनाओं एवं समस्याओं को प्रस्तुत करने वाला एक लघु सामाजिक उपन्यास है। जिसमें डा० सक्सेना द्वारा जगन्नाथ एवं मोहिनी के उपचार कथा मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत है। उपन्यास प्रेमी-प्रेमिका के वासनात्मक प्रेमाकर्षण की कथा है। जिसकी परिणति प्रेम-विवाह के रूप में हुई है। जगन्नाथ एवं मोहिनी के प्रेम को आधार बनाकर हमारी पुरानी संस्कृति एवं सभ्यता तथा आज के नवीन परिवेश की संस्कृति एवं सभ्यता का चित्रण किया है। स्त्री-पुरुष के अनेक आकर्षक सम्बन्धों का वर्णन भी इस उपन्यास में है। उपन्यास में नाटकीयता है। मनोवैज्ञानिक ढंग से रोगियों (प्रेमी-प्रेमिका) का उपचार होता है। दार्शनिक वर्णनों की अधिकता के कारण उपन्यास नीरस सा हो गया है। उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। पतझर में हर साल जैसे पुराने पत्ते गिर जाते हैं तथा उसका स्थान नये पत्ते ग्रहण कर लेते हैं उसी तरह समाज में पुरानी पीढ़ी एवं उनकी मान्यताएँ, विचार तथा रूढ़ियाँ समाप्त होते रहते हैं तथा उसका स्थान नयी पीढ़ी एवं उनकी मान्यताएँ, विचार व विश्वास लेते रहते हैं। यह क्रम निरंतर चलता रहा है और चलता रहेगा।

प्रोफेसर (१९६२)

डा० रांगेय राघव का विचार-प्रधान लघु सामाजिक उपन्यास है। यह उपन्यास उच्चवर्गीय एवं निम्नवर्गीय जीवन की समस्याओं एवं विडम्बनाओं पर आधारित है। उपन्यास की मुख्य कथा प्रो० उमाशंकर

तथा निर्मला से सम्बन्धित है। प्रासंगिक कथा के रूप में नरेश, माधो, विलास आदि की कथा वर्णित है। लेखन ने उच्च वर्ग तथा निम्नवर्ग दोनों के जीवन की समस्याओं तथा पीड़ा की छटपटाहट को व्यक्त करते हुए इस यथार्थ की तरफ ध्यान आकर्षित कराने का प्रयास किया है कि ससार में सुखी कौन है। प्रो० उमाशंकर, इंजीनियर नरेश तथा भिखारी हीरा सभी अपनी-अपनी पीड़ा से ग्रस्त हैं। विधवाश्रम तथा अनाथाश्रम के संचालक अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में पूर्णतः असफल हैं। जिससे अनेक विधवा स्त्रियों को अपना शरीर बेचने तथा अनाथ बच्चों को भीख मागने पर विवश किया है। किस तरह अपने संकुचित स्वार्थ के लिए पेशेवर भिखारियों का निर्माण करते हैं तथा अच्छे भले जीवन से आँख तथा पैर लेकर उन्हें विकलांग की जिन्दगी गुजारने को मजबूर कर देते हैं। इन सभी समस्याओं का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

पराया (१९६२)

यह पूँजीवादी प्रवृत्ति का चित्रण करने वाला एक मध्यमकाय सामाजिक उपन्यास है। रमेश और ममता की मुख्यकथा के साथ प्रो० होल्कर तथा अरुणा की कथा व्यंजित है। पूँजीवादी प्रवृत्ति का अतियथार्थ चित्रण है। धन सग्रह की प्रवृत्ति मनुष्य को स्वार्थी तथा क्रूर बना देती है। मानवीय सम्बन्ध उसके समक्ष नश्य हो जाते हैं। व्यक्ति सत्य-असत्य, उचित-अनुचित का विवेक भूल अपने ही आत्मीय लोगों के साथ विश्वासघात, ठगी आदि अनेक अनुचित रास्तों से धन प्राप्त करता है। जिसका उदाहरण 'पराया' का 'रमेश' है। जो मानवीय मूल्यों को भूलकर धन का दास हो गया है। लेखक ने पूँजीवादी व्यवस्था को मानवता के लिए एक अभिशाप माना है तथा खुलकर निन्दा भी की है।

प्रो० होल्कर तथा अरुणा के माध्यम से लेखक ने उच्चमध्यवर्गीय समाज के खोखले जीवन को व्यक्त किया है। अरुणा होल्कर की विद्वत्ता से प्रभावित होकर विवाह कर लेती है, परन्तु गरीबी उसके जीवन को विषम बना देती है। किस तरह होल्कर कुछ रुपये लेकर स्वरचित रचना साहित्य को रमेश के नाम प्रकाशित कराते हैं। इस तरह अनेक पूँजीपति साहित्यकार बन जाते हैं। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों तथा नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।

आखिरी आवाज (१९६२)

आखिरी आवाज डा० रांगेय राघव का अन्तिम वृहद सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तित ग्राम जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास की कथा का

केन्द्र डूमरपुर गाँव है। कथा एक साधारण किसान हिरदेराम की पुत्री की हत्या से शुरू होती है। डूमरपुर के सरपच तथा वार्डपच के पुत्र नारायण और माधोसिंह अपनी प्रेमिका निहाल कौर के साथ मिलकर हिरदेराम की लड़की के साथ बलात्कार करते हैं तथा उसकी हत्या भी कर देते हैं। इसके बाद का पूरा उपन्यास नारायण और माधो जैसे व्यभिचारी तथा हत्यारे व्यक्तियों को निर्दोष साबित करने के लिए किये गये अनैतिक प्रयासों का यथार्थ तथा सजीव चित्रण है। राजनीति तथा न्याय व्यवस्था कितनी भ्रष्ट है। इसका लेखाजोखा इस उपन्यास में बड़े ही यथार्थ रूप में व्यजित है। लड़की की हत्या के पश्चात् घूसखोरी का एक विकराल रूप उभरकर सामने आता है जिसमें दरोगा, सर्किल इन्स्पेक्टर, डी०एस०पी०, मुन्सिफ तथा एम०एल०ए० आदि सभी शामिल हैं। न्यायधीश, एम०एल०ए० तथा मन्त्रियों के हाथ का खिलौना बने हुए हैं। मास्टर पंचौरी सरपच से सौ रूपया लेकर प्रधानाचार्य के विरुद्ध हड़ताल की योजना बनाते हैं। पटवारी, कानूनगो, तहसीलदार आदि भ्रष्टाचार के जीते जागते पुतले हैं। साथ ही राजनीतिक दाव-पेच तथा राजनीतिक सन्दर्भ में जातिवाद की समस्या को भी चित्रित किया है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डा० विलास गुप्त का कहना है कि "रांगेय राघव का चित्रण शत-प्रतिशत सत्य है और इस नाते 'आखिरी आवाज' का यह (डूमरपुर) ग्राम सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करता है।"³²

२. ऐतिहासिक उपन्यास

हिन्दी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास के निर्धारण के समय किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखित स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' हृदय-हारिणी व आदर्श रमणी तथा लवगलता वा आदर्शबाला नामक उपन्यासों का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। विद्वानों के मत-मतान्तरों के बाद यह बात अधिक प्रामाणिक है कि गोस्वामीजी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी' है इसके बाद देवकीनन्दन खत्री का 'गुप्त गोदना', गंगाप्रसाद गुप्त का 'कुँवरसिंह सेनापति', बलदेव प्रसाद मिश्र का 'पानीपत', भगवानदास का 'उर्दू बेगम', जयराम लाल रहतोगी का 'ताजमहल', मुरारीलाल पण्डित का 'विचित्र वीर' आदि उपन्यास प्रकाशित हुये। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना का आधिक्य है। ऐतिहासिक वास्तविकताओं से दूर ऐतिहासिकता का आवरण मात्र है। ऐतिहासिकता के आवरण में प्रायः उपन्यासों में तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी तथा वासनात्मक प्रेम प्रसंगों का चित्रण हुआ है। डा० कृष्णलाल के शब्दों में, "हिन्दी में प्रेमचन्द के पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यास केवल नाममात्र के ऐतिहासिक हैं क्योंकि इनमें लेखकों ने इतिहास की ओट में तिलस्मी, ऐयारी और प्रेम-प्रसंगों की ही अवतारणा की है।"³³ अतः इन उपन्यासों में मात्र ऐतिहासिकता का आभास होता है। मनोरजन की दृष्टि से लिखे गए इन उपन्यासों में किसी ऐतिहासिक

तथ्य का यथार्थ चित्रण नहीं हो पाया है।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी में कई प्रौढ़ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए, जिनमें प्रागैतिहासिक काल से लेकर बीसवीं शताब्दी तक की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं को विषय के रूप में अपनाया है। रांगेय राघव इस युग के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में रहे हैं। उन्होंने कुल सात ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं —

१. मुदों का टीला (१९४८)
२. चीवर (१९५१)
३. अंधेरे के जुगनू (१९५३)
४. राह न रूकी (१९५८)
५. पक्षी और आकाश (१९५८)
६. जब आवेगी काल घटा (१९५८)
७. महायात्रा गाथा
 - क. अंधेरा रास्ता (१९६०)
 - ख. रैन और चंदा (१९६०)

मुदों का टीला (१९४८)

मुदों का टीला १९४८ में प्रकाशित रांगेय राघव का प्रथम बृहत् ऐतिहासिक उपन्यास है। राघवजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का प्रारम्भिक उपन्यास होने के बाद भी यह उपन्यास विशिष्ट है। इस उपन्यास की कथावस्तु आज से ३५०० वर्ष पूर्व मोहन-जोदड़ों महानगर की है। इसमें लेखक ने गणव्यवस्था के प्रजातांत्रिक स्वरूप, गण सदस्यों के विलासी जीवन, गणतंत्र का निरंकुश राजतंत्र में परिवर्तन, आर्यों का आक्रमण, दास-दासियों की दयनीय स्थिति, नारी की दयनीय स्थिति, शोषण के प्रति निम्न वर्ग का विद्रोह आदि का चित्रण तथा विश्लेषण ऐतिहासिक सीमाओं में रहते हुए किया है। 'मुदों का टीला' मोहनजोदड़ों के अज्ञात जीवन को कल्पना के माध्यम से मूर्त करने वाला कल्पना-प्रधान प्रागैतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक का पर्याप्त कल्पना का आश्रय लेने का कारण तत्कालीन लिखित इतिहास का अभाव है। इस उपन्यास का मूल स्वर साम्राज्यवादी शासन पद्धति के स्थान पर गणतंत्रात्मक शासन पद्धति का आग्रह तथा साम्राज्यवाद का विरोध, दास प्रथा का विरोध, उनके रक्त एवं वंशानुगत संस्कारों

पर चोट, नारी स्वतंत्रता, शोषितों के प्रति करुणा तथा समता आदि मानवीय मूल्यों का समर्थन है। इस उपन्यास के ऐतिहासिक पात्रों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए रांगेय राघव आमुख (भूमिका) में लिखते हैं “आजकल हिन्दी में ऐसे बहुत से उपन्यास निकल रहे हैं जिनमें अद्भुत बातें साबित कर दी जाती हैं, अनेक उदाहरण हैं खेद है आपको यहाँ ‘दास’ दासों की सी बात करता मिलेगा। उसकी परिस्थिति प्रकट है। वह उस काल के दार्शनिकों की सी शिक्षित बहस नहीं कर सकता, न वह वैज्ञानिक भौतिकवाद मानता है, न द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक व्याख्या ही। मैं समझता हूँ कि इतिहास को इतिहास की सफल झलक करके देना ठीक है न कि अपने आपको पात्र बनाकर किये कराये पर पानी फेर देना।”^{१०}

इनमें लेखक ने द्रविड़ सभ्यता का उत्कर्ष, आर्य-द्रविड़ संघर्ष को लिया है। भारतीय परम्परा के विरुद्ध सत् और असत् के व्यापक संघर्ष में सत् पराजित होता है। जिसकी रक्षा लेखक ने प्रकृति द्वारा करवाई है। प्रकृति क्रुद्ध होकर असत् का नाश करती है।

चीवर (१९५१)

डा० रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में ‘चीवर’ दूसरा सफल उपन्यास है। इसका कथानक हर्षकालीन सामन्ती व्यवस्था से लिया गया है। इस उपन्यास में शुद्ध ऐतिहासिक वातावरण को औपन्यासिक कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था पर बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को इस उपन्यास में चित्रित किया है कि मनुष्य को सुख और शान्ति तभी मिल सकती है जब वह भौतिक सुख, संकुचित विचार, स्वार्थान्धता को त्यागकर खुले दिमाग से सोचने तथा सत्यनिष्ठा के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह करने लगे। प्रायः धन, स्त्री तथा भूमि ही युद्ध का मूल कारण मानते जाते हैं। इनमें आबद्ध हो, मनुष्य स्वविवेक खोकर अपना कर्तव्य भूल जाता है। मनुष्य को इस सांसारिक प्रपंच से बचाने का एक सशक्त मार्ग धर्म है। इस उपन्यास के मूल स्वर के रूप में जनहित तथा स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण के सामंजस्य को महत्व प्रदान किया है। तपस्या और संयम एवं गृहस्थ-सांसारिकता का सामंजस्य रांगेय राघव को पलायनवादिता से अधिक अभीष्ट है।

अंधेरे के जुगनूँ (१९५३)

यह डा० रांगेय राघव का महाभारतोत्तर युग से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें महाजन पद युग से भी पुराने समय का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास काल पर ऐतिहासिक तथ्य प्रायः बहुत ही कम प्राप्त है। इतिहास में इस काल को अंधकार युग कहते हैं। इस उपन्यास में रांगेय राघव ने गणतंत्र

की स्थापना तथा गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का क्रमिक विकास चित्रित किया है। महाभारत युद्ध के बाद आर्यजातियों की शक्ति सघर्ष के कारण धीरे-धीरे कम हुई। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सघर्ष बढ़ा। ब्राह्मणों की सर्वाधिकारिक सत्ता को समाप्त करने के लिए क्षत्रिय आगे आये, उन्हें इस कार्य में वैश्यो का भी सहयोग प्राप्त हुआ। क्षत्रियो तथा वैश्यो के सामूहिक प्रयास से ब्राह्मणों की सर्वाधिकारिक एकतन्त्रीय समाप्त हुई तथा गणतन्त्र स्थापित हुआ। इस उपन्यास में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के विकास तथा जातीय सकीर्णता के उस समय के नारी जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है।

राह न रूकी (१९५८)

‘राह न रूकी’ डा० रागेय राघव का एक लघु ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक महावीर बुद्ध युग की सामन्ती व्यवस्था है। जिसमें लेखक ने अपने व्यक्तिगत दार्शनिक विचारों को प्रमुखता प्रदान की है। उनके विचारों को व्यक्त करने वाले उपन्यास के पात्र अपने युग की सीमाओं में अनुशासित तथा मर्यादित हैं। जिससे उपन्यासकार ऐतिहासिकता का रक्षा करने में सफल हुआ है। लेखक ने जैन धर्म की उत्कृष्टता का वर्णन किया है तथा जैन धर्म को बौद्ध धर्म के अग्रिम पथ के रूप में स्वीकार किया है। जैन धर्म का पलायनवादी रूप लेखक को मान्य नहीं है।

उपन्यास में लेखक ने अनेक शाश्वत समस्याओं को उठाया है। हिंसा, घृणा, विरोध, असंतोष, वैषम्य आदि समस्याएँ आदि काल से आज तक निर्बाध रूप से विद्यमान हैं। इन समस्याओं को जितना सुलझाने का प्रयास किया जाता है उतनी ही ये उलझ रही हैं। लेखक के मत में इसका मूल कारण प्रतिशोध की भावना है। युद्ध का प्रत्युत्तर युद्ध नहीं शान्ति है। लेखक ने नारी स्वतन्त्रता का समर्थन किया है तथा पारिवारिक जीवन में सास-बहू के पारस्परिक सम्बन्धों की जटिलता को व्यक्त किया है।

पक्षी और आकाश (१९५८)

इस उपन्यास की कथा काल्पनिक होते हुए भी महावीर-बुद्ध युगीन वातावरण के ऐतिहासिक कलेवर को धारण किये हुए है। उपन्यास का नायक धन कुमार कल्पित है कथावस्तु नायक धनकुमार की स्मृतियों पर आधारित है। धनकुमार मानव जीवन की मूलभूत समस्याओं का दार्शनिक विवेचन करता है। ये समस्याएँ मानव जीवन के आदि काल से लेकर आज तक विद्यमान हैं और आगे भी रहेगी। यह उपन्यास एक व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होने पर अपने युग जीवन को व्यक्त करने में सक्षम है। यह ऐतिहासिक होते हुए भी युग-युग की मूल-भूत समस्याओं का आलोचनात्मक विवेचन करने में सफल है। लेखक के अनुसार जगली

जीवन अधिक सुखी था क्योंकि तब घृणा, द्वेष न था। आर्थिक विषमता समाज में अनेक समस्याओं को जन्म देती है। अर्थ के लिए मनुष्य अपने सम्बन्धों तथा कर्तव्यों को भी त्याग देता है। इस उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक वातावरण में समाज के प्रत्येक सामाजिक सम्बन्धों को एक नये दृष्टिकोण से साम्यक रूप में देखा—परखा तथा व्यक्त किया है। इस उपन्यास में वर्णित सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक तथा पारिवारिक समस्या तत्कालीन युग की ही समस्या नहीं अपितु आज और आने वाले कल की समस्या के रूप में सदैव विद्यमान थी और रहेगी।

जब आवेगी काल घटा (१९५८)

यह १९५८ में प्रकाशित १३वीं शताब्दी से सम्बन्धित एक सामान्य ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए रांगेय राघव जी लिखते हैं "प्रस्तुत उपन्यास लिखते समय मेरे सामने तीन दृष्टिकोण थे। एक मुझे नाथ सम्प्रदाय का यह रूप दिखाना जो गोरखनाथ और कबीर के बीच में था। इसमें गोरखनाथी सम्प्रदाय का विस्तृत रूप और साधनाएँ आयी। दो तत्कालीन युग का चित्रण करके योगियों की स्थिति दिखानी थी। इसमें विदेशियों का जनता में प्रभाव, उससे सम्बन्ध, जीवित रहने का कारण, रूप बदलने का कारण तथा सांस्कृतिक परम्परा के निर्वाह करने का कारण दिखाना था। इसमें हिन्दी साहित्य के नाथ सम्प्रदाय की देन दिखाना पड़ा।" इस उपन्यास में लेखक ने नाथपंथियों तथा खिलजी वंश के शासकों की गतिविधियों को प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत किया है। इसमें नाथपंथ से अधिक खिलजी वंश के शासकों की गतिविधियों को स्थान मिला है, क्योंकि खिलजी वंश का पर्याप्त प्रामाणिक इतिहास भारतीय इतिहास की पुस्तकों में उपलब्ध हैं। इस उपन्यास में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विषमताओं एवं विश्रृंखलाओं से त्रस्त समाज का चित्रण किया गया है। इस युग में नारी की सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत सम्माननीय थी। समाज में प्रचलित बहु विवाह तथा वेश्यावृत्ति का भी लेखक ने चित्रण किया है।

महायात्रा : अंधेरा रास्ता (१९६०)

इस उपन्यास में लेखक ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर १५०० ई०पू० तक की गाथा को प्रस्तुत किया है जो तीन भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में आदि से इन्द्र तक अर्थात् ५००० ई०पू० तक, दूसरा भाग इन्द्र से मान्धाता तक अर्थात् ५००० ई०पू० से ३५०० ई०पू० तक और तीसरा भाग मान्धाता से जनमेजय तक अर्थात् ३५०० ई०पू० से १५०० ई०पू० तक के क्रमिक विकास और प्रगति का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

इस महाकाय उपन्यास में लेखक ने प्रबल तर्कों एवं प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर पूर्व प्रचलित अन्य विद्वानों की मान्यताओं एवं विश्वासों का खण्डन किया है। इतिहास सम्बन्धी उनकी भ्रान्तियों तथा त्रुटियों को दूर किया है। लेखक के अनुसार आदिकाल में समाज का कोई रूप न था। मनुष्य पशुओं की भाँति रहता था। उसका ज्ञान अत्यन्त सीमित था। लेखक ने ऐतिहासिक सन्दर्भ में नारी-पुरुष के सहज विकास को अंकित किया है। इस विशालकाय उपन्यास का उद्देश्य मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के इतिहास को दिखाना है। उन्होंने ऐसे युग का प्रामाणिक ज्ञानवर्धक इतिहास इस उपन्यास में व्यक्त किया है जो भारतीय इतिहास में अंधकार युग के नाम से जाना जाता है।

महायात्रा : रैन और चन्दा (१६६०)

यह उपन्यास महायात्रा : अंधेरा रास्ता से आगे की कड़ी है। इसमें लेखक ने १५०० ई०पू० से लेकर १२०० ई० तक की गाथा को वर्णित किया है। यह उपन्यास तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग 'चन्दा उगने लगा' १५०० ई०पू० से ६०० ई०पू० तक अर्थात् जनमेजय से अजातशत्रु तक, दूसरा भाग चाँदनी फैल गयी ६०० ई०पू० से लेकर ६०० ई० तक अर्थात् अजातशत्रु से लेकर हर्षवर्धन तक और तीसरा भाग 'चाँदनी कुम्हलाने लगी' ६०० ई० से १२०० ई० तक अर्थात् हर्षवर्धन से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक की गाथा वर्णित है। रांगेय राघव अपने उपन्यास के प्रतिपाद्य के विषय में प्रारम्भ और उन्नति तथा अन्त में उसका क्रमशः पतन दिखाया है। उत्थान और पतन मैंने इस दृष्टिकोण से लिए हैं कि जनता को सामंत वर्ग से किस समय क्या लाभ और क्या हानि हुई। सामन्तवर्ग और जनता के इस सम्बन्ध को मैंने चन्द्रमा से तुलना करके रखा है। पहले चन्द्रमा धीरे-धीरे निकलता है और फिर खूब प्रकाश फैलाता है किन्तु फिर चाँदनी कुम्हलाने लगती है।^{१६}

जनमेजय और अजातशत्रु युग के प्रारम्भ में आर्य-अनार्य का भेद प्रायः मिटने लगा था। इस युग में दास प्रथा धीरे-धीरे समाप्त होने लगी थी। इस काल के प्रथम चरण में नारी परतंत्र थी तथा यौन सम्बन्धों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु अन्तिम चरण तक यौन सम्बन्ध पूर्ण प्रतिबन्धित हो गया। बहु विवाह प्रथा थी। विवाह प्रयः पिता की इच्छानुकूल होते थे परन्तु स्वयंवर प्रथा भी थी।

अजातशत्रु-हर्षवर्धन का युग सामन्त व्यवस्था के पूर्व का युग है। इस युग में प्रगति की चाँदनी फैल रही थी। इस युग में वर्ण व्यवस्था शिथिल पड़ गयी थी। दास-प्रथा का भी परिवर्तित रूप दिखाई देता है। सामाजिक बन्धन अपेक्षाकृत सुदृढ़ हो गये थे। बहु विवाह प्रथा तथा सती प्रथा प्रचलित थी। कुल

मिलाकर नारी की स्थिति सोचनीय थी। इस प्रगति के युग में भी भूत-प्रेत, जादू-टोने में विश्वास रखते थे।

हर्षवर्धन-पृथ्वीराज युग में हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारतीय समाज की स्थिति पतन की ओर उन्मुख हुयी जिसको लेखक ने चाँदनी कुम्हलाने लगी शीर्षक से प्रस्तुत किया है। इस समय वर्ण व्यवस्था जटिल हो गयी थी। देश के आन्तरिक कलह ने विदेशियों के हौसले बुलन्द किये जिससे विदेशी आक्रमण होने लगे। फलस्वरूप प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया। इस समय नारी की स्थिति संतोषप्रद थी। दास प्रथा समाप्त हो गयी थी।

३. राजनीतिक उपन्यास

राजनीति ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। रांगेय राघव सामाजिक परिवर्तन के लिए राजनीति तथा साहित्य के समन्वय की आवश्यकता बताते हुए कहते हैं "इस राजनीति का जब तक साहित्य से समुचित तादात्म्य नहीं होता तब तक मनुष्य की वास्तविक स्वाधीनता की कामना करना समाज में केवल दर्शक बने रहने के समान है।" उन्होंने राजनीति का समाज के साथ तादात्म्य को भी महत्वपूर्ण माना है। रांगेय राघव ने समाज के महत्व को न आँकने वाली व्यवस्था को ह्रासोन्मुखी कहा है। साहित्यकार तथा कलाकार समाज एवं राजनीति का समन्वय बिन्दु होता है। इसलिए इनके लिए विचारधारा गत् प्रतिबद्धता आवश्यक है।

रांगेय राघव ने समाज-व्यवस्था की रक्षा के लिए राज्य को महत्वपूर्ण माना है। जिस वर्ग का प्रभुत्व राज्य में होगा वही शासक होगा। प्रत्येक युग में साहित्यकारों को शासन सत्ता की चाटुकारिता के लिए प्रोत्साहन मिलता रहा है। जिसका मुख्य लक्ष्य शासन सत्ता के खिलाफ जनता में व्याप्त असंतोष को दबाना होता था। प्रशासन अपनी खामियों को पत्रकारों तथा साहित्यकारों को मौन रखकर छुपा सकता है। जब साहित्यकार एवं पत्रकार स्वार्थों के वशीभूत होकर वही सामग्री प्रकाशित करते हैं जो सत्ता को रुचिकर हो। तो लेखक अपनी स्वतंत्रता समाप्त कर देते हैं। परन्तु प्रत्येक युग में कुछ ऐसे लेखक भी अवश्य हुए हैं जिन्होंने स्वतंत्र लेखन द्वारा युग के यथार्थ को चित्रित किया है। ऐसे लेखकों में कबीर और तुलसी का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने शासन व्यवस्था की परवाह न करके समाज का यथार्थ चित्रण कर जनवाद का मार्ग प्रशस्त किया। इस सम्बन्ध में डा० रांगेय राघव लिखते हैं "अगर अकबर कालीन मुल्लाओं का रामचरितमानस का अध्ययन करके इसे पास ना पास करने का अधिकार होता था। कबीर कालीन शासकों

को कबीर साहित्य को पास ना पास करने का अधिकार होता तो अवश्य संस्कृति इन लेखकों की रचनाओं से वंचित रह जाती।¹⁷⁶

रांगेय राघव ने राजनीति और कला के सम्बंध को स्वीकार किया है। उनका मानना है कि राजनीति वर्गों का संबंध स्पष्ट करती है परन्तु साहित्य में वह दस्तावेज रूप में नहीं अपितु मानव जीवन में प्रतिबिम्बित होकर आती है। साहित्य की शक्ति से राजनीतिज्ञ अच्छी तरह परिचित है। साहित्यकार समाज का चित्रकार होता है। राजनीतिज्ञ का कार्यक्षेत्र भी समाज होता है। इस तरह दोनों एक ही कर्मस्थली में रहते हुए एक दूसरे से टकराते भी रहते हैं। राजनीतिक साहित्यकार की सहायता के बिना अपनी छवि समाज के समक्ष नहीं रख सकता।

साहित्य तथा राजनीति के सम्बन्ध पर डा० रांगेय राघव ने माओत्सेतुंग के एक लेख को संदर्भित करते हुये लिखा है “उनकी दृष्टि में साहित्यकार का राजनीतिज्ञ के सामने क्या स्वरूप है। पढ़कर देखिए कि निरंकुश सत्तावाद का व्यक्तिवादी संस्कार किसमें है। यदि हमारे पास कोई साहित्य और कला न होती, नितान्त साधारण किस्म की ही, तो भी हम न क्रान्ति कर पाते न विजय प्राप्त कर पाते।.....जब हम यह कहते हैं कि साहित्य और कला राजनीति के आधीन है तब हमारा मतलब वर्ग राजनीति और जन-राजनीति से है, कुछ राजनीतिज्ञों की कथाकथित राजनीति से नहीं है। उन राजनीतिक कुशल व्यक्तियों के विचारों को स्वरूप देकर स्फटिकवत् करके जनता में इस रूप को पहुँचाना है कि जनता उनको समझ सकें और उन्हें व्यवहार में ला सकें।¹⁷⁷ साहित्य की सत्ता को रांगेय राघव ने राजनीतिक नियमों से मुक्त माना है। उनका विचार है “कल जब शोषण मिट जायेगा, तब के साहित्य में आज का संघर्ष अपना स्थायी महत्व रखेगा, क्योंकि सांस्कृतिक संदेश देने वाला आज का साहित्य किसी राजनीतिक दस्तावेज के रूप में भविष्य के मानव के हाथ में नहीं जाएगा, वह आज के मनुष्य का वास्तविक चित्रण होगा। इस चित्रण में उसे जीवित व्यक्तियों के दर्शन होंगे।¹⁷⁸ रांगेय राघव साहित्य को मानव-जीवन की विकास गाथा तथा संस्कृति का परिचायक मानते हैं। वे साहित्य को सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सहायक मानते हैं।

रांगेय राघव मानवतावादी उपन्यास लेखक हैं। उन्होंने मानव-मानव के समान अधिकारों की कल्पना की है। ऐसा समाज जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव न हो। इसी कारण वे परम्परागत राजशाही तथा ब्रिटिश प्रजातंत्र का अपने उपन्यासों में विरोध किया है। वे पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करते हुए समाजवादी व्यवस्था का समर्थन करते हैं। उन्होंने साम्राज्यवाद के स्थान पर गणतंत्र की वकालत की है। उनकी मान्यता है कि गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली ऐसी हो जहाँ समान मत रखने, समान अधिकार रखने, चयन एवं निर्णय

की समानता हो, कोई भेद न हो, धन के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन न हो एवं जातिवाद धर्मवाद से यह शासन प्रणाली परे हो। रांगेय राघव ऐसे ही गणतंत्र की स्थापना के समर्थक हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दुस्तान में स्थापित गणतंत्र सर्वस्वीकृत गणतंत्र न होकर, वर्ग एवं जाति विशेष का शासन हो गया, जिसका रांगेय राघव ने सदैव विरोध किया। आजादी के नाम पर मात्र सत्ता हस्तान्तरण हुआ। सत्ता विदेश साम्राज्यवाद से देशी पूँजीवाद, सामंतवाद के हाथ सौंप दी गयी। इस सत्ता में भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, रिश्वतखोरी, छलकपट आदि मंत्रीपदों से प्रारम्भ होकर छोटे-मोटे कर्मचारियों तक व्याप्त थी। रांगेय राघव सामंती शोषण का विरोध आज से नहीं प्राचीन काल से करते रहे हैं “यह शोषण किसी भी रूप में हो प्रगतिशील साहित्य उसका प्रत्येक युग में विरोध करता रहा है। आज ही नहीं वह कालिदास के युग में भी यही देखता है; कि उस समय कौन शोषक वर्ग का हिमायती था और कौन नहीं।”^{२१}

हिन्दी साहित्य में राजनीतिक उपन्यासों का प्रारम्भ यशपाल के ‘दादा कामरेड’ उपन्यास से होता है। वस्तुतः इससे पहले भी उपन्यासों में राजनीतिक चित्रण होते थे पर वे उपन्यास के एक अंश मात्र होते थे। सम्पूर्ण औपन्यासिक कृति किसी राजनीतिक उद्देश्य से लिखी गई हो, ऐसा यशपाल से पहले देखने में नहीं आता। यशपाल के बाद राजनीतिक प्रतिबद्धता के आग्रह में लिखे गये रांगेय राघव के उपन्यास हैं। रांगेय राघव ने तीन राजनीतिक उपन्यास लिखे हैं –

१. विषाद मठ (१९४६)
२. सीधा सादा रास्ता (१९५१)
३. हुजूर (१९५२)

विषाद मठ (१९४६)

इस उपन्यास का नामकरण बंकिमचन्द्र चटर्जी के बंगला उपन्यास ‘आनन्द मठ’ की प्रतिक्रिया में हुआ है। इसमें बंगाल के अकाल से व्यथित एवं व्याकुल मानवता का करुण चित्रण किया गया है। इस कृति में लेखक ने समस्त मानवतावादी पक्ष को उसकी सम्पूर्णता में उभारा है। उपन्यास लिखने से पहले रांगेय राघव ने अकालग्रस्त क्षेत्र का दौरा किया तथा अकाल से अभिशप्त पीड़ित जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। इस अकाल की पृष्ठभूमि पर राघव जी ने अनेक रिपोर्ताज भी लिखे, जिसका संकलन ‘तूफानों के बीच’ नामक पुस्तक में है। इस उपन्यास का कथानक तीस भागों में विभक्त है। इसमें बंगाल की त्रस्त मानवता के चित्रण के साथ ही पूँजीपतियों की नृशंस स्वार्थपरता पर प्रहार किया गया है। इन पूँजीपतियों

के निकट अपना स्वार्थ ही सर्वोपरि है, मानव जीवन का मूल्य नगण्य है।

बंगाल के एक गाँव को केन्द्र बनाकर रांगेय राघव ने अकाल की विभीषिका के सभी पहलुओं का अंकन किया है। मुट्ठी भर अन्न के लिए घर, खेत, शरीर का कटु यथार्थ वर्णित है। पेट की ज्वाला के आगे सामाजिक, धार्मिक, नैतिक सभी बन्धन या ढीले पड़ गये हैं या समाप्त हो गये हैं। मनुष्य की मनुष्यता समाप्त हो गयी है। भूख और बीमारी से ग्रस्त मानव का जीवन एक असहनीय अमिशाप बन गया है। निराश्रय, साधनहीन नारियाँ साधन सम्पन्न वर्ग द्वारा लूटी जा रही हैं। अनेकों स्त्रियाँ भूख की ज्वाला से पीड़ित हो वेश्या बन रही हैं। कुछ भूख के कारण अपने बच्चों को बेच रही हैं। इस तरह दलित-पीड़ित नर-नारियों के आर्तनाद से सम्पूर्ण बंगाल का वातावरण गूँज रहा है किन्तु पूँजीपतियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं है। इन पूँजीपतियों का शोषण कार्य और तेजी से चल रहा है। सारा चावल गोदामों में दिया गया है जिससे दामों में और तेजी आ जाती है। इस तरह रांगेय राघव ने पूँजीपतियों के शोषण की निन्दा कर अपनी समाजवादी चेतना को स्पष्ट किया है। “प्रगतिवादी रचना का उद्देश्य समाज-व्यवस्था में उस विषमता की ओर संकेत करना है जिसके फलस्वरूप मानव पशुओं से भी हीन तथा दीन बन गया है।”²² इस उपन्यास में आदि से अन्त तक करुणा की अविरल धारा बहती है। इस उपन्यास में लेखक ने राजनीतिक आक्रोश और पूर्वाग्रह से मुक्त होकर बंगाल की त्रस्त मानवता का रुला देने वाला चित्रण किया है। लेखक ने अपने उपन्यास के विषय में लिखा है, “प्रस्तुत उपन्यास तत्कालीन जनता का सच्चा इतिहास है। इसमें एक भी अत्युक्ति नहीं, कहीं भी जबरदस्ती अकाल की भीषणता को गढ़ने के लिए मनगढ़न्त कहानी नहीं।”²³

इस उपन्यास में लेखक ने हिंसक क्रान्ति का विरोध किया है। विध्वंसक क्रान्ति का समर्थक अरुण कहीं भी लेखक की सहानुभूति नहीं पाता है। वह भूख-पीड़ितों की सहायता न कर उन्हें लूटने-जलाने की सलाह देता है। अरुण के विपरीत इकबाल लोगों की निःस्वार्थ भाव से सेवा कर जात-पाँत का विरोध करता है। अरुण की नीतियों से काफी साम्य आज के नक्सलवादियों की है, जो हिंसा के आधार पर समाज में समता चाहते हैं। लेखक के विचार में इस प्रकार की नीतियाँ सदैव बड़ी घातक रही हैं।

सीधा सादा रास्ता (१९५१)

यह उपन्यास भगवतीचरण वर्मा के ‘टेढ़े-मेढ़े रास्ते’ के प्रत्युत्तर में लिखा गया है। लेखक ने स्वयं लिखा है, “मैंने भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास ‘टेढ़े-मेढ़े रास्ते’ के आगे इसे लिखा है। मेरा उपन्यास अपने आप में स्वतंत्र है। इसका केवल एक सम्बन्ध अपने पूर्ववर्ती उपन्यास से है कि मेरे पात्र, उनकी परिस्थितियाँ,

सामाजिक व्यवहार, घर भूगोल, सम्पत्ति सब वही है, जो 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में हैं। कहानी अब आगे चलती है। इन पात्रों का अतीत टेढ़े-मेढ़े रास्ते की कहानी है, वह सब गुजर चुका है। जब उसकी आवश्यकता पड़ती है, तो वह चिंतन बनता है, पूर्व-स्मृति बनती है। मैं नहीं कह सकता कि मैंने पहले उपन्यास का उत्तर लिखा है। किन्हीं विशेष पात्रों, परिस्थितियों का वर्माजी ने अपने अनुकूल एक विशेष चित्रण किया है। मैं समझता हूँ उसमें कुछ विकृतियाँ हैं। मेरी राय में इन्हीं पात्रों का असली चित्रण नहीं हुआ। वह अब मैंने अपने अनुकूल किया है। वह विचारों का संघर्ष है।^{१२४}

सीधा सादा रास्ता अपने दो खण्डों में देश की स्वतंत्रता की पूर्ववर्ती पृष्ठभूमि तथा जीवन दर्शनों को प्रस्तुत करता है। मानव-स्वभाव के अनेक रूपों के दर्शन इनके इस उपन्यास में होते हैं, विशेषकर जीवन की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को इस उपन्यास में पूर्ण विस्तार से अंकित किया है। पहले खण्ड में नवाब अजीज बहादुर खैरा की सामाजिक, राजनीतिक जिन्दगी के टूटने, बिखरने और चूर-चूर हो जाने का वर्णन है। दूसरे खण्ड में तत्कालीन जागृति का चित्रण और स्वतंत्रता के लिए प्रेरित किया गया है। राजनीतिक प्रश्नों को बड़ी गहराई के साथ उठाया गया है तथा विवेचित किया गया है। इस उपन्यास में विभिन्न पार्टियों के सिद्धान्तों की निष्पक्ष, पूर्वाग्रह रहित व्याख्या की गयी है। उपन्यासकार ने गाँधीवादी आदर्शों के साथ स्वतंत्रता प्राप्त करने का आग्रह किया है। उनका कहना है जनता में मानवीय चेतना, आजादी से जीवन बिताने की आकांक्षा, संगठन करने और लड़ने की क्षमता है। जनता में प्रगति करने की आस्था एवं विश्वास है। लेखक ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आत्मसात् कर शोषितों के जीवन का व्यक्तिगत अनुभव के साथ चित्रण किया है। सिद्धान्तों के सन्दर्भ में रांगेय राघव स्वयं लिखते हैं "यदि 'सीधा सादा रास्ता' को कोई गौर से पढ़े तो देख सकता है कि उसमें गाँधीवाद का विश्लेषण कम्युनिस्टों वाला नहीं लिखा गया। मार्क्स से जो मुझे लेना था, वही मैंने सदैव लिया जैसा अन्यो से बहुत कुछ लेने योग्य लिया है।"^{१२५} मजदूरों के साथ साम्राज्यवादियों के क्रूर व्यवहारों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

हुजूर (१९५२)

इस उपन्यास का कथानक सन् १९३१ से स्वाधीनता प्राप्ति तक की कथा को एक कुत्ते (जैक) के माध्यम से व्यक्त किया है। जैक एक अंग्रेज पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट की विलायती कुतिया से प्रसूत है। जैक ने अपने बीस वर्ष के जीवन काल की घटनाओं एवं अनुभवों को व्यक्त किया है। इस उपन्यास में एक कुत्ते की कथा के माध्यम से इस यथार्थ को व्यक्त किया गया है कि अनेक सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों

के पश्चात् भी मानव की शोषण प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं आया बल्कि वह दिन-प्रतिदिन और भी भीषण एवं विकराल रूप ग्रहण करता जा रहा है। शोषक वर्ग के इस विकराल शोषण की चक्की में पिसकर शोषित वर्ग की स्थिति पशुओं से भी बदतर हो गयी है। यह उपन्यास तेरह भागों में विभाजित है। इसमें अंग्रेजी शासन पद्धति, उनके शोषण, अत्याचार, पुराने रईसों की विलासिता, विषमता, मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग की यथार्थ परिस्थितियों, उनके घुटन, पीड़ा, कुण्ठा, शोषण आदि दुख-सुख, नेताओं का चरित्रहीन, पतनशील आचरण इत्यादि का बड़ा ही यथार्थ, मर्मस्पर्शी हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का नायक कुत्ता जैक अनेक स्वामियों के यहाँ रहकर जीवन के कटु अनुभवों द्वारा समाज पर तीव्र एवं तीखे व्यंग्य करता है। पहले वह एक अंग्रेज कप्तान के सम्पर्क में रह उसकी नग्न-वासना का चित्र देखता है। अंग्रेजों के घर के आचार विचार, व्यभिचार तथा विलासपूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर उसके प्रति एक प्रकार की घृणा एवं वितृष्णा का भाव उत्पन्न करता है। अंग्रेज साम्राज्यवादियों पर भी सीधा प्रहार करता है। इस तरह समस्त मानव जाति पर तीखा व्यंग्य करता हुआ कहता है कि "यकीन मानिये। कुत्तों की किसी जाति ने कुत्तों की किसी दूसरी जाति को गुलाम बनाकर नहीं रखा।"²⁶ तत्पश्चात् जैक हरीप्रसाद, रमेश सिंह तथा सेठ मटरूमल के सम्पर्क में आता है तथा भारतीय रईसों तथा पूँजीपतियों की अनैतिक, कामुक, लोलुप तथा विश्वासघाती प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इसके बाद वह मध्यवर्गीय चित्रकार कवि, वकील आदि के सम्पर्क में आता है तथा उनकी परिस्थितियों, जीवन मूल्यों, मान्यताओं एवं रूढ़ियों पर तीव्र प्रहार किया है। अंत में वह निम्नवर्गीय जीवन के सम्पर्क में आता है जिसमें पग-पग पर व्यथा ही व्यथा है। इस उपन्यास में समाज के शोषण, नग्नता, दरिद्रता तथा कुरीतियों के साथ ही राजनीतिक चेतना के विकास का यथार्थ चित्रण किया गया है। विभिन्न शासकों की गतिविधियों का अध्ययन कर इस उपन्यास में जैक इस निर्णय पर पहुँचता है कि वर्षों से शासन नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। रूप बदलते रहे हैं पर शासन तंत्र ज्यों का त्यों है गोरे शासकों का स्थान भारतीय नेताओं और अफसरों ने ले लिया। राजनीति के सम्बन्ध में चुनाव के दुष्परिणाम, जातिवाद, छुआछूत तथा घूसखोरी आदि का भी चित्रण किया है।

४. आंचलिक उपन्यास

आंचलिक शब्द 'अंचल' से बना है। अंचल शब्द मूलतः संस्कृत शब्द 'अञ्चल' है। जिसकी व्युत्पत्ति 'अंच' धातु में 'अलच्' प्रत्यय के योग से हुई है। इस अंचल शब्द में तद्धित 'ञ्ज' प्रत्यय के योग से आंचलिक शब्द बनता है। जिसका अर्थ है – किसी देश के अंचल, क्षेत्र पार्श्वभाग या प्रांत या नगर या ग्राम विशेष

से सम्बन्धित। अतः उपन्यास के सन्दर्भ में वे उपन्यास जिसका प्रतिपाद्य किसी देश का कोई अंचल विशेष चाहे वह ग्राम विशेष हो या प्रान्त विशेष होता है, आंचलिक उपन्यास है। आंचलिक उपन्यास की परिभाषा में वे उपन्यास आते हैं, जिनमें किसी जनपद या प्रदेश के अंचल विशेष के लोक जीवन के लोकतत्त्वों का साग्वाही समग्र चित्रण हो। जिसके माध्यम से इस अंचल विशेष की जनता की बोली उसके मनोभावों, उसकी लोक संस्कृति जीवन के सुख दुख तथा तीज त्यौहारों और उत्सवों के अवसर पर रीति-रिवाजों, परम्पराओं, गीतों धार्मिक और नैतिक आचार विचारों, विश्वासों और आस्थाओं, आर्थिक और वर्ग वैषम्यों तथा संघर्षों, जनता के परस्पर सम्बन्धों, शिष्टाचार, व्यवहार, बच्चों के खेलकूद, स्त्रियों की स्थिति, उनकी विशेषताओं, उनकी रंग ढंग, पुरुषों की स्थानीय विशेषताओं, व्यसन, मनोरंजन, स्वास्थ्य, शिक्षा जीवन दृष्टिकोण आदि के रूप सब मुखर हो उठते हैं। दूसरे शब्दों में पाठक उपन्यास के माध्यम से अंचल विशेष की जनता के जीवन से निकटता प्राप्त कर सके, वहाँ की जनता के अन्तर बाह्य की पहचान परख हो सके।

हिन्दी में आंचलिक उपन्यास लेखन की परम्परा नागार्जुन से शुरू होती है, परन्तु इसके लिए भूमि प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' से तैयार होने लगी थी। क्योंकि इस उपन्यास की भाषा पर दिल्ली क्षेत्र का प्रभाव है। सन् १९१४ ई० में प्रकाशित मन्नन द्विवेदी कृत 'रामलाल' उपन्यास में अंचल की झलक दिखाई देती है। इस उपन्यास में ग्रामांचल की समस्याओं, आस्थाओं, विश्वासों, सुख-दुख, अंध-विश्वासों तथा लोकगीतों, त्योहारों, मेलों आदि का यथार्थ चित्रण किया है। परन्तु इस उपन्यास का अंचल विस्तृत होने के कारण इसे आंचलिकता के दायरे से बाहर ला देता है। शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' में भी आंचलिकता की झलक मिलती है। प्रेमचन्द ने भी गाँव तथा उसकी समस्या को लिया है परन्तु उनकी समस्याएँ गाँव विशेष की न होकर सामान्य गाँव की हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की परिस्थितियों में बड़ी तेजी के साथ बदलाव आया। "एक तरफ तो गाँवों में पहुँचते नये वैज्ञानिक उपकरणों ने ग्रामीणों को अपनी प्रगति के लिए आकर्षित किया तो दूसरी तरफ ग्राम रूढ़ियों एवं परम्पराओं को छोड़ने में असमर्थ थे। नयेपन का एक स्वाभाविक आकर्षण था जिसमें परिवर्तनशीलता सन्निहित थी तो दूसरी तरफ जड़ता, पुरातनता के प्रति मोह भी था।" इन उपेक्षित तथा अविकसित अंचलों को उपन्यास लेखकों ने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की। उन क्षेत्रों में व्याप्त अशिक्षा, अज्ञान रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के साथ उनके अविकसित उपेक्षित जीवन की ओर समाज का ध्यान आकर्षित कराया। आंचलिक उपन्यासकारों ने शहर या ग्राम के उपेक्षित अंचल को ही अपने उपन्यास का विषय बनाया।

हिन्दी उपन्यास लेखन की आंचलिक परम्परा को नागार्जुन ने नया मोड़ दिया। उनका प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' सन् १९४८, बलचनमा, नई पौध सन् १९५३ तथा बाबा बटेसरनाथ सन् १९५४ में प्रकाशित हुआ। इन सभी उपन्यासों में मिथिला अंचल के जनजीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। परन्तु इन्हें आंचलिक उपन्यास की संज्ञा रेणु के 'मैला आँचल' के बाद मिली। मैला आँचल की भूमिका में रेणु ने ऐसे उपन्यासों के लिए आंचलिक शब्द का प्रयोग किया था। जो कालान्तर में आंचलिक उपन्यास विधा के रूप में स्थापित हुआ।

आंचलिक उपन्यासों की परम्परा को विकसित करने में रांगेय राघव का विशेष योगदान है। इनके आंचलिक उपन्यासों की संख्या निर्धारण में आलोचकों में पर्याप्त मतभेद है। रांगेय राघव ने अपने आंचलिक उपन्यासों में सर्वाधिक उपेक्षित पक्ष को ही कथा का केन्द्र बनाया है। इनके उपन्यासों में राजस्थान के गाँवों के जीवन की आंचलिक छटा दृष्टव्य है जो राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित है। लेखक ने यहाँ के राजनीतिक परिवेश, धार्मिक परिवेश, सामाजिक परिवेश, पारिवारिक परिवेश, जातीय परिवेश, भाषा के परिवेश आदि का सुन्दर यथार्थ चित्रण करने का प्रयास किया है।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में राजस्थान के आंचलिक जीवन तथा उसकी समस्याओं को चित्रित किया है। 'कब तक पुकारूँ' में जहाँ करनटों के जीवन निर्वाह का चित्रण किया है, वहीं उनके जीवन की आपदाओं, संघर्षों, सामाजिक मान्यताओं और अनेक समस्याओं जैसे – पुलिस का आतंक, कठिन परिश्रम के पश्चात् जीवन के आवश्यक साधनों की प्राप्ति न होना, तथा उनकी मान्यताओं जैसे संभोग विषयक खुली छूट, बहुविवाह आदि की मार्मिक प्रस्तुति मिलती है। उन्होंने अपने आंचलिक उपन्यासों में ब्राह्मण समाज में व्याप्त कुत्सित कृत्यों ढोंग ढकोसलों, सामाजिक विडम्बनाओं आदि को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

'आखिरी आवाज' में लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर राजस्थान के गाँवों के बदलते परिवेश को अंकित किया है। इस समय राजनीति में जातीयता आदि विद्यमान थी। इस समय व्यभिचार तथा हत्या आदि जैसे जघन्य कुकृत्यों को रूपयों से दबा दिया जाता था। स्वतंत्रता के पूर्व जहाँ गाँवों में जादू टोना, जन्त-मन्तर साधु सन्तों, विभिन्न देवी-देवताओं में विश्वास किया जाता था, वहीं स्वतंत्रता के बाद राजस्थान के गाँवों के लोग इसे पोप लीला मात्र समझने लगे।

राघव जी ने अपने सभी उपन्यासों में स्थानीय भाषा, लोकगीत, लोकोक्तियों, मुहावरों कहावतों आदि का भी प्रयोग किया है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों की परम्पराओं में रांगेय राघव का महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान है। यद्यपि इस परम्परा का प्रारम्भ पहले हो चुका था परन्तु सन् १९५४ में फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद आंचलिक उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई। कुछ उपन्यासकार तो पहले से ही लिख रहे थे कुछ इन उपन्यास लेखकों से प्रभावित होकर आंचलिक उपन्यासों की ओर उन्मुख हुए।

डा० रांगेय राघव ने तीन आंचलिक उपन्यासों की रचना की है।

१. काका (सन् १९५२)
२. कब तक पुकारूँ (सन् १९५७)
३. धरती मेरा घर (सन् १९६१)

काका (१९५२)

'काका' डा० रांगेय राघव का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। 'काका' का प्रकाशन सन् १९५३ में हुआ जबकि 'मैला आंचल' का प्रकाशन १९५४ में। यह मथुरा के पुरोहितों के जीवन पर आधारित उपन्यास है, जिसमें उनके अनैतिक कार्यों का भण्डाफोड़ किया गया है। लेखक ने तटस्थ भाव से उस अंचल की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। राजनीतिक विचारों से यह उपन्यास पूर्णतः मुक्त है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में स्वयं रांगेय राघव ने भूमिका में लिखा है, "प्रस्तुत उपन्यास मेरा एक सामाजिक चित्रण है, जो मध्यकालीन विचारधाराओं के केन्द्रों की वास्तविकता को प्रकट करता है। उसकी प्रायः घटनाएँ इतिहास की भाँति सत्य हैं। परन्तु मैंने नाम बदल दिये हैं।"^{२०}

इस उपन्यास में लेखक ने परम सुख, हरिदास, गोसाईं आदि पात्रों के माध्यम से मथुरा के पुजारियों के घृणित कार्यों का अनावरण बहिर्मुखी प्रगतिवादी दृष्टिकोण के आधार पर करने में सफलता प्राप्त की है। इस उपन्यास में साधुओं के यथार्थ के साथ अन्य समस्याओं को भी उठाया गया है। ये समस्याएँ एक व्यक्ति, मथुरा या किसी अंचल विशेष की न होकर सम्पूर्ण जनता की सर्वव्यापी समस्याएँ हैं। समाज में विधवा जीवन के कटु यथार्थ को अंकित किया गया है। समाज की संकीर्ण मान्यताओं के कारण किसी युवती का असमय सिंदूर छिन जाने पर उसे कितना घुटनपूर्ण नारकीय जीवन व्यतीत करने को बाध्य होना पड़ता है इसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। परन्तु लेखक की प्रगतिवादी विचारधारा का दर्शन यहाँ भी किया जा सकता है। इस उपन्यास की विधवा कान्ता आजीवन इस वचन को स्वीकार करके तपस्विनी नहीं बनी रहती अपितु रामधुन के प्रेम को स्वीकार करती हैं तथा सामाजिक बन्धनों का विरोध करती हुई

देखी जा सकती हैं। इस उपन्यास में लेखक ने जाति एवं वर्ग के लोगों की परस्पर स्पर्धा, मठों का बाहरी आडम्बर तथा भीतरी भोग विलास, बुढ़ों का एक के बाद कई विवाह, पूँजीपतियों के प्रति पुलिस का पक्षपात, निरीह जनता पर अत्याचार, आदि अनेक सार्थक प्रसंगों का वर्णन कर समाज की विकृतियों एवं असंगतियों को चित्रित किया है। इस तरह रांगेय राघव ने मथुरा की प्रत्येक गतिविधियों का स्वस्थ वैज्ञानिक दृष्टि से तटस्थ अंकन किया है।

कब तक पुकारूँ (१९५७)

‘कब तक पुकारूँ’ १९५७ में प्रकाशित हुआ। राजस्थान और ब्रज प्रदेश की सीमा पर बसे बैर नामक ग्राम में और उसके इर्द गिर्द खानाबदोश जीवन यापन करने वाले जरायमपेशा नटों की बस्ती तथा इन करनटों की संस्कृति, रीति रिवाज, विश्वास अन्धविश्वास, नैतिकता तथा अनैतिकता के चित्रण को कथानक के रूप चुनकर रांगेय राघव जी ने ‘कब तक पुकारूँ’ जैसे सफल आंचलिक उपन्यास से हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया।

उपन्यास का नायक करनट सुखराम एक ठाकुर वंश से है। कुछ पीढ़ी पहले अधूरे किले के मालकिन ठाकुराइन ने एक दरबान से अपना अनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया, जिस कारण उसकी सनतान ठाकुर न कहलाकर नट कहलाने लगी। सुखराम का सम्बन्ध में इसी वंश से था। माता-पिता की मृत्यु के बाद वह इसीला नट के साथ रहने लगा। सुखराम का विवाह भी इसीला की पुत्री प्यारी से हो गया। सुखराम व प्यारी गाँव-गाँव घूमकर खेल दिखाते तथा प्यारी लोगों के साथ माँसल सम्बन्ध स्थापित कर कुछ धन कमा लेती है जिससे दोनों का जीवन सुखी था। बाद में एक सिपाही रुस्तम खाँ ने प्यारी को अपने घर में रखैल के रूप में रख लिया। सुखराम को इससे मानसिक पीड़ा तो हुई परन्तु प्यारी से उसने अपना सम्बन्ध बनाये रखा। कुछ दिन के बाद सुखराम ने कुरी की पत्नी कजरी से अपना विवाह कर लिया। प्यारी आघात के बाद भी अपनी विवशता के कारण सुखराम का विरोध न कर सकी। कुछ समय पश्चात् ही प्यारी और रुस्तम खाँ दोनों अत्यन्त बीमार पड़ गये सुखराम अपनी जड़ी बूटियों से उन दोनों का इलाज करने लगा। एक दिन सुखराम ने बांके से धूपो चमारिन की रक्षा कर दी, जिसके कारण बांके सुखराम का शत्रु हो गया और उससे बदला लेने की सोचने लगा। कुछ लोगों के साथ बांके ने उस पर हमला भी कर लिया, किन्तु इसमें सुखराम के साथ उसे भी गहरी चोट लगी। चमारों ने सुखराम की रक्षा की और उसे डेरे पर पहुँचा दिया। कुछ समय बाद सुखराम पूर्ण स्वस्थ हो गया। एक दिन वह कजरी को प्यारी के पास छोड़कर

बाजार चला गया और लौटते समय उसने रोती हुई धूपो को देखा। धूपो के पास जाने पर उसे मालूम हुआ कि बांके ने उसके साथ बलात्कार किया है। सुखराम के समझाने पर भी धूपो ने आत्महत्या कर ली। जिसके कारण चमारों में उत्तेजना फैल गयी। सभी लोग बांके से बदला लेने के लिए पुलिस रुस्तम खाँ के पास जाते हैं क्योंकि बांके उस समय वहीं था। रुस्तम खाँ और बांके दोनों शराब पीकर धूपो और सुखराम की निंदा करते हैं। इन दोनों की नीचता से क्षुब्ध होकर कजरी और प्यारी ने क्रमशः बांके और रुस्तम खाँ की हत्या कर दी इसी समय चमारों का समूह भी घर के पास आ गया और एक व्यक्ति ने उस घर में आग लगा दी, जिसके कारण प्यारी और कजरी दोनों संकट में पड़ गयीं। जलते घर में प्रवेश कर सुखराम ने दोनों की रक्षा की और उन्हें लेकर करनटों के समूह में भाग गया। कुछ समय पश्चात् वह गाँव की स्थिति जानने के लिए वापस आया और थाने में पकड़ लिया गया। थाने में उसका परिचय करनटों के राजा से होता है और दोनों खिड़की काटकर भाग जाते हैं। राजा सुखराम को अपना वजीर बना देता है। इसी समय प्यारी सख्त बीमारी के बाद मर जाती है। सुखराम और कजरी पहाड़ी पर टहलते हुए डाकुओं से मेम सूसन की रक्षा करते हैं। सूसन प्रसन्न होकर दोनों को अपने यहाँ नौकरी दे देती है। सूसन के घर लारेंस नामक एक युवक आता है और वहीं रहने लगता है। सूसन के पिता भी उसे पुत्रवत् प्रेम करते हैं। एक दिन लारेंस सूसन के साथ बलात्कार करता है, सूसन के चिल्लाने की आवाज सुनकर कजरी सूसन को छुड़ाने का प्रयास करती है। लारेंस ने गर्भवती कजरी के पेट में मार दिया जिसके कारण वह बेहोश होकर गिर पड़ी। कुछ समय पश्चात् सुखराम आ गया तथा उसने लारेंस को बुरी तरह पीटा। सूसन के पिता ने घटना जानने के पश्चात् लारेंस को पीटा तथा उसे यूरोप भेज दिया, परन्तु सूसन गर्भवती हो गयी। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सूसन को सुखराम तथा कजरी के साथ बम्बई के एक अस्पताल में भेज दिया। बम्बई में कजरी की मृत्यु हो गयी तथा सूसन को लड़की पैदा हुई। सुखराम उस लड़की चंदा को लेकर गाँव आ गया तथा कजरी की बेटी बताकर उसका लालन-पालन करने लगा। चंदा बड़ी होकर ठाकुर के लड़के से प्यार करने लगी। सुखराम के समझाने तथा ठाकुर की यातना का उस पर कोई असर नहीं हुआ। विवाह के बाद भी वह नरेश के लिए अपने पति नीलू करनट के घर से भाग आती है। वृद्ध अंग्रेज के पत्र से अपने जीवन के रहस्य को जानकर वह पागलों की तरह अधूरे किले की तरफ भागती है। विक्षुब्ध होकर सुखराम ने चन्दा की हत्या कर दी, जिसके कारण सुखराम की सजा हो गयी। चंदा की मृत्यु से नरेश भी पागल हो गया।

इस उपन्यास की मुख्य समस्याएँ हैं – यौन समस्या, आर्थिक विषमताएँ, सामाजिक यातनाएँ,

ब्राह्मण-ठाकुर आदि कुलीन कहे जाने वाले लोगों के अकुलीन कार्यों का विश्लेषण, पुलिस का दमन और अत्याचार।

अन्धविश्वासों में जकड़ी सभ्यता के कोसों दूर नटों का समाज अनपढ़ एवं अशिक्षित है। इनके स्वर में विद्रोह नहीं समझौता है। उनका विश्वास है कि 'जमींदार हुकुम चलाता है.....वह हमारा बाप है, हम उसकी रियायत हैं। उसका काम हमारा पेट भरना, सदा से उसके सामने सिर झुकाते ही आये हैं।'²⁸ इस तरह उपन्यास में एक ओर सामंती व्यवस्था और उसका उत्पीड़न दहाड़ रहा है, दूसरी ओर करनटों का बुभुक्षित और उपेक्षित जीवन कराह रहा है।

धरती मेरा घर (१९६१)

डा० रांगेय राघव का अन्तिम मध्यकाय आंचलिक उपन्यास है। लेखक ने बैर गाँव और उसके परिवेश में रहने वाले लोहपीटों को उपन्यास का आधार बनाया है। अंचल की दृष्टि से यह 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास से साम्य रखता है परन्तु 'कब तक पुकारूँ' में वे जहाँ नटों के जीवन को उपन्यास के कथानक के रूप में प्रस्तुत किया है वही धरती मेरा घर में लोह पीटों के जीवन को। दोनों जातियाँ खानाबदोश उपेक्षित एवं शोषित हैं। इस उपन्यास में एक अंचल विशेष के साथ ही साथ लेखक ने एक काल विशेष को भी चर्चा का विषय बनाया है। वह काल है सन् १९३५ ई० से लेकर सन् १९६० तक। इस काल के भीतर होने वाले सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण की गतिविधियों को इस उपन्यास में दिखाया गया है।

यह भरतपुर का एक विशिष्ट गाँव न होकर भारत का प्रत्येक गाँव है, जो भौतिकता के विकास में धीरे-धीरे अग्रसर हो रहा है। सन् १९३५ ई० के बैर गाँव में प्रो० शर्मा के रेवत से पूछने पर कि 'चाय यहाँ नहीं मिलती'³⁰ वह तुरन्त ही कहने लगा - 'नहीं हुजूर। यह गाँव ठहरा'। किन्तु सन् १९५२ ई० में पुनः प्रो० शर्मा के वैर गाँव आने पर रेवत ने कहा - 'चाय लाऊँ हुजूर।

चाय! मैंने कहा।

मास्टर साहब ने कहा - अब यह वैर वही वैर नहीं है, प्रोफेसर साहब! वह हंसा और कहा - चाहे जितनी चाय लीजिए। अब तो देहात के लोग भी चाय पीते हैं।³¹

इस उपन्यास में लेखक ने अनेक समस्याओं को उभारा है और उनके दुष्परिणामों की ओर संकेत

किया है। गाँव की सबसे विकट समस्या जातिवाद की है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे गाँव की आत्मा जातीय आधार पर विभक्त है। एक जाति दूसरी जाति को नीचा दिखाने में सदैव प्रयत्नशील रहती है। इनका दृष्टिकोण अत्यन्त सीमित है। भारतीय ग्रामीण समाज की सबसे बड़ी विडम्बना व्यापक दृष्टिकोण का अभाव है। स्वतंत्रता से पूर्व जिस जाति-भेद का विरोध होता था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उसे पुनः प्रोत्साहन मिलने लगा। जातिवाद के पश्चात् उपन्यासकार ने नेताओं के नैतिक पतन एवं राजनीतिक अशान्ति की चर्चा की है। भारतीय शासकों को शोषण-वृत्ति अंग्रेजों से भी घातक एवं घिनौनी हो गयी है। जनता आज भी पहले जैसी ही चूसी जा रही है। उपन्यासकार ने राजनीतिक गतिविधियों को भी सन्तुलित ढंग से इस उपन्यास में व्यक्त किया है। इनका किसी दल विशेष से कोई लगाव नहीं है। इसके साथ ही लेखक ने राष्ट्रभाषा की समस्या को भी उभारा है और उसके माध्यम से नेताओं के स्वार्थपरता तथा सतही नीतियों को उद्घाटित किया है।

इस उपन्यास में लोहपीटों के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अपनी जाति की गतिविधियों को व्यक्त करती हुई लाली ने अपने पुत्र कृष्णप्रसाद से कहा — “हम घर में नहीं रहते, हम जमीन नहीं जोतते, हम टिककर नहीं रह सकते। गाड़ी हमारा घर है गाड़ी हमारा संसार है। हम लोहे में साल नहीं करते। हम रस्सी से कुएँ में से पानी नहीं निकालते।”³² इनमें स्वाभिमान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। ये स्वतंत्र रूप से यत्र-तत्र भ्रमण करते हैं मानों भटकना ही इनके जीवन का पर्याय हो।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त लेखक ने कुछ चरित्र प्रधान उपन्यासों की भी रचना की। किसी व्यक्ति विशेष को केन्द्र बनाकर लिखी गयी इन औपन्यासिक जीवनियों में तत्कालीन समाज अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त हुआ है।

देवकी का बेटा (१९५४)

चरित्र प्रधान उपन्यासों की श्रृंखला में ‘देवकी का बेटा’ उपन्यास प्रथम कड़ी है। लेखक ने इस उपन्यास में उस युग की सम्पूर्ण सजीवता के मध्य ही कृष्ण के व्यक्तित्व को अंकित किया है। जिस कारण इसमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ उभर आयी हैं। राम युग के पश्चात् समाज अपने आन्तरिक विरोधों के कारण जर्जर होने लगा। वर्णगत खाई इतनी गहरी होने लगी कि समाज के उच्च वर्ण और निम्न वर्ण दोनों दो छोरों पर चले गये। उनके सम्बन्ध प्रायः समाप्त से होने लगे। कृष्ण युग में उच्च वर्ग की निरंकुशता का विरोध धीरे-धीरे शुरू होने लगा था। कृष्ण ने जातिगत भेदों को दूर

करने के लिए प्रयास किया। उनकी नीतियों को स्पष्ट करते हुए बलाहक ने जयाश्व से कहा — “वह सारा वैमनस्य इस निरंकुशता और अलगाव के कारण है। वह तो मानता है कि चार वर्ण हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। बाकी जातियाँ भी ऐसी ही हैं। फिर मनुष्य-मनुष्य समान हैं। अपने-अपने वर्ण का काम करो, परन्तु निरंकुश कोई न बनो।”³³

समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रबल हो जाने के कारण नारियों की सामाजिक पर्यादा घटने लगी और बहु विवाह के प्रचलन ने उसकी स्थिति को गहरा आघात लगाया। आर्य वासुदेव ने देवकी के पहले तेरह स्त्रियों से विवाह किया था, उनमें कुछ आर्य स्त्रियाँ थी और कुछ गोप कन्याएँ थीं। विवाह-प्रथा में वर्ण व्यवस्था की मान्यता को स्वीकार कर लिया गया था, किन्तु ये बन्धन अधिक जटिल नहीं थे। यौन सम्बन्धी स्वतंत्रता भी सामाजिक बन्धनों में बंधती जा रही थी, किन्तु कहीं कहीं उसका प्रचलन पूर्ववत् ही था। दास-प्रथा कृष्ण-युग में प्रचलित थी और उनके साथ अमानवीय व्यवहार किये जाते थे। लेखक ने दासियों के जीवन को अत्यन्त दर्दनाक रूप में उपस्थित किया है और बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से उनके चरित्र को गति दी है। कंस के दरबार में दासियाँ ‘ब्यूढोरा और लपेटिका के सारे कोने घिस चुके थे। उन्हें लज्जा ही नहीं रही थी। वे कंस के प्रासाद में वहाँ दासों तक के पौरुष का परिचय प्राप्त कर चुकी थीं, क्योंकि वे इसके अतिरिक्त जैसे सब कुछ भूल चुकी थीं। उनकी सन्तान प्रायः प्रति तीसरे वर्ष बेच दी जाती थी; और उनको ऐसी आदत पड़ गयी थी वे उस शोक को भी मनाना भूल गयी थीं। डा० रांगेय राघव ने इस उपन्यास में नारी-स्थिति को एक अनोखे ढंग से चित्रित किया है। लेखक ने इस उपन्यास में उस युग की सीमाओं के बीच मानवता के विकास में धार्मिक-सांस्कृतिक अवदानों का मौलिक मूल्यांकन भी किया है। अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों के समान इस उपन्यास में भी गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली की समस्याओं को उठाया गया है।

यशोधरा जीत गयी (१९५४)

‘यशोधरा जीत गयी’ सन् १९५४ में प्रकाशित रांगेय राघव का एक लघुकाय उपन्यास है। इसका कथानक संयासी सिद्धार्थ के मानसिक हलचल के मध्य जीवन की यादों से प्रारम्भ होता है। कथानक तीन भागों में विभाजित है — ‘प्रथमा’, ‘मध्यमा’ एवं ‘उत्तरा’। ‘प्रथमा’ में सिद्धार्थ के प्रारम्भिक जीवन एवं तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन है। ‘मध्यमा’ में सिद्धार्थ की मिथ्या जीवन तथा विलासिता के प्रति उदासीनता, पुत्र का जनम तथा गृहत्याग सम्बन्धी घटनाएँ वर्णित हैं। ‘उत्तरा’ में यशोधरा का विद्रोह मुख्य रूप से अंकित

है। यही इस उपन्यास का मुख्य विषय है। दार्शनिक विवेचन के आधिक्य के बाद भी लेखक मुख्य कथा से जुड़ा रहा है। दार्शनिक नीरसता के बाद भी कथा का आकर्षण समाप्त नहीं हुआ है। सिद्धार्थ और यशोधरा के माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन परिस्थितियों को अंकित किया है तत्कालीन समाज अत्यन्त विषम था। जाति तथा वर्णगत भेदभाव अपनी चरमसीमा पर थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय संकुचित दृष्टिकोण के कारण परस्पर लड़ रहे थे। वैश्यों की स्थिति संतोष जनक थी परन्तु शुद्रों की स्थिति दयनीय थी। यशोधरा के माध्यम से तत्कालीन नारियों की स्थिति का चित्रण किया गया है। इसमें उपन्यासकार ने नारी स्वतंत्रता सम्बन्धी आधुनिक चेतना को व्यक्त किया है। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "यशोधरा आधुनिक चिंतन की बात नहीं करती, परन्तु वह कहती है जो नारी तब भी कह सकती थी।"³⁸ तत्कालीन समाज में दास-प्रथा प्रचलित थी। दासों के साथ पशुवत व्यवहार किया जाता था। दासों का बाजारों में क्रय-विक्रय होता था। सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल अनेक अन्धविश्वासों से ग्रस्त था। राजनीतिक परिस्थितियों को इस उपन्यास में कम स्थान मिला है। कुल मिलाकर यह उपन्यास तत्कालीन समाज का चित्रण करने में सफल रहा है।

लोई का ताना (१९५४)

'लोई का ताना' सन् १९५४ में प्रकाशित तथा कबीर के जीवन एवं युग से सम्बन्धित उपन्यास है। उपन्यासकार ने कबीर को एक विशिष्ट पुरुष तथा लोकनायक के रूप में चित्रित किया है तथा उनके माध्यम से उस युग की समस्त परिस्थितियों को स्पष्ट किया है। अन्तःसाक्ष्य एवं जनश्रुतियाँ ही इस उपन्यास के कथानक का आधार हैं। जिसको प्रभावशाली बनाने के लिए कबीर के पदों को उद्धृत किया गया है। इस उपन्यास में डा० रांगेय राघव ने दृढ़ विश्वास के साथ अनेक मौलिक मतों को प्रतिपादित किया है। "कबीर को लोगों ने गलत समझा है। कबीर में सूफी संत, वेदान्त, रहस्यवाद, नारी निंदा आदि अनेक बातें हैं जैसे संसार की असारता पर जोर, मायावाद आदि का वर्णन, पर यह अनेक विकास को मंजिलें। ...कबीर को नीरस निर्गुणिया कह दिया। वे कह गये हैं कि कबीर ने कोई राह नहीं दिखायी।.....यह सब ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है, अतः त्याज्य है। अवैज्ञानिक है।"³⁹ तत्कालीन समाज में उच्च एवं निम्न वर्ग की खाई अत्यन्त गहरी थी। उच्च वर्ण निम्नवर्ण के साथ पशुवत व्यवहार करता था। उच्चवर्ण की निरंकुशता से विवश निम्नवर्ण के हिन्दु लोग मुसलमान हो गये तथा अनेक नीच जातियों वाले इस भय तथा अपने स्वार्थ के कारण इसाई हो गये। तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति भी दयनीय थी।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी विवेचन इस उपन्यास में हुआ है। धर्मस्थल भ्रष्टाचार के अड्डे बन चुके हैं। विश्वनाथ मन्दिर के महन्त के विषय में कबीर देवीलाल से कहते हैं, “मान है, पर काम तो उसके भी बड़े नीच हैं काका! सुबह कहारिन को छेड़ रहा था। वह रो रही थी।”³⁶ इस उपन्यास में राजनीतिक परिस्थितियों को पर्याप्त स्थान नहीं मिला है।

रत्ना की बात (१९५४)

‘रत्ना की बात’ सन् १९५४ में प्रकाशित, महाकवि तुलसीदास के जीवन पर आधारित रांगेय राघव का एक चर्चित उपन्यास है। उपन्यासकार ने अन्तः एवं बहिर्साक्ष्य तथा जनश्रुतियों के आधार पर कथानक का निर्माण किया है। काशी में गंगा नदी के तट पर मरणासन्न तुलसी की आँखों में उनके जीवन का प्रत्येक अध्याय एक-एक कर आते हैं और वे उस कष्ट में अपने सम्पूर्ण संघर्षमय जीवन को देखते हैं। उपन्यासकार ने महाकवि तुलसीदास के महान् व्यक्तित्व के माध्यम से उस युग की समस्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को स्पष्ट किया है। लेखक ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है, “तुलसी के सामाजिक कार्य, उनकी भक्ति, उनके सुधार, उनके विद्रोह, उनके विचार, उनका दृष्टिकोण ऐसे विषय हैं जिनपर लोगों का भिन्न मत है। जो तुलसीदास कहते हैं हमें वह देखना चाहिए। तुलसी ने जो प्रगति की, उसे समझने के लिए केवल उन्हें देख लेना काफी नहीं है, उनके पूर्ववर्ती युगों को भी देखना आवश्यक है।”³⁷

तुलसी के युग में समाज विश्रुंखलित था। नारी की स्थिति कबीर युग की अपेक्षा संतोषजनक थी। नारी मानव के विकास की बाधक न होकर सहायिका थी। इसी लिए रत्ना ने तुलसी से कहा, “मैं अर्द्धांगिनी हूँ। धर्मपत्नी हूँ। मैं स्त्री हूँ। तुम पुरुष हो। इतना ही तो मेरा तुम्हारा सम्बन्ध नहीं है? हमारा तुम्हारा धर्म का भी तो सम्बन्ध है। हम-तुम तो गाड़ी के दो पहिए हैं। एक पर दूसरा अटक कर रह जायेगा तो गाड़ी चलेगी कैसे?”³⁸ समाज में वेश्यावृत्ति का प्रचलन था। जातीय विवाह हुआ करते थे, जिसमें पिता की इच्छा सर्वोपरि हुआ करती थी। तुलसीदास जी भारतीय संस्कृति के प्रबल उपासक थे। तुलसी ने पुनः ब्राह्मण धर्म को मर्यादा दिलायी। गोस्वामी तुलसीदास जी मूलतः भक्त, कवि एवं समाज-सुधारक थे। इसीलिए इस उपन्यास में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों की अपेक्षा राजनीति को कम स्थान मिला है। तत्कालीन हिन्दू शासक अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण देश के साथ खिलवाड़ कर रहे थे। जैसा कि नरहरि दास ने तुलसीदास से कहा, “हिन्दू राजा अपने प्राचीन गौरव को भूलकर

कुत्तों की तरह विदेशी के सामने जीभ लटकाये बैठे हैं और पराये हाथों में पड़कर यह आज अपने ही देश की प्रजारूपी चिड़ियों का शिकार कर रहे हैं। वे अपने स्वार्थों में पड़कर देश का गौरव भूल गये हैं।³⁶ इस तरह रत्ना की बात उपन्यास कल्पना तथा यथार्थ के संयोग से परिपूर्ण है।

भारती का सपूत (१९५४)

‘भारती का सपूत’ सन् १९५४ में प्रकाशित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन पर आधारित एक मध्यकाय उपन्यास है। इस उपन्यास के पूर्ण संगठित कथानक को चार भागों में विभाजित किया गया है – ‘कालीक दमा और तिलकधारी’, ‘विपथगामी’, ‘यात्रा और आवेश’ एवं ‘अंतिम दौर’। उपन्यासकार ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन के माध्यम से उस युग की सम्पूर्ण परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास से स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में धन के आधार पर भी समाज विभाजित हो चुका था। इस विभाजन का प्रभाव हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों पर था। धनी वर्ग पहले की अपेक्षा उस युग में अधिक सुरक्षित था और उसका अधिकांश समय विलासिता में ही व्यतीत होता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी उस विलासिता के कीचड़ में बच नहीं पाये। पत्नी मन्नो देवी के विरोध पर वे कहते “यह मुझे नीच समझते हैं। बाहर के लोग मेरा सम्मान करते हैं, पर यह लोग मुझे बुरा समझते हैं।.....इतनी विडम्बना किसलिए। कौन ऐसा रईस है जिसके यहाँ रंडियाँ नहीं नाचती।”³⁷ समाज में वर्णगत विभाजन भी व्याप्त था। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति दयनीय थी। परस्त्रीगमन भी असामाजिक कार्य नहीं समझा जाता था। वेश्यागमन सभी धनिकों में प्रचलन सा था और उसे वे अपनी सामाजिक मर्यादा मानते थे।

संस्कृति की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भारतीय संस्कृति का जागरूक प्रहरी कहा जा सकता है। उन्होंने अपनी संस्कृति को अनेक दलदलों से बचाने का प्रयास किया। हिन्दू धर्म की कट्टरता एवं रूढ़ियों के कारण अन्य धर्मावलम्बियों के लिए हिन्दू धर्म का जो द्वार बन्द था, उसका भारतेन्दु ने विरोध किया ताकि हिन्दू धर्म का प्रचार कार्य किया। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने अनेक आधुनिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है।

लखमा की आँखें (१९५७)

‘लखमा की आँखें’ सन् १९५७ में प्रकाशित कवि विद्यापति के व्यक्तित्व पर आधारित रांगेय राघव का विशिष्ट उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक एक ब्राह्मण यात्री की स्मृतियों पर आधारित है। स्मृतियों पर आधारित होने के कारण विद्यापति के जीवन की घटनाओं का क्रमिक वर्णन नहीं हो पाया है। उपन्यासकार

ने बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से विद्यापति तथा उनके परिवेश का विशद चित्रण किया। इस उपन्यास में दिल्ली के सुल्तान महमूद से लेकर सम्राट अकबर के समय तक की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का चित्रण मिल जाता है। तत्कालीन समाज में उच्च वर्ण के अत्याचार से निम्नवर्ण की स्थिति दयनीय थी। एक वृद्ध कहता है, “चमारों के पास कुआँ नहीं है, क्योंकि उन्हें अधिकार नहीं, वे उसी हौज में से पानी ले जाते हैं जिसमें से बैलों को पानी पिलाया जाता है लेकिन कोरियों ने अपना कुँआ बना लिया है और उसके बनाते समय कोरी जान से मारे गये थे।.....आज उसी कुएं में किसी ठाकुर ने विष डाल दिया था, क्योंकि वह गाँव से भगाना चाहता था।”^{४१} तत्कालीन समाज में बाल विवाह जैसी कुप्रथा अपने जोरों पर थी। विसपी ग्राम के निवासी जगन्नाथ मिश्र की तेरह वर्षीय पुत्री का विवाह पाँच वर्षीय बालक से तय होना इसका एक उदाहरण है। यह विवाह विद्यापति के प्रयासों से रूक जाता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने नारियों का सजग तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। रानी लखिमा तथा शिवसिंह के माध्यम से समस्त ऐश्वर्यों की अपेक्षा नारी मांसल सुख तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अधिक महत्व प्रदान करती है इस मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित किया है। तत्कालीन समाज में अनेकों व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए हिन्दु से मुसलमान हो गये। मध्यकालीन राजनीतिक दशा को भी उपन्यास में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। इस उपन्यास में उपन्यासकार लगभग दो सौ वर्षों की राजनीतिक परिस्थिति को सफलतपूर्वक व्यक्त किया है।

धूनी का धुआँ (१९५८)

‘धूनी का धुआँ’ सन् १९५८ में प्रकाशित गोरखनाथ के व्यक्तित्व पर आधारित रांगेय राघव का सफल उपन्यास है। उपन्यासकार ने गोरखनाथ के माध्यम से तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को व्यक्त किया है। तत्कालीन समाज में वर्ग संघर्ष व्याप्त था। उच्च जातियाँ निम्न जातियों पर हावी थी। गोरखनाथ इससे दुखी थे। वे योगी मत्स्येन्द्रनाथ से कहते हैं, “ऊँच और नीच जाति के भेद से लोग त्रस्त हैं। वेद के भार से ब्राह्मण सबको दबाये दे रहे हैं।”^{४२} गोरखनाथ ने अपने प्रयत्नों से समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का उल्लेखनीय प्रयास किया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण नारियों की स्थिति दयनीय थी। पूजा के घृणित प्रचलन के कारण नारियों को मात्र वासना की मूर्ति समझा जाता था। गोरखनाथ ने नारी के इस रूप की निन्दा की तथा मातृत्व रूप की निन्दा की तथा मातृत्व रूप को स्थापित करने का प्रयास किया।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को रेखांकित कर उनकी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। उस काल में योगतंत्र, वज्रयान, कालचक्रयान, शाक्त सम्प्रदाय भेद, शैव मत के विभिन्न भेद, कापालिक, रसेश्वरमत, त्रिपुर संप्रदाय, दत्तात्रेय, सहजिया आदि अनेक धार्मिक संप्रदाय प्रचलित थे। इसमें बौद्ध मठ व्यभिचार का अड़्डा तथा अन्य सम्प्रदाय के अनुयायी योनि पूजा में रत थे। इस उपन्यास में राजनीतिक परिस्थितियों पर अपेक्षाकृत कम प्रकाश डाला गया है। क्योंकि गोरखनाथ की गतिविधियाँ धार्मिक सम्प्रदायों से विशेष रूप से जुड़ी हुई थी। इस उपन्यास में वर्णित समय नवीं सदी के अंतिम वर्ष और दसवीं सदी का पूर्वार्द्ध है। इस समय छोटे-छोटे राज्य थे जो अपने आन्तरिक संघर्षों के कारण टूट रहे थे। उपन्यासकार ने शासक के रूप में केवल भर्तृहरि का नामोल्लेख किया है। इस उपन्यास की अधिकांश घटनाएँ प्रामाणिक हैं।

मेरी भवबाधा हरो (१९६०)

‘मेरी भवबाधा हरो’ १९६० में प्रकाशित, रीतिकालीन कवि बिहारी के जीवन पर आधारित डॉ० रांगेय राघव का एक प्रामाणिक उपन्यास है। उपन्यासकार ने सुसंगठित कथानक के द्वारा बिहारी के जीवन तथा तत्कालीन परिस्थितियों को व्यक्त किया है। तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। उस समाज में जहाँ एक ओर राजा, महाराजा, नवाब आदि आमोद प्रमोद में व्यस्त थे, वहीं दूसरी ओर किसान और मजदूर वर्ग जीविकोपार्जन के लिए कठिन परिश्रम करता था। शासक जिनके परिश्रम के बल पर भोग-विलास करते थे, उनकी ही स्थिति तथा दशा से बेखबर थे। तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति दयनीय थी। नारी का दुहिता, भगिनी, माता का रूप समाप्त हो गया था, वह केवल विलासिता की मूर्ति बन गयी थी। राजा और प्रजा दोनों ही जगह स्त्रियों के कटाक्षों का मोल था। समाज में रानी से लेकर नौकरानी तक में सुन्दरता की होड़ लगी हुई थी। नौकरानी रखते समय भी सुन्दरता की जाँच होती थी। बहु विवाह का प्रचलन था। सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में तुलसीदास द्वारा स्थापित भक्ति-परम्परा बिखरने लगी थी। कृष्ण की अपेक्षा राधा की आराधना होती थी। जोगी तंत्र-मंत्र के द्वारा लोगों को सहज ठग्न करते थे। जो आज भी अनेक साधु परोपकार के नाम पर करते हैं। उपन्यासकार ने मुगलकाल के अनेक प्रसिद्ध सम्राटों की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला है। जिसमें अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेब का शासन काल वर्णित है। इस वर्णन से कथानक में कोई व्याघात उत्पन्न नहीं हुआ है। राजपूत आपसी भेद-भाव तथा वैमनस्य के कारण टूटकर मुगलों के इशारे के गुलाम हो गये थे। बिहारी

राजनीतिक अशान्ति के कारण चिंतित थे। कुल मिलाकर उपन्यास बिहारी तथा तत्कालीन परिस्थिति को व्यक्त करने में सफल रहा है।

आँधी की नींव (१९६१)

सन् १९६१ में प्रकाशित महाराणा प्रताप और महारानी लक्ष्मी के जीवन पर आधारित डा० रांगेय राघव का सशक्त उपन्यास 'आँधी की नींव' है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को उद्घाटित किया है। तत्कालीन समाज जातिगत आधार पर विभक्त था परन्तु उनमें परस्पर कटुता नहीं थी। परस्पर वैमनस्य अवश्य पाया जाता था। मेवाड़ में देश के अन्य भागों की अपेक्षा नारियों को अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। युद्ध काल में पुरुषों के समान संघर्ष करती तथा पराजय के समय राजपूतों की स्त्रियाँ अग्नि में जौहर दिखाना अपना कर्तव्य समझती थीं। बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। अन्तर्जातीय विवाह भी हुआ करते थे। महारानी लक्ष्मी ने महाराणा से कहा, "तुम राजपूत हो, एक छोड़ दस ब्याह करने का अधिकार रखते हो। करो। मैं स्त्री हूँ। वह सब सहना तो जन्मजात स्वभाव—सा ही हम राजपूतनियों में बन गया है।"^{४३} सदैव की भाँति इस युग में भी धार्मिक संकीर्णता संस्कृति के लिए अभिशाप सिद्ध हुई। लोग अपने स्वार्थों के लिए संस्कृति का गला घोटते देखे जा सकते हैं। इस उपन्यास में राजनीतिक परिस्थितियाँ अधिक मुखरित हुई हैं। अकबर की साम्राज्यवादी नीति ने राजनीतिक वातावरण को पूर्णतः दूषित कर रखा था। मुगल निर्दयता से अत्याचार कर रहे थे। इस तरह इस उपन्यास में महारानी लक्ष्मी के जीवन के साथ ही साथ तत्कालीन परिस्थितियों का प्रामाणिक वर्णन भी देखने को मिलता है।

सन्दर्भ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४४६
२. हिन्दी उपन्यास का अध्ययन – डा० एस०एन० गणेशन, पृ० ५२-५३
३. हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास : एक अध्ययन – डा० सुशीलकांत सिन्हा, पृ० ६६
४. आधुनिक हिन्दी साहित्य – अज्ञेय, पृ० ६७
५. उबाल – रांगेय राघव, पृ० २ (भूमिका)
६. बौने और घायल फूल – रांगेय राघव (भूमिका)
७. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास – डा० सुरेश सिन्हा, पृ० ४६४
८. आलोचना – श्री मधुरेश, जुलाई १९६४, पृ० ३८
९. दायरे – रांगेय राघव, पृ० ६६
१०. हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास : एक अध्ययन – डा० सुशील कांत सिन्हा, पृ० १४७
११. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास – डा० सुरेश सिन्हा, पृ० ४६८
१२. आधुनिक हिन्दी साहित्य में अहिन्दी लेखकों का योगदान – डा० विलास गुप्त, पृ० २८४
१३. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास – डा० श्री कृष्णलाल, पृ० ३०२-३०३
१४. मुर्दों का टीला – रांगेय राघव – आमुक
१५. जब आवेगी काल घटा – रांगेय राघव, भूमिका
१६. महायात्रा गाथा – रैन और चंदा – रांगेय राघव – भूमिका
१७. समीक्षा और आदर्श – डॉ० रांगेय राघव, पृ० ४०
१८. वही, पृ० ४२
१९. वही, पृ० ११६
२०. वही, पृ० १२०
२१. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड – डा० रांगेय राघव, पृ० २ भूमिका
२२. हिन्दी उपन्यास – डा० सुषमा धवन, पृ० ३१५
२३. विषाद मठ – डा० रांगेय राघव – दो शब्द
२४. सीधा सादा रास्ता – डा० रांगेय राघव – दो शब्द
२५. साहित्य-संदेश – जुलाई अगस्त, १९५६, पृ० ८७
२६. हुजूर – रांगेय राघव, पृ० १८
२७. हिन्दी उपन्यास – डा० सुरेश सिन्हा, पृ० ६८
२८. काका – डा० रांगेय राघव – भूमिका
२९. कब तक पुकारूँ – डा० रांगेय राघव, पृ० ३७

३०. धरती मेरा घर – डा० रांगेय राघव, पृ० ५
३१. वही, पृ० ७५
३२. वही, पृ० १२५
३३. देवकी का बेटा – डा० रांगेय राघव, पृ० ७२
३४. यशोधरा जीत गयी – डा० रांगेय राघव – भूमिका
३५. लोई का ताना – डा० रांगेय राघव – भूमिका
३६. वही, पृ० ७१
३७. रत्ना की बात – डा० रांगेय राघव – भूमिका, पृ० ६
३८. वही, पृ० ३६
३९. वही, पृ० ५३
४०. भारती का सपूत – डा० रांगेय राघव, पृ० ६३
४१. लखमा की आँखें – डा० रांगेय राघव, पृ० १०-११
४२. धूनी का धुआँ – डा० रांगेय राघव, पृ० ३३
४३. आधी की नीवें – डा० रांगेय राघव, पृ० ६६

चतुर्थ अध्याय

डा० रांगेय राघव के उपन्यासों का कथ्य विश्लेषण (मार्क्सवादी विचारधारा के विशेष सन्दर्भ में)

- | | |
|-------------------|-------------------|
| १. सामाजिक कथ्य। | २. ऐतिहासिक कथ्य। |
| ३. राजनीतिक कथ्य। | ४. धार्मिक कथ्य। |

डा० रांगेय राघव के उपन्यासों का कथ्य विश्लेषण

(मार्क्सवादी विचारधारा के विशेष सन्दर्भ में)

रांगेय राघव प्रगतिशील लेखक संघ के तीसरे अधिवेशन (सन् १९४२) से हिन्दी साहित्य में ख्याति अर्जित की। एक सम्पन्न परिवार में पैदा होकर भी अत्यन्त साधारण जीवन व्यतीत किया। उन्होंने जीवन तथा जगत को अत्यधिक निकट से देखा परखा तथा अपने उपन्यासों से चित्रित किया। "बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि रांगेय राघव जेठ की तपती दोपहरी में गरीब मजदूरों की बस्तियों में चक्कर लगाते थे जिससे उनके कष्टों का अनुभव स्वयं कर सकें। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि ऐसे प्रत्यक्ष सम्पर्क के बिना जनवादी लेखक नहीं बना जा सकता।"^१

रांगेय राघव ने मार्क्सवाद का विधिवत् अध्ययन किया। वे मार्क्सवादी सिद्धान्तों को भारतीय परिस्थितियों एवं परम्पराओं के अनुरूप ढालकर व्यवहार में लाना चाहते थे। उनकी मान्यता है कि "यदि भारतवर्ष में मार्क्सवादी परम्पराएँ स्वीकृत हुई, तो निश्चय ही उनका वह रूप स्वीकार नहीं हो पायेगा जो रूस या साम्यवादी देशों में है क्योंकि इस देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ भारतवर्ष में अत्यन्त भिन्न हैं।"^२

रांगेय राघव ने प्रगतिवाद की अतिवादी भूमियों का विरोध किया है तथा प्रगतिवादी लेखकों द्वारा किये जाने वाले भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा साहित्य परम्परा के विरोध के विरुद्ध हैं। उनके विचार से "हमें सम्पूर्ण पुरातन का विरोध न कर केवल उनके प्रतिक्रियावादी तत्वों का विरोध करना चाहिए।"^३ उन्होंने कबीर नानक आदि संत कवियों का मूल्यांकन करते हुए इसी आधार पर उन्हें प्रगतिशील सिद्ध किया है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि "किसी युग का काव्य तब ही जनमानस में उतरता है जब वह जीवन का सांगोपांग चित्रण करता है।"^४

साहित्य अपने युग जीवन का इतिहास होता है। इस तरह साहित्य और समाज का गहरा सम्बन्ध होता है। रांगेय राघव अपने युग के यथार्थ अभिव्यक्ति को साहित्य का आधार मानते हैं। प्रगतिशील साहित्य की व्याख्या करते हुए लिखते हैं। "यथार्थ चित्रण साहित्य को वह शक्ति देता है जिससे वह मानवीय हृदय को आकृष्ट कर सकें। जिस साहित्य में ये सभी गुण नहीं होते वह न केवल अप्रगतिशील है वरन् साहित्य

ही नहीं है।^{१५} रांगेय राघव ने अपने साहित्य में समाज के अनेक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। प्रगतिवादी लेखकों ने समाज में असमानता का कारण वर्ग-संघर्ष की स्थिति को स्वीकार किया है। रांगेय राघव भी वर्गहीन। समाज के प्रति कृत संकल्प है। “साहित्य समग्र मानव का एक नया जीवन दर्शन है जो वर्गवाद को मिटाकर मनुष्य का एक ऐसा सुखी समाज बना सके जहाँ मनुष्य विज्ञान की सहायता से सृष्टि के रहस्यों को समझ सके।”^{१६}

प्रगतिवादी लेखक कभी-कभी रूढ़ियों के नाम पर परम्परा की बहुत सी अच्छाईयों को भी अस्वीकार कर देता है। जबकि यह उचित नहीं है। रांगेय राघव के प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य मानवतावाद का विकास है। यही कारण है उन्होंने मानवतावाद के लिए प्रयासरत सभी चिंतन धाराओं को निःसंकोच अपनाया है। उन्होंने प्रारम्भ लेकर अब तक के मानव के सामाजिक सांस्कृतिक विकास का मूल्यांकन भी किया है। “आज तक की विरासत उदात्त स्वर को लेकर नये मानवतावाद की प्रतिष्ठा में लगा हुआ संगीत है जो आगे का पथ प्रशस्त करता हुआ सापेक्षता के कारण व्यापकतम है। प्रगति में नवीन प्रयोगों की उद्भावना होती है। यह नया मानवतावाद है जो समाज की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए पुरानी श्रेष्ठ विरासत को अपने भीतर समाहित करता हुआ वर्गहीन समाज बनाता है और ज्ञान की ओर ले जाता है, कठोर सत्य से जीवन की शक्ति ग्रहण करता है।”^{१७} राघव जी प्रगतिवाद को यथार्थवाद के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके अधिकांश उपन्यासों में असमान समाज व्यवस्था के विरुद्ध जनसंघर्ष का आह्वान किया गया है तथा प्रगतिशील साहित्य की विचारधारा का मूल्यांकन करते हुए रांगेय राघव ने जनसाधारण को उचित मार्गदर्शन भी दिया है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य रांगेय राघव के पूर्व पर्याप्त समृद्ध हो चुका था। रांगेय राघव का युग हिन्दी उपन्यास में परिवर्तन का युग रहा। आदर्श, आदर्शोन्मुख यथार्थ का स्थान यथार्थवाद ने ग्रहण कर लिया था। इस परिवर्तन के पीछे देशव्यापी परिस्थितियों का योगदान था। तत्कालीन उपन्यास विधा ने जीवन के प्रत्येक पक्ष को समेट लिया था। रांगेय राघव का साहित्य सृजन प्रेमचन्दोत्तर काल से प्रारम्भ होता है। परन्तु उन्होंने समकालीन जनजीवन के साथ-साथ भारत के अतीत कालीन परिवेश अर्थात् प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक समय के भारतीय सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन का बहुमुखी चित्रण किया है। ‘महायात्रा: गाथा अँधेरा रास्ता’ प्रागैतिहासिक काल से लेकर १५०० ई०पू० तक के भारत, ‘महायात्रा : गाथा रैन और चंदा’ १५०० ई०पू० से लेकर १२०० ई० तक के भारत, ‘मुर्दों का टीला’ ३५०० ई०पू० के भारत ‘प्रतिदान’, ‘देवकी का बेटा’ एवं ‘अँधेरे के जुगनू’ महाभारतयुगीन भारत, ‘राह न सकी’,

‘पक्षी और आकाश’ बर्द्धमान बुद्ध युगीन भारत ‘चीवर’ हर्षकालीन भारत, ‘यशोधरा जीत गई’, ‘धूनी का ६ जुआ’, ‘जब आवेगी काल घटा’, ‘लोई का ताना’, ‘रत्ना की बात’, ‘मेरी भव बाधा हरो’, ‘आँधी की नीवें’, मध्यकालीन भारत ‘भारती का सपूत’ सन् १८५० से १८८५ तक के भारत ‘हुजूर’ ब्रिटिश युगीन भारत ‘राई और पर्वत’, ‘पथ का पाप’ आधुनिक भारत एवं ‘धरती मेरा घर’ सन् १९३५ से १९६० ई० के भारत का सम्पूर्ण दस्तावेज हैं। इन उपन्यासों में तत्कालीन युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का समग्र रूप से चित्रण हुआ है। ‘सीधा सादा रास्ता’ देश की स्वतंत्रता की पूर्ववर्ती पृष्ठभूमि पर तथा ‘आखिरी आवाज’ स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की विकृत गतिविधियों पर व्यंग्य प्रहार किया गया है। इस तरह रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर १९६० तक के परिवर्तनशील मानव के जीवन गाथा को समाहित किया है। रांगेय राघव की एक प्रमुख विशेषता है कि वे अपने साहित्य में न तो उपदेशक के रूप में आये हैं और न ही आदर्शवादी नेताओं की तरह आदर्शों के सहारे समस्याओं का समाधान किया है। वे समाज को उसकी यथार्थ स्थिति तथा समस्याओं से अवगत करते हुए भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, सुख-दुख का चित्रण कर मानव के अन्तर्मन का अवलोकन करते हुए अपने उपन्यासों का कथानक निर्मित किया है। “यथार्थ जीवन का वास्तविक चित्रण है जो समाज की विकृतियों को दूर करने में लगी है। समाज की मूल विकृति है – संपत्ति के उत्पादन एवं वितरण में असमानता। मनुष्य का मूल कर्तव्य इस असमानता को दूर करना है।”^१ इनके अधिकांश उपन्यासों में असमान समाज व्यवस्था के विरुद्ध जन संघर्ष का आह्वान हुआ। रांगेय राघव ने सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया तथा सामाजिक विडम्बनाओं से पीड़ित स्त्री-पुरुष की यथार्थ स्थिति को अभिव्यक्त किया है। इन उपन्यासों में नारी की पराधीनता तथा सामंती व्यवस्था की बाह्य संरचना का ही चित्रण नहीं है अपितु जातिप्रथा, जमींदारी प्रथा, महाजनी व्यवस्था किसान मजदूरों का शोषण उत्पीड़न, अस्पृश्यता आदि का यथार्थ चित्रण मिलता है। समाज की इन विभिन्न समस्याओं का आंकलन करते हुए रांगेय राघव ने एकतालिस उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों में लेखक सम-सामयिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। इतिहास के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाणों के द्वारा अपनी स्थापनाएँ भी दी है। उनके सामाजिक, राजनीतिक तथा आंचलिक सभी उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। रांगेय राघव प्रगतिवादी साहित्य की सुनिश्चित भावधारा का समग्र मूल्यांकन करते हुए उसका सही एवं स्पष्ट पथ प्रदर्शन भी किया है।

१. सामाजिक कथ्य

रांगेय राघव ने अपने सामाजिक उपन्यासों में यथार्थवाद को पूरी शक्ति के साथ चित्रित किया

है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक विकृति, विषमता, दरिद्रता आदि दुर्बलताएँ पूर्णतः उभर कर आयी हैं। यथार्थवादी समस्याओं को निरूपित करने के लिए जिस परिवेश का निर्माण किया है वह पूर्णतः यथार्थ है। रांगेय राघव के उपन्यासों में भारत का सामाजिक जीवन उस सम्पूर्ण परिवेश में अपनी सारी सबलताओं एवं दुर्बलताओं के साथ साकार हो उठता है। अपने सामाजिक उपन्यासों में किसी वाद-विशेष का स्वर मुखर नहीं करते हैं। जिससे इनके उपन्यासों में किसी प्रकार का सम्प्रदायग्रह नहीं व्यक्त होता है। इनकी रचनाओं में मार्क्सवादी धारणाओं की अभिव्यक्ति अवश्य मिलती है परन्तु इसके ग्रहण में रांगेय राघव का उपन्यासकार रूप कहीं भी असंतुलित नहीं हो पाया है। इस विषय में इनका स्वयं का मत भी दृष्टव्य है – “मैं किसी वाद में सीमित नहीं हो पाता, क्योंकि मैंने किसी की नकल नहीं की। मैंने उपन्यास का मूलाधार भी अन्य अभिव्यक्तियों के रूपों की भाँति भाव को माना है और भाव के विषय में मेरा मत स्पष्ट ही है कि लोक कल्याण को समन्वित करके ही युग सत्य के बीच मनुष्य की चेतना का निखार भाव को लेकर चलता है।”^६

रांगेय राघव के उपन्यास साहित्य में प्रागैतिहासिक काल से लेकर सन् १९६० तक के सामाजिक घटनाओं का सम्पूर्ण विवरण मिलता है। उन्होंने परिवर्तनशील मानव मूल्यों का यथार्थ चित्रण किया है। प्राचीन भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था जिसमें अनेक जातियों का समावेश था। समाज व्यवस्था के लिए रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं आदि का भी महत्वपूर्ण योगदान था। भारतीय समाज में व्याप्त जो परम्परागत रूढ़ियाँ मनुष्य तथा समाज के सहज विकास में अवरोध उत्पन्न करती है। उनका विरोध करते हुए रांगेय राघव ने प्रगतिशील दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया है। जाति एवं वर्ण को अपरिवर्तनशील मानकर तथा इसे कर्मफल से सम्बद्ध कर शोषितों और दलितों का निरन्तर शोषण किया जाता रहा है। यह जाति और वर्णभेद आज भी भारतीय समाज में व्याप्त है। वैदिक काल में चार वर्णों की स्थापना हुई थी। मौर्यकाल में भी चार वर्ण मिलते हैं। भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य तथा चाणक्य के समय सामन्ती व्यवस्था का उदय हुआ। तभी इन्हीं वर्णों के भेदों-उपभेदों से बाद में अनेक जातियाँ बन गयी और मध्यकाल तक बनती रही।

गौतम बुद्ध के समय जाति तथा वर्णगत विद्वेष अपनी चरम सीमा पर था। ब्राह्मण क्षत्रिय आपस में लड़ रहे थे। महाराजा अपने पुत्र सिद्धार्थ से कहते हैं “जब तक ब्राह्मण शासक थे, तब तक वे ऊँचे थे। फिर ब्राह्मण क्षत्रिय संघर्ष हुए फिर मित्रता हुई तब ब्राह्मण भिखारी बना, परन्तु धर्म का स्वामी रहा। क्षत्रिय राजा रहा ब्राह्मण ने अपनी रक्षा के लिए जगह-जगह अनार्य देवी देवताओं और पुरोहितों को ब्राह्मण मान लिया। और रक्त शुद्धि को नष्ट करने लगा। उस समय हमने ही गणों में महा सम्मत कुछ के शुद्ध

रक्त की रक्षा की है। हमने ब्राह्मण के वेद को नहीं माना है। हमारे क्षत्रियों का अपना दर्शन है। हम सर्वश्रेष्ठ हैं हमसे ऊँचा कोई नहीं।^{१०} परस्पर संघर्ष के कारण समाज अव्यवस्थित हो गया था। वैश्य सम्पन्न थे परन्तु शुद्रों की स्थिति दयनीय थी।

गोरखनाथ युगीन समाज आंतरिक संघर्ष के कारण विश्रंखलित था। समाज में ब्राह्मणों का वर्चस्व था। “ऊँच और नीच जाति के भेद से लोग त्रस्त हैं। वेद के भार से ब्राह्मण सबको दबाए दे रहे हैं।^{११} गोरखनाथ ने समाज में प्रचलित रूढ़ियों एवं बुराईयों को दूर करने का सफल प्रयास किया। गोरखनाथ के योगमार्ग तथा उनकी सम्यक् दृष्टि केवल हिन्दू धर्म तक सीमित नहीं रही। उन्होंने समस्त धर्मावलम्बियों को आह्वान किया कि “जाति घृणा छोड़ो। कोई जन्म से ऊँच नीच नहीं होता।^{१२} गोरखनाथ के माध्यम से रांगेय राघव ने समाज के समक्ष विकास का नया मार्ग प्रशस्त किया।

समाज में व्याप्त जातिप्रथा एवं वर्ण व्यवस्था के परिवर्तन के प्रति कालान्तर में चर्पटनाथ ने भी प्रयास किया। यवनों के आक्रमण के बाद यह भेदभाव और अधिक बढ़ गया। असमानता के कारण समाज उच्च और निम्न दो भागों में विभाजित था। उच्चवर्ग निम्नवर्ग के साथ अमानुषिक व्यवहार करता था। कबीर ने काका देवीलाल से कहा “मैं देखता आ रहा हूँ। दावत हो रही थी। जूठन फिक रही थी। बाहर भंगी बैठे थे और वहाँ ठाकुर ऐसे जूठन फेंकता था कि कुत्ते और भंगी के बच्चे साथ-साथ झपटते थे।^{१३} उच्चवर्ग से त्रस्त निम्नवर्गीय अनेक हिन्दू मुसलमान हो गये। ऐसे हिन्दुओं का मुसलमानों ने स्वागत किया। हरिद्वार का पण्डा कमाल जुलाहा से कहता है “अरे तुम जुलाहे हो। तुम्हारी वयणजीवी जातियाँ पंजाब से लेकर बंगाल तक धीरे-धीरे मुसलमान हो गई है।^{१४} प्रति उत्तर में कमाल कहता है “क्यों न हो? पण्डित क्या कोई बुरा काम करते हैं जुलाहे? तुमने उन्हें नीचा समझा तो वे क्या करते? और मान लो कि मैं जुलाहा हूँ। हिन्दुओं में नीचा माना जाता हूँ। अगर मैं मुसलमान हो जाता हूँ तो हिन्दु मुझे बात-बात में दबा नहीं सकते। लेकिन फिर भी आदमी-आदमी के बीच दरार बढ़ती चली जाती है। उस समय सभी धर्म सम्प्रदाय वाले एक दूसरे को भिन्न समझते हैं।^{१५} विद्यापति के समय भी वर्ग विषमता विद्यमान थी। तुलसी के समय का समाज पूर्णतः अस्त-व्यस्त था। जातिगत भेदों से अधिक परस्परिक वैमनस्य से तत्कालीन समाज अत्यधिक त्रस्त था।

भारतेन्दु युगीन समाज का चित्रण रांगेय राघव ने ‘भारती का सपूत’ में किया है। तत्कालीन समाज में वर्ण तथा वर्गगत आधार पर विभक्त उच्चवर्गों का प्रभाव अधिक था। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों

में पुरातन पंथी समाज व्यवस्था के रूढ़ तथा अप्रगतिशील मान्यताओं का स्पष्ट विरोध किया। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तियों के पेशे के अनुसार अनेक जातियों का उदय हुआ।

रांगेय राघव ने समाज में फैले जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता की समस्या को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। 'अँधेरे के जुगनू' उपन्यास में महाजन पद युग से पहले की कथा है। इस उपन्यास में जाति-हित के लिए देश की स्वतंत्रता को कम महत्व देते थे। जातिगत बंधन इतने दृढ़ थे कि व्यक्ति उसके नियमों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता था। छलपूर्वक ब्राह्मण कन्या वृहदति का विवाह क्षत्रिय वृषकेतु से होने पर दुखी और क्रुद्ध होकर कहती है "नीच क्षत्रिय। तुम्हारे भीतर इतना विष था नराधाम क्षत्रिय होकर तुमने ब्राह्मणी पर दृष्टिपात किया।"^{१६} इस तरह हम देखते हैं कि जातिगत विद्वेष की जो ज्वाला आज के कई वर्ष पहले प्रज्ज्वलित हुई थी। वह तब से आज तक धधक रही है। तत्कालीन युग की इस समस्या का समाधान आज भी भारतीय समाज के पास नहीं है। लेखक ने इस समस्या का निदान वर्ण संक्रमण तथा जाति सम्मिश्रण में तलाश किया है।

जातिवाद से उत्पन्न प्रेम और विवाह की समस्या को 'पतझर' में उठाया गया है। इस उपन्यास के दो पात्र परस्पर एक दूसरे को चाहते हुए भी जातिगत बन्धनों के कारण विवाह नहीं कर पाते हैं। जातिवाद और आडम्बर का विरोधी प्रगतिशील डा० सक्सेना, अप्रगतिशील रूढ़िवादी हरवंशलाल से कहते हैं "लड़का अछूत नहीं लड़के के लिए आप अछूत हैं। आपकी बेटी उस लड़के के सामने एक अछूत की बेटी है। लड़का ब्राह्मण है और आप कायस्थ। आप जो जाति का इतना गर्व करते हैं यह मत भूलिये कि आप जिस देश में रहते हैं उसमें दर्जे बने हुए हैं.....हिन्दुस्तान में इतने ऊँच-नीच होते हुए भी हर जाति का आदमी अपनी जाति को दूसरी जाति से कम नहीं समझता। आप धोबिन से ब्याह नहीं कर सकते, भले ही आप कायस्थ हों। आपको भंगी भी अपनी लड़की देने को तैयार नहीं होगा। क्योंकि उसकी भी एक सामाजिक मर्यादा है।"^{१७} लेखक ने इस समस्या का समाधान अन्तर्जातीय विवाह द्वारा बड़े ही सहज रूप में किया है।

रांगेय राघव ने समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता की समस्या को भी अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। कुछ स्वार्थी लोग धर्म की आड़ में जनता का शोषण करते हैं। विद्यापति के समय में हुए धर्म परिवर्तन की समस्या का उल्लेख है "ब्राह्मण शाक्त, बौद्ध, वैष्णव आदि दलगत् स्वार्थी की जंजीरों में बंधाकर पंगु हो गये थे। बहुत से लोग असंतोष के कारण हिन्दू से मुसलमान हो गये थे।"^{१८} इस धर्म परिवर्तन के पीछे धर्म के प्रति विद्रोह की भावना प्रमुख थी। समाज में संघर्षरत निम्नवर्ग की मुख्य समस्या आर्थिक

थी। धार्मिक मान्यताओं के प्रति अपने विचार रांगेय राघव ने कबीर के माध्यम से व्यक्त किया है "धर्म कोई रूढ़ि नहीं। मनुष्य का कल्याण ही धर्म है।"^{१६} उन्होंने धर्म के नाम पर ब्राह्मणों के आडम्बर तथा मुल्लाओं के स्वार्थ पर भी व्यंग्य किया है। रांगेय राघव ने समाज में व्याप्त जातिवाद तथा सांप्रदायिकता पर प्रहार करने के साथ-साथ इसे हवा देने वालों का भी पर्दाफाश किया है। उनके उपन्यास के पात्र सदैव इस कुरीति के विरुद्ध संघर्षरत हैं। वे समाज द्वारा लगाये गये सभी अनुचित एवं संकीर्ण मान्यताओं को तोड़ने के लिए वचनबद्ध दिखाई देते हैं, चाहे वह जाति बंधन हो या धर्म बन्धन, वे कहीं भी समझौता नहीं करते हैं।

रांगेय राघव के उपन्यासों में मध्यवर्ग अपनी समस्त सबलता एवं दुर्बलता के साथ यथार्थ रूप में अभिव्यक्त हुआ है 'घरौंदे' उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवारों से आये विद्यार्थियों का चित्रण किया गया है। उपन्यास में पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति आकर्षित तथा प्रदर्शन प्रियता की भावना से ग्रस्त छात्रों के विषय में लेखक ने लिखा है "अब कुछ दिन बाद फिर कालेज में भीड़ होगी और कुछ दिन उस शोरगुल पूर्व और पश्चिम मिलकर नए उत्साह से मध्यवर्ग की कसौटी पर जमने की ज्यादा से ज्यादा कोशिश करेंगे, कोई सूट में होगा, कोई निकर और खुले कालर की कमीज पहनकर सूटवालों का मजाक उड़ाएगा।"^{१७}

समाज तथा समाज की प्रत्येक समस्या के प्रति मध्यवर्ग से आया छात्र जागरूक होता है। वह समाज में व्याप्त गरीबी, अव्यवस्था, रूढ़ियों एवं कुरीतियों से क्षुब्ध होता है तथा उसे समाप्त करने का प्रयत्न भी करता है। उपन्यास का एक पात्र समर देश की दयनीय आर्थिक स्थिति से खिन्न है। तो वीरेश्वर वैयक्तिक समस्या से ऊपर सामाजिक समस्या को मानता हुआ अपने दोस्तों से कहता है "इतने आदमी भूखों मरते हैं, संसार में इतना दुख है, लेकिन तुम बस प्रेम में लिप्त हो।"^{१८} वह अपने वर्ग तथा परिवार के प्रति भी सजग है "हम जिस स्तर के प्राणी हैं, वह मध्यवर्ग, जो रुपये पैसे वालों में भी है और गरीबों को भी छूता है। मैं घर का वारिस हूँ और सबसे ज्यादा जिम्मेदारियां मेरे ऊपर हैं।"^{१९}

'सीधा सादा रास्ता' उपन्यास में स्वतंत्रतापूर्व के मध्यवर्ग के जीवन को लिया गया है। इसके प्रायः सभी पात्र किसी न किसी समस्या से ग्रस्त हैं। ब्रह्मदत्त जो मध्यवर्गीय पात्र है। समाज की समस्याओं का हल बताता हुआ कहता है "इलाज है शिक्षा, स्वतंत्रता, हमारा देश, हमारा राज हमें इसके लिए किसानों को तैयार करना होगा कि वे अंग्रेजी सरकार से असहयोग करें। उसे मजबूर करें वह शासन न कर सके।"^{२०} इस तरह हम देखते हैं कि तत्कालीन युग का मध्यवर्ग न सिर्फ अपने उत्तरदायित्व एवं अधिकारों के प्रति

जागरूक है अपितु निम्नवर्ग को भी उसके अधिकारों से अवगत कराता है तथा उन्हें अधिकार दिलाने के लिए प्रयासरत भी है।

‘हुजूर’ उपन्यास का प्रमुख पात्र कुत्ता जैक है। जो उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग तीनों परिवारों में जीवन गुजार चुका है। इस कुत्ते के माध्यम से लेखक ने तीनों वर्गों के जीवन का विविध परिस्थितियों को चित्रित किया है। मध्यवर्ग अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त हुआ है इस उपन्यास में सेन परिवार एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार है। जो मात्र प्रदर्शन-प्रियता के कारण अंग्रजों की नकल करता है। मध्यवर्गीय रमेश सिंह अवसरवादी है जो अपने ही वर्ग का शोषण करता है। सुनयना के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय भारतीय नारी का चित्रण किया है। जो सामाजिक रूढ़ियों, विश्वासों एवं नैतिक मान्यताओं में आबद्ध अभिशप्त जीवन व्यतीत करती है, परन्तु विद्रोह का साहस नहीं कर पाती। अतः स्वयं को समाप्त करने का प्रयास करती है। नारायणी (आग की प्यास) भी एक ऐसी ही अभिशप्त जीवन व्यतीत करने वाली नारी है जो अन्ततः आत्महत्या करने को उद्यत होती है। मध्यवर्गीय परिवारों की नारी सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक नियम तथा कुल प्रतिष्ठा आदि से दबी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित एक दयनीय जीवन व्यतीत करने को विवश होती है। इस वर्ग का व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के वशीभूत कोई भी घृणित अमानवीय कार्य कर सकता है।

इस तरह रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग को उसकी सम्पूर्णता में चित्रित किया है मध्यवर्ग समाज का क्रियाशील वर्ग होने के कारण प्रत्येक क्रान्ति तथा परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह समाज की प्रत्येक समस्या से प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से प्रभावित होता है। यही कारण है कि वह इन समस्याओं के निदान का भी प्रयास करता है। इस दृष्टि से यह वर्ग समाज का सबसे प्रगतिशील वर्ग रहा है।

रांगेय राघव ने समाज में व्याप्त नारी शोषण की लम्बी परम्परा को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। आदिकाल में मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में नारी को विशेष सम्मान प्राप्त था। “स्त्री ही महादेवी का रूप है। वह जन्म देती है। वह वृद्धि का केन्द्र है पुरुष नहीं, वह संसार की शोभा है।”²⁸ परन्तु कुछ ही समय पश्चात् पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था ने नारी की स्थिति परिवर्तित कर दी। वह मात्र भोग विलास की वस्तु रह गयी। मोहन जोदड़ो काल में तो सम्पन्न परिवार में पत्नी के अतिरिक्त भोग विलास के लिए अनेकों स्त्रियाँ होती थी। नीलूफर नगर के सम्पन्न व्यक्ति की स्वामिनी होने के बाद भी कालान्तर

में सम्पन्न परिवार में होने वाले शोषण का अनुभव करती हुई कहती है "मैं भी कभी देवी थी.....उन दिनों स्वर्ण से लदी एक कठपुतली मात्र थी।"²⁵ नारी की आर्थिक पराधीनता को वह नारी शोषण का मुख्य कारण मानती है। "न स्त्री बुरी है न पुरुष। धन बुरी वस्तु होती है, अधिकार बुरी वस्तु है। धन और अधिकार को ठीक कर दो, फिर संसार में कुछ भी बुरा नहीं है।"²⁶

बुद्धकालीन समाज में सामन्ती समाज व्यवस्था थी। इस युग में नारी की स्थिति सोचनीय थी। 'पक्षी और आकाश' की नायिका सुभद्रा कहती है "स्त्री की वेदना स्त्री ही जानती है, सच विधाता ने स्त्री को विचित्र बनाया है। उसके नयनों में आँसू और अधरों पर मुस्कान देखकर भाग्य उसे सदैव खेल दिखाता रहता है।"²⁷ रांगेय राघव ने सिद्धार्थ के महल में भी भोगविलास के लिए अनेक स्त्रियों की चर्चा की है। जैसा कि गौतमी कहती है "उसे क्या दुख है? गर्भधारण करने को तू है, विलास के लिए असंख्य युवतियाँ हैं.....फिर उसे क्या दुख है।"²⁸ इसी उपन्यास की यशोधरा नारी जागृति का स्वर मुखर करती हुई कहती है "वे मेरे पति हैं मैं उसकी दया नहीं समान अधिकार चाहती हूँ।"²⁹

'धूनी का धुआँ' उपन्यास ने नारी के मातृत्व को पुनः प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयास किया। यद्यपि इनके पूर्व समाज में भी स्त्रियों ने अनेक सामाजिक अधिकार प्राप्त कर लिये थे। शिक्षा प्राप्ति तथा शास्त्रार्थ के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, वाद्य आदि कलाओं को सीखने का उन्हें अधिकार था। इनकी यह स्वतंत्रता पृथ्वीराज के समय तक विद्यमान रही। परन्तु मध्यकाल में नारी पुनः भोग विलास की वस्तु मात्र रह गयी। कबीर एक समाज सुधारक थे। किसी भी सामाजिक, धार्मिक बुराई पर तीखा करारा व्यंग्य करना उनका स्वभाव था। नारी की प्रति उनका दृष्टिकोण है "वह जननी है, आधी सृष्टि है।....पुरुष की विकृत वासना ही है। जो इसे देखकर केवल कामिनी ही समझता है। वह उसकी वासना के पूर्णत्व को नहीं देखता।"³⁰ तुलसी के समय नारी की स्थिति में सुधार हुआ। पुनः सामन्ती व्यवस्था के साथ ही नारी की स्थिति दयनीय होती गयी। वह मात्र भोग विलास की वस्तु बन गयी। रांगेय राघव के उपन्यासों में नारी जीवन की विषमता के साथ ही उनकी मुक्ति का मार्ग भी वर्णित है। "तू असहाय क्यों बनती है री। तू भी अपना प्रबन्ध कर। जब वह छोड़ गया तो तू भी छोड़ दे। स्त्री भी समर्थ बनेगी तभी पुरुष का अत्याचार बन्द होगा।"³¹

प्राचीन काल से समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति भी नारी जीवन की एक भयावह समस्या है। जिस पर उपन्यास लेखकों ने पर्याप्त लिखा भी है। डा० रांगेय राघव ने भी इस समस्या को अपने उपन्यासों में उठाया है तथा निदान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पुरुष ने उन्हें कलंकित किया। सतीत्व को

नारी चरित्र की श्रेष्ठता का मानदण्ड मान लिया गया। ऐसे समय में सतीत्व भ्रष्ट नारियों को जीने के लिए वेश्यावृत्ति करनी पड़ी। वेश्या नाममात्र के लिए स्वतंत्र होती हुई भी धन की गुलाम होती है। 'घरौंदे' की विधवा नादानी को परिस्थितियों ने वेश्या बना दिया। वह रोमन सम्राट की वीमत्स प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है जो सिंह और मनुष्य के युद्ध को आनन्द प्राप्त करने का एकमात्र साधन समझता था। वह अपने जीवन को उसी वीमत्सता से जोड़ती हुई कहती है। "सैकड़ों शताब्दियों के बाद सम्यता के इस आवरण में चाँदी का शेर यदि स्त्री से खेल करें तो आश्चर्य क्या। पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध समाज में हर स्थान पर बद्ध है। यही एक स्थान है जहाँ पुरुष स्त्री के प्रति अनाच्छादित बर्बरता से आकर्षित होती है।"³² नादानी इस दलदल से निकलने का प्रयास करती है, परन्तु कामेश्वर पढ़ा लिखा होकर भी परम्परागत संस्कारों से आबद्ध उसकी सहायता करने में असमर्थता व्यक्त करता है। वह कामेश्वर की कायरता पर उसके पिता होने की सूचना देती हुयी व्यंग्य करती है "रण्डी किसी भी रिश्तेदार की नहीं होती। यह तुम्हारी लड़की नहीं होगी। वह सिर्फ माँ को जान सकेगी। सिर्फ पन्द्रह साल की ही बात है आना तुम्हारी लड़की भी जवान हो जायेगी।"³³ नादानी का यह विद्रोह नारी जागरण का एक संदेश है। उस पर प्रेमचन्द के सेवा सदन का प्रभाव है जिसे नादानी स्वयं स्वीकार भी करती है। इसी तरह 'विषाद मठ' की इन्दू, 'कब तक पुकारूँ' की प्यारी और कजरी, 'पराया' की मालती, 'मुर्दों का टीला' की नीलूफर और बेणी वेश्या बनकर जीवन का अभिशाप झेलती हैं।

रांगेय राघव ने नारी पर लगाये गये कठोर प्रतिबन्ध तथा सम्पत्ति पर पुरुषों के एकाधिकार को नारी शोषण का मूल कारण माना है। उनका विचार है कि सम्पत्ति पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, स्वामित्व और दासता की जननी है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के समाप्त होने पर मानव के सम्बन्ध अधिक मधुर हो सकते हैं। "धन और अधिकार को ठीक कर दो फिर संसार में कुछ भी बुरा नहीं है।"³⁴

हिन्दी के आधुनिक उपन्यास लेखकों ने नारी के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उसका आर्थिक रूप से सशक्त होना आवश्यक माना है। "वह घर के बेजान चीजों की स्वामिनी है और जीवित मनुष्यों की दासी। आर्थिक परतंत्रता से उसे बाँध दिया गया है।"³⁵ यही कारण है रांगेय राघव तथा अन्य आधुनिक उपन्यास लेखकों ने अपने उपन्यासों में ऐसे नारी पात्र की सृष्टि की जो आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र, आत्मनिर्भर हो तथा नारी मुक्ति के लिए प्रेरणा बन सकें।

भारत में समाज सुधारकों द्वारा १९वीं शताब्दी में नारी मुक्ति आन्दोलन का आरम्भ हुआ। जिसका

व्यापक प्रभाव उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है। उन्होंने इस आन्दोलन के अनुरूप जहाँ प्रागैतिहासिक काल से लेकर २०वीं सदी के सातवें दशक तक का चित्रण किया है, वही इस आन्दोलन की कमियों की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है। व्यक्तिगत स्वार्थ तथा मनोरंजन के लिए इस आन्दोलन से जुड़ने वालों की एवं नारी जागरण की प्रक्रिया में पाश्चात्य अनुकरण की कड़ी आलोचना की है। 'यशोधरा जीत गई' उपन्यास की यशोधरा पुरुष शासित समाज को चुनौती देती हुई स्त्री का महत्व बताती है "जो जन्म देती है। वह नीच है, फिर पुरुष ही क्यों ऊँचा है? क्योंकि वह भोगी होने का अहंकार रखता है और स्त्री को ठोकर मारकर त्याज्य कहकर चला जाता है।"^{३६} नारी को अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयास करना होगा। "मर्दों के सहयोग की जरूरत क्या है? स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं। चलिये हम और आप आज देश की सोई हुयी स्त्रियों को जगाने चलें।"^{३७}

इस प्रकार रांगेय राघव ने नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने निर्धनता और तन की गन्दगी को गन्दगी नहीं माना है, विचारों की गन्दगी को हृदय की गन्दगी को गन्दगी माना है – "गंदे वे होते हैंजिनका दिल गन्दा होता है"^{३८}

रांगेय राघव के उपन्यासों में नारी प्रेम का उदात्त रूप देखने को मिलता है। उन्होंने जहाँ कहीं भी वासनात्मक चित्रण किया है वह समाज की कुत्सित वृत्तियों को चित्रित करने के लिए किया है। समाज में नारी की प्रतिष्ठा को प्रतिपादित किया है। भारतीय समाज में माता-पिता के व्यक्तिगत निर्णय ही नव दम्पति के वैवाहिक जीवन मूल्यों का आधार बनते हैं। ये निर्णय सदैव उपयुक्त ही होते हों ऐसा नहीं है। परन्तु प्रतिकूलता की स्थिति में नवदम्पति इसे नियति समझकर निर्वाह करता है। प्रेम तथा विवाह सम्बन्धों में मान्यताओं के सम्बन्ध में धारणाएँ बदली हैं। वर्तमान समय तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण के अनुसार रांगेय राघव ने 'पतझर' में नयी पीढ़ी का विद्रोह चित्रित किया है। वे लिखते हैं – सवाल यह नहीं है कि दो व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध हो, यह तो समाज व्यवस्था का सम्बन्ध है।यौवन एक आकर्षण होता है। मुझे यह कहना नहीं चाहिए, क्या वह इतनी बड़ी समस्या है बड़ों के लिए कि वे इसमें अडंगा डालें? समय की सीख वे दे सकते हैं। यह भी सत्य है कि हमारे अधिकांश प्रेम वासनामय होते हैंइसके बावजूद हमको यह अधिकार होना चाहिए कि हम अपना जीवन साथी चुन सकें।"^{३९} हमारे देश में सामाजिक नियमों की जटिलता के कारण एक दूसरे को चाहते हुए भी बहुत से स्त्री-पुरुष वैवाहिक बंधन में नहीं बंध पाते। "वह मुझे चाहती है लेकिन मेरे पास आ नहीं सकती। यह समाज हम लोगों को घोट कर रख रहा है।"^{४०}

विवाह पूर्व प्रेम या आपस में मिलकर एक दूसरे को समझने तथा उसकी परिणति विवाह में होना डा० रांगेय राघव 'घरौंदे' में दिखाया है। वे विवाह को व्यभिचार का लायसेंस बताते हुए कहते हैं "वे स्त्री को एक लायसेंस देते हैं कि तुम्हें एक आदमी मिलता है जैसे एक साइकिल को।.....आग की प्रदक्षिणा करके उसे लायसेंस पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं, अपने दिल के खून से। उस लायसेंस का मतलब है, रात-रात भर अपनी मर्जी के खिलाफ उसके साथ नंगी नाचे।"^{४१} इसी उपन्यास में रांगेय राघव ने भगवती की माँ और जमींदार के पारस्परिक प्रेम के माध्यम से द्रोंगी प्रवृत्ति तथा परम्परागत मान्यताओं पर व्यंग्य किया है। "वह समाज के अत्याचार के कारण विधवा है। अन्यथा वह अब सुहागिन है। माँ है। जिसके प्रेम में वे दोनों भुजाएँ फैला रखी है जो दो धाराओं को मिलाने की एक मात्र साधन है, शक्ति है, वह विधवा नहीं है।"^{४२} रांगेय राघव ने प्रेम को नैसर्गिक माना है। जिसे 'कब तक पुकारूँ' में नरेश और चंदा के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने समाज में व्याप्त धारणा का खण्डन किया है कि प्रेम का आधार आर्थिक होता है और वह कुल मर्यादा के ऊपर निर्भर करता है। लेखक ने विधवा विवाह एवं प्रेम समस्या को 'राई और पर्वत' में व्यक्त किया है तथा निष्कर्ष रूप में सच्चे विवाह को सामंती ढ़कोसलों एवं रूढ़िवादी परिपाटी से ऊपर नारी पुरुष के प्रेमपूर्ण सह-अस्तित्व में स्वीकार किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रांगेय राघव ने अपने सामाजिक उपन्यासों में यथार्थ को अपनी पूरी शक्ति के साथ चित्रित किया है। उन्होंने सामाजिक विकृति, विषमता, दरिद्रता आदि का न सिर्फ विस्तृत चित्रण किया है अपितु उसे समाप्त करने का उचित मार्गदर्शन भी किया है। उन्होंने स्वयं लिखा है "जीवन की विषमता को रटना मेरा ध्येय नहीं है, उसे मिटाना मेरा उद्देश्य है।"^{४३}

२. ऐतिहासिक कथ्य

डा० रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भारत का विस्तृत इतिहास अंश प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों में उन्होंने अतिशय कल्पना शक्ति का प्रयोग किया है। परन्तु उससे अतीत की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता कहीं भी नष्ट नहीं हुयी है 'आज कल हिन्दी उपन्यासों में अद्भुत बातें साबित कर दी जाती हैं दास दासों की तरह बातें कर सकता है। उसकी परिस्थिति स्पष्ट है। वह उस काल के दार्शनिकों की सी शिक्षित बहस नहीं कर सकता, न वह वैज्ञानिक भौतिकवाद मानता है न द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक व्याख्या ही। मैं समझता हूँ कि इतिहास को इतिहास की सफल झलक करके देखना ठीक है न कि अपने-आपको पात्र बनाकर किए कराए पर पानी फेर देना।"^{४४}

अपने आरम्भिक समय से ही ऐतिहासिक उपन्यास विवाद का विषय रहे हैं। इतिहासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यासों की आलोचना की तथा उसे इतिहास के लिए घातक बताया। पालग्रेव ने जहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों को इतिहास का शत्रु कहा है तो वहीं लिसली स्टीफेन ने साहित्य और इतिहास के आपसी सम्बन्ध में एक के क्षतिग्रस्त होने की आशंका व्यक्त की। समय तथा स्थिति के परिवर्तन के साथ ऐतिहासिक उपन्यास विज्ञान, कला, संस्कृति, समाज, इतिहास तथा साहित्य के आपसी सम्बन्ध से महत्वपूर्ण उदाहरण बना। सामाजिक विकास के क्षेत्र में ऐतिहासिक उपन्यास महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान की प्रत्येक घटना कहीं न कहीं विगत से निबद्ध होती है। इस विगत की अवधि दिन, सप्ताह महीना तथा साल कुछ भी हो सकती है। "प्रत्येक युग की दुर्बलता या शक्तिमत्ता अपने युग में लक्षित की जा सकती है। ऐसी अवस्था में वर्तमान जीवन की समस्याओं में हमारी पैठ उतनी ही गहरी होगी, जितना हमारा इतिहास का अध्ययन प्रगाढ़ होगा।"^{५५} ऐतिहासिक उपन्यास लेखक विगत की भूलों का उल्लेख करके भविष्य के लिए उज्ज्वल मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे कभी-कभी वर्तमान जीवन तथा समाज की समस्याओं का समाधान इतिहास में खोजने का प्रयास करते हैं। "वेद की ऋचाओं में तत्कालीन समाज का चित्र है। रामायण, महाभारत में तत्कालीन व्यापक से व्यापक और जटिल मानव जीवन की समस्याएँ अधिक से अधिक सुलझे हुए रूप में रखी गई हैं।"^{५६} वर्तमान समस्याओं के समाधान इतिहास में प्राप्त भी हुए हैं। आधुनिक जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु अतीत की तरफ लौटते की प्रक्रिया में उपन्यास लेखक अतीत की कमियों का भी उल्लेख करता है तथा उसकी पुनरावृत्ति के लिए सावधान किया है।

रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में बहुत सी मौलिक स्थापनाएँ की हैं। जिसे प्रबल तर्कों के माध्यम से प्रमाणित करने का भी सफल प्रयास किया है। रांगेय राघव के उपन्यास ऐतिहासिक भ्रांतियों से बचते हुए वर्तमान के लिए उचित दिशा निर्देश देते हैं। इतिहास की बहुत सी समस्याएँ आज भी उसी रूप में विद्यमान हैं। उपन्यास लेखक ने उन समस्याओं के समाधान का प्रयास किया है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज की उन बुराईयों को प्रस्तुत किया है जो आज भी प्रगतिशील व्यक्ति तथा समाज के निर्माण व विकास में बाधक हैं। उन्होंने जातिवाद की समस्या को ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। तत्कालीन समाज जातीयता की संकीर्णता में इतना अधिक आबद्ध था कि वह उससे बाहर व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की प्रगति के बारे में सोच भी नहीं सकता था। 'अँधेरे के जुगनू' का गंधाराज अपने जाति हित के लिए विदेशियों को आक्रमण के लिए आमंत्रित करता है। वह अपने जाति हित के समक्ष देश की स्वतंत्रता को भी नगण्य समझता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् यह समस्या और अधिक जटिल हो गयी। राजनीति के क्षेत्र में कुछ स्वार्थी व्यक्तियों ने अपने स्वार्थ के लिए जनता की इस भावना का पूरा-पूरा उपयोग किया तथा लोगों की जातिगत संकीर्णता का अनुचित लाभ उठाया। जिसका परिणाम आज भी समाज में देखा जा सकता है। यदि अतीत की यह बुराई समय रहते समाप्त हो गयी होती तो वर्तमान में इतने भयंकर परिणाम सामने नहीं आते। इस भावना का दुरुपयोग अतीत की भूलों का परिणाम है। रांगेय राघव ने वर्तमान के जातिगत भावना का अतीत में मूल्यांकन किया है तथा समसामयिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा है। “अनार्य पुरोहित ब्राह्मणों में तथा योद्धा क्षत्रियों में, व्यापारी वैश्यों में एवं शुद्र कर्मकरों में मिल गए थे। आज भी यह चेष्टा भारत में है। नाई, न्यायी, ठाकुर और कोली तन्तुवाय वैश्य तथा बढ़ई लोग ब्राह्मण बनते हुए दिखाई देते हैं।”^{५०}

रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में नारी की स्थिति का विवेचन किया है। उन्होंने अतीत एवं वर्तमान युग के नारी जीवन की तुलना की है। लेखक ने नारी के शोषण एवं उत्पीड़न के लिए जहाँ पुरुषों को दोषी माना वहीं स्त्रियों को स्वयं भी इसका जिम्मेदार ठहराया है। “सदा से ऐसा होता आया है। बहू आती है तब सास तंग करती है जब वही बहू सास बन जाती है तब अपने बेटे की बहू से बदला लेती है।”^{५१} यह समस्या समाज में किसी न किसी रूप में सदियों से विद्यमान रही है।

रांगेय राघव के अनुसार समाज की सबसे बड़ी बुराई धन है। धन की विषमता ने व्यक्ति तथा समाज को अभिशप्त बना रखा है ‘अमीर और गरीब में एक ही आत्मा है। जब यह आत्मा गरीबी में लोभ में पड़ती है तो और भी कष्ट भोगती है और जब अमीरी में धन का मद इस पर छा जाता है, यह बेईमानी और घमण्ड में डूब जाती है, तब कर्मफल में यही आगे बढ़कर दासत्व, रोग और दरिद्र्य भोगती है।’^{५२} समाज में शोषक प्रत्येक युग में रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन का गरीबों पर कोई असर नहीं पड़ा। वह सदैव गरीब ही रहा। समय तथा व्यवस्था में परिवर्तन हुआ परन्तु मनुष्य का व्यवहार वैसा ही रहा। जिससे असमानता की दरार कम होने के बजाय बढ़ती गयी। महायान्त्रा गाथा : अंधेरा रास्ता में रांगेय राघव ने इन स्थितियों का विस्तृत विश्लेषण किया है।

समाज में सम्पत्ति का महत्व बढ़ने के साथ ही वैश्यों की स्थिति सुदृढ़ हुयी और आज भी है। सामाजिक प्रतिष्ठा के मूल्यांकन का आधार आर्थिक होने के कारण सम्पत्ति का महत्व बढ़ा। आधुनिक समाज वर्ण व्यवस्था के स्थान पर सम्पत्ति के आधार पर वर्गों में विभाजित हुयी। सम्पत्ति के आधार पर वर्गों का वर्गीकरण निरन्तर परिवर्तन का ही परिणाम है। लेखक ने आज के सन्दर्भ में तत्कालीन समाज का मूल्यांकन

किया है “एक ओर जीवन के यथार्थ ने मुझे वर्तमान में अपनी ओर अधिक खींचा तो दूसरी ओर भारत की आत्मा उसकी यात्रा एवं संस्कृति की महान गति ने मुझे आकर्षित किया और मैंने अतीत के विभिन्न युगों के सन्दर्भ में मनुष्य को पहचानने का प्रयत्न किया।”⁴⁰

रांगेय राघव ने ‘देवकी का बेटा’ उपन्यास में कृष्ण को देवत्व से उतारकर मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। “मैंने कृष्ण के चरित्र को चमत्कारों से अलग करके देखा है। धर्ममूढ़ लोग तो शायद इसे नहीं सह सकेंगे। परन्तु महानता कृष्ण के मनुष्य रूप में प्रकट होती है.....चमत्कारों में सत्य डूब जाता है।”⁴¹ कृष्ण ने तत्कालीन समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव तथा दास प्रथा का न सिर्फ विरोध किया अपितु उसे समाप्त करने का यथा सम्भव प्रयास किया था।

प्राचीन बर्बर समाज में दास प्रथा का प्रचलन हुआ। भारतीय समाज में दासों व कर्मकरों की चर्चा पालि ग्रन्थों में मिलती है। रांगेय राघव ने दास प्रथा के सम्बद्ध में विस्तृत अध्ययन किया तथा उसे अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की। उन्होंने दास प्रथा का आरम्भ वैदिक युग से माना है। “पूर्व वैदिक काल में भारत में विभिन्न जातियाँ बसती थी। आर्येतर जातियाँ असुर, राक्षस इत्यादि में आयों के आने पहले से दास प्रथा विद्यमान थी। इनकी देखा देखी आयों में भी दास प्रथा बढ़ने लगी।”⁴² बौद्ध साहित्य में दास कई प्रकार के बताये गये हैं। स्वामी के घर उत्पन्न दास, धन से खरीदे गये दास तथा युद्ध के समय बन्दी बनाये गये दास। तत्कालीन समाज में इनका क्रय-विक्रय होता था। दासों को जान से मार डालना आम बात थी। इस तरह इनकी दशा सोचनीय थी। कालान्तर में बौद्धों तथा जैनियों के प्रभाव से मानवता का प्रसार हुआ जिससे दासों की दशा में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ।

‘मुर्दों का टीला’ में रांगेय राघव ने दास प्रथा का उल्लेख करते हुए लिखा है “मोहन जोदड़ो नगर में पहले दास-प्रथा नहीं थी, किन्तु मिश्र के सम्पर्क में आने के कारण यहाँ यह प्रथा प्रचलित हो गयी।”⁴³ इस समय दासों की स्थिति दयनीय थी। दासों का अपना कोई जीवन नहीं था। उन पर मालिकों का पूरा-पूरा अधिकार था। उनके आदेशों के अनुसार जीवन का अभिशाप भोगना दासों की नियति थी। इस उपन्यास में लेखक ने दास प्रथा का प्रबल विरोध किया है। उन्होंने शोषित उत्पीड़ित वर्ग को सहानुभूति प्रदान की है तथा क्रान्ति का संदेश दिया है। लेखक ने किसी भी विचारधारा का प्रचार-प्रसार नहीं किया है अपितु विचारधारा को परिस्थिति तथा पात्र की अनुभूति बनाकर स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है। अधिकार और द्रव्य के मद में सम्राट मणिबंध क्रूर एवं अत्याचारी हो जाता है। वह दास दासियों को खरीद कर उनके

साथ क्रूरता का व्यवहार करता है। परन्तु जब उसे यह ज्ञात होता है कि वह स्वयं एक दास भिखारी विश्वजीत का पुत्र है। तब यह सोचने पर विवश होता है “कुलीन रक्त की कुलीनता का यह दंभ कितना भीषण दुराचार है। इस लोलुप मनुष्य का जो अपने आपको न्याय देने का प्रयत्न करता है।”^{५५} धन का मद जीवन के लिए अत्यधिक घातक होता है। धन से ऊब जाने के बाद आत्मग्लानि से भरा हुआ मणिबन्ध वेणी से कहता है “मैं इस अपार धन से घृणा करने लगा हूँ। यह सोना मेरी आँखों में आग की लपटों की भाँति जलता है। इसकी भयानक प्यास को मैं कभी नहीं बुझा सका। पहले यह मेरी सम्पत्ति था, आज मैं स्वयं उसकी सम्पत्ति हो गया हूँ, वह मुझे खा जाना चाहता है।”^{५६}

‘मुर्दों का टीला’ उपन्यास में जहाँ दास-प्रथा तथा दासों पर किये जाने वाले अत्याचार शोषण का चित्रण कर लेखक ने उन्हें संवेदना प्रदान की है। वहीं दासों को वर्ग संघर्ष के लिए संगठित होता हुआ भी चित्रित किया है। रांगेय राघव ने शासकों के अत्याचारों का विरोध तथा वर्ग संघर्ष का प्रसंगानुकूल चित्रण किया है। उन्होंने विश्वासपात्र दास दासियों से वर्ग संगठन के विरोध में तथा प्रबुद्ध अनुभवी दास दासियों से अपने मत के समर्थन में किये गये तर्क वितर्क को प्रस्तुत किया है।

मणिबन्ध अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए स्वतंत्र जनतांत्रिक व्यवस्था को नष्ट करके निरंकुश राजतंत्र की स्थापना करता है। “सुव्यवस्था भय में होती है, भय के लिए राजशक्ति बनती है जो राजशक्ति भय पर आश्रित नहीं रहती, वह अपनी व्यवस्था भी सुचारु रूप से नहीं चला सकती।.....स्वार्थ के बिना महाश्रेष्ठ संसार में कोई काम नहीं चलता। आमेन-रा व्यापारियों की सम्पत्ति की रक्षा के लिए राजतंत्र को आवश्यक मानता है।”^{५७} इस तरह भय तथा शक्ति के बल पर सम्पत्तिशाली व्यक्ति आम जनता का शोषण करता था। शोषक व्यापारी वर्ग गणराज्य की पराधीनता के विरुद्ध जन सामान्य के साथ संघर्ष नहीं करता क्योंकि इस संघर्ष की पूर्ति नहीं होती है। इस उपन्यास का सामान्य जन किसी भी कीमत पर स्वतंत्र रहना चाहता है। जिसके लिए वह संघर्ष भी करता है। परन्तु अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले इन सामान्य जन को राजतंत्र के रक्षक रक्षा तथा सेवा का झूठा प्रलोभन देकर शांत रखना चाहते हैं। विश्वजीत जन साधारण को इन प्रलोभनों में न पड़ने तथा विद्रोह के लिए उनका आह्वान करता हुआ कहता है “रक्षा का दंभ करने वाले यह शासक तुम्हारी उसी भाँति कल हत्या करेंगे जैसे आज तकवे भेट करने के लिए अपने पशुओं की करते रहे।याद रखो कि पृथ्वी पर तब तक शान्ति नहीं होगी जब तक तुम राजमुकुट को खंड-खंड करके समुद्र में नहीं फेंक दोगे।”^{५८} जन विद्रोह को शोषक वर्ग शक्ति तथा धर्म के नाम पर दबाकर तथा

उन पर होने वाले अत्याचार को ईश्वर प्रदत्त बताकर उन्हें भटकाने का कार्य करते हैं। विल्लिभितूर इसी का विरोध करता हुआ, विश्व मानवता का संदेश देता है। "मेरे लिए कोई देश अपना नहीं, पराया नहीं, जहाँ संतोष से मनुष्य मुस्कुराता है वही मेरा स्वर्ग है। जहाँ असाम्य और विद्वेषों ने घृणा हंसती है, वही मेरी भावनाओं की टक्कर का क्षेत्र है.....वह प्रकृति प्रदत्त भूमि और सम्पत्ति के अधिकार को किसी की वस्तु नहीं मानता।"^{५८}

तत्कालीन समाज में नारी पुरुषों के लिए भोगविलास की वस्तु मात्र थी। युद्धों में पराजित राज्य की नारियों के साथ विजयी सैनिक अमानवीय व्यवहार करते थे तथा जो स्त्रियाँ इनसे बच निकलती थी उन्हें दूसरे पुरुष धन के बल पर भ्रष्ट करे थे। दास प्रथा भी अपनी पूर्ण प्रकाष्टा पर विद्यमान थी। वेणी और नीलूफर खरीदकर लायी गयी दासियाँ हैं जिनका मुख्य कार्य मणिबंध का मन बहलाना है। नीलूफर अपने सौन्दर्य एवं कौशल से मणिबन्ध की प्रेमिका बनकर अपने ही वर्ग के दास-दासियों पर अत्याचार करने लगती है। परन्तु मणिबंध की उपेक्षा के पश्चात् उसे यथार्थ का भान होता है तथा उसे दास-दासियों से सच्ची सहानुभूति होती है। वह दासों की स्वतंत्रता तथा समानता के लिए उच्च वर्ग के विरुद्ध विद्रोह के लिए उन्हें प्रेरित करती है। स्वामी को देवता मानकर उसके उचित अनुचित इशारों पर चलने तथा इसे ईश्वर का विधान मानने का विरोध करती है। "स्वामी के इशारों पर मरने वाला दास मनुष्य नहीं कुत्ता है, क्योंकि स्वामी और दास का एक ही स्वार्थ कभी नहीं हो सकता।"^{५९} आधुनिक समाज में दास प्रथा का स्वरूप बंधुआ मजदूर के रूप में विद्यमान है।

अभिजात्य वर्गीय विश्वजीत जिसे परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में भिखारी बना दिया है। वह गरीबी और भूख का साक्षात् अनुभव करके समझता है कि भूख और गरीबी क्या चीज होती है। मनुष्य इसमें आबद्ध होकर सब कुछ करने को विवश हो जाता है। उसे अभिजात वर्ग के खोखलेपन, पाखण्ड, कुकृत्य तथा झूठी नैतिकता का भान है। वह अभिजात वर्ग को इंगित करता हुआ कहता है "अपने को सम्य कहते हुए तुमने मनुष्य को दास बनाया है और तुम समझते हो यह दास तुम्हारी खोखली सम्यता की रक्षा करेंगे? जिस दिन दासों में मनुष्यता जाग उठेगी। उस दिन ये तुम पर एक होकर ब्रज की भाँति टूट पड़ेंगे और तुम विलास के पैशाचिक बंदी अपनी श्रृंखलाओं में फँसकर अपने आप ध्वस्त हो जाओगे।"^{६०} इसी तरह के कई अन्य पात्रों की सृष्टि कर इनके माध्यम से लेखक ने अमानवीयता तथा दासत्व का विरोध कर संघर्ष के द्वारा प्रगतिशील समाज के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

रांगेय राघव ने अपने इस उपन्यास में तत्कालीन गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली का ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टि से विश्लेषण किया है। उन्होंने निम्न वर्ग तथा उच्च वर्ग की स्वतंत्रता, द्रविड़ों के रीति-रिवाज, मूर्तिपूजा, गणतंत्रात्मक चुनाव प्रणाली, दासप्रथा, नारी की स्थिति, एकतंत्र शासन व्यवस्था की स्थापना, मलानगर के वैभव विलास तथा दैवी प्रकोप आदि का विस्तृत चित्रण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया है।

इस प्रकार लेखक ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की प्रगतिशील व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने अतीत की घटनाओं को वर्तमान के सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हुए इतिहास की प्रासंगिकता को दिखाया है तथा वर्तमान को अतीत से जोड़ने का भी सफल प्रयास किया है। उनका मुख्य उद्देश्य है कि मनुष्य अतीत की घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करे। उसके प्रकाश में वर्तमान तथा भविष्य के सद्मार्ग का चयन करे। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से अतीत के गर्भ में विलीन हो रहे प्रगतिशील ऐतिहासिक चरित्रों को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान की है।

प्राचीन काल के मानव ने जिस भावना तथा उद्देश्य के लिए धर्म का निर्माण किया था। वह कालान्तर में विद्यमान नहीं रह सका। कुछ प्रभावशाली व्यक्ति धर्म के कल्पित ईश्वर का भय दिखाकर सामान्य जन को भ्रमित करते रहे हैं। इन्होंने स्वयं को ईश्वर प्रदत्त व्यक्ति घोषित किया। पुरोहित वर्ग इन शासकों के इच्छानुसार धर्म की व्याख्या करते थे। जनता को व्यर्थ के धार्मिक कर्मकाण्डों में उलझा कर रखते थे। धर्मपरायण सामान्य जनता अपनी दयनीय स्थिति तथा शोषण को पूर्वजन्मों का फल मानकर संतुष्ट, इनकी गुलामी करती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म और राजसत्ता ने आपस में मिलकर साधारण जनता को सदैव दिग्भ्रमित किया।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में धर्म के ऐतिहासिक रूढ़ रूप को सामाजिक विकास में अवरोधक माना है। उनका विचार है कि समाज में व्यक्ति के प्रत्येक क्रियाकलाप धर्म द्वारा संचालित होते हैं। इनके उपन्यास 'काका' का नायक मथुरा में धर्म के नाम पर पंडों-पुराहितों द्वारा साधारण जनता को लूटते देखकर दुखी होता है। वह इस ठगी के प्रति लोगों को सावधान करता है। धर्म के नाम पर होने वाले व्यभिचार का लेखक ने विस्तृत चित्रण किया है। "साँझ हो गई है। मथुरा की गलियों में रसिक और धार्मिक मिलकर एक हो गये हैं। बाहर पीछे वाले मैदान में रासलीला रची जा रही थी जहाँ जवान-जवान लड़कियाँ मर्दों के साथ नाच रही थीं।"⁶⁹ मनुष्य सुख शान्ति के लिए धर्म की शरण लेता है परन्तु वहाँ व्याप्त भ्रष्टाचार

उसे चैन नहीं लेने देता। परेशानियों से त्रस्त कान्ता जब धर्म के शरण में जाने की बात सोचती है तो बिदियों वहाँ की स्थिति से अवगत कराती हुयी कहती है। “कहाँ जाओगी, यमुना में कछुए, आसमान में गिद्ध और मथुरा में पण्डे किसी को नहीं छोड़ते। यहाँ भेड़िये हैं तो बाहर शेर हैं।”^{६२}

रांगेय राघव ने धर्म को उच्चवर्ग शासक तथा कुलीनों का हिमायती माना है। “इन्द्र मांघाता काल में धार्मिक स्थिति समाज में अधिक सुदृढ़ हो गयी थी। आर्यों में महान शासकों को देवता के रूप में स्वीकार किया गया और इसकी पूजा की जाने लगी। देवराज इन्द्र, राम एवं कृष्ण की पूजा इसी रूप में प्रचलित हुयी है।”^{६३} इस तरह शासक वर्ग देवता बन गया। पुरोहित उसके उपासक होने के कारण उनसे निकट थे। साधारण जनता दोनों के द्वारा शासित तथा शोषित थी। उनका छोटे से छोटा अपराध भी क्षमा योग्य नहीं था। इसके विपरीत उच्चवर्ग एवं पुरोहित अपराध तथा त्रुटियों से सर्वथा मुक्त थे। इस तरह धर्म राजसत्ता से जुड़कर सामन्ती मनोवृत्ति प्रधान हो गया।

रांगेय राघव ने धर्म एवं आध्यात्मिकता को मानव निर्मित माना है तथा इसको मनुष्य के भय, पराजय तथा दुख का कारण बताया है। वे लिखते हैं – “भावात्मकता अथवा अभावात्मकता के प्रति जो श्रद्धा है। वह आध्यात्मिकता का बाह्य स्वरूप है.....अभावात्मकता का आत्मा से जो भारत में अखण्ड संबंध पाया जाता है उसका कारण यहाँ की जातियों का विदेशियों से पराजित होना माना जा सकता है। पराजित व्यक्ति को संसार में आनन्द की अनुभूति नहीं मिलती। वह ईर्ष्या के प्रति अग्रसर होता है। भारत में वह ईर्ष्या के स्थान पर उपेक्षा दिखाने की चेष्टा करता है। सामाजिक व्यवस्था की विषमता के कारण यहाँ भाग्यवाद का जोर रहा है और भाग्यवाद ने हमें जीवन की निराशा की ओर से आकर्षित किया है।”^{६४} आज समाज यथार्थ की तरफ उन्मुख हो वास्तविकता में जीने का प्रयास कर रहा है, परन्तु आज भी आध्यात्मिकता के प्रति लोगों की आस्था कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है। बदलते समाज के साथ गरीब जनता को आध्यात्मिकता तथा धर्म में उलझाये रखने के लिए धर्म की मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत की “धर्म का मूल सिद्धान्त मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करना है।.....हमें दूसरों के प्रति ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जो यदि हमारे प्रति किया जाय तो हमें अप्रिय लगे, यदि धर्म का सार है।”^{६५} पुरातनपंथियों ने अपने स्वार्थ के लिए मानवतावाद को आध्यात्मिकता के आवरण में लपेट कर प्रस्तुत किया। मानव जीवन का लक्ष्य इनके सहारे परम तत्त्व तक पहुँचना निर्धारित किया गया। उच्च वर्ग के लोगों ने गरीबों में एक हीन भावना भर दी जिसके कारण ये अपनी दयनीय अवस्था को पूर्व जन्म का फल मानते हैं। “पूर्व जन्म में कोई नीच कर्म

किये थे। इसलिए विधाता में दण्ड देकर मुझे चमार बनाया है। मैं अस्पृश्य हूँ। पुरातन धर्म यही कहता है कि मैं नीच और जघन्य हूँ।^{६६} यह स्थिति सदैव एक सी नहीं रही। शिक्षा और ज्ञान के प्रकाश में उन्हें अपने अधिकारों के लिए जागरूक किया। यह समय की आवश्यकता भी थी। आज का विकासशील समाज आध्यात्मिकता में आबद्ध रहकर, विज्ञान सम्मत विचारों को नकार कर प्रगति नहीं कर सकता। परिवर्तन विकास का द्योतक है। ज्ञान के विकास के साथ नए एवं पुराने का द्वन्द्व हुआ, जिससे आध्यात्मिकता अवैज्ञानिक घोषित हो चुकी है। रांगेय राघव ने आध्यात्मिकता को बंचक मानसिकता बताते हुए, यथार्थ के धरातल पर उसका मजाक उड़ाया है। आधुनिक शिक्षित व्यक्तियों के माध्यम से उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

रांगेय राघव ने धर्माश्रय एवं अंधविश्वासों का ऐतिहासिक मूल्यांकन करते हुए उसे आधुनिक युग के यथार्थ धरातल पर परख कर स्वीकार करने की सलाह दी है। “हमारे विश्वास अंधे और मान्यताएं पंगु हैं। आज की माँग है हम अपनी आस्थाओं को आह्वानों की कसौटी पर कसकर देखें। अपने मानदण्डों को एकांगी नहीं वरन् सम्यक् औचित्य की तुला पर तोलें।”^{६७}

३. राजनीतिक कथ्य

साहित्य समाज का दर्पण होता है। तत्कालीन परिस्थितियों की अवहेलना करके कोई भी साहित्य नहीं लिखा जा सकता है। विश्व की समस्त घटनाएँ साहित्य तथा साहित्यकार को प्रभावित करती हैं। राजनीति ने भी समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। राजनीति तथा साहित्य दोनों की प्रतिद्वन्द्विता पुरानी है। रांगेय राघव ने सामाजिक परिवर्तन के लिए राजनीति तथा साहित्य के समन्वय पर बल दिया है। “इस राजनीति का जब तक साहित्य से समुचित तादात्म्य नहीं होता तब तक मनुष्य की वास्तविक स्वाधीनता की कामना करना समाज में केवल दर्शक बने रहने के समान है।”^{६८} उपन्यासकार रांगेय राघव की कृतियाँ विस्तृत एवं व्यापक परिवेश को आत्मसात् किये हुए, देश की राजनीतिक गतिविधियों (प्रागैतिहासिक काल से लेकर भारतेन्दु युग तक) को अभिव्यक्त किया है।

रांगेय राघव ने राजनीति का समाज के साथ समन्वय आवश्यक माना है। उनका विचार है कि समाज को महत्व देने वाली शासन व्यवस्था सुदृढ़ नहीं होती। उसका पतन आवश्यक है। समाज तथा राजनीति का समन्वय बिन्दु साहित्यकार है। समाज के भटकाव व अन्तर्विरोध को चित्रित करने के लिए विचारधारागत प्रतिबद्धता को आवश्यक माना है। क्योंकि विचारधारा उसके सामाजिक दायित्व का अहसास कराती है। लेखक मार्क्स से प्रभावित होता हुआ भी समाज व्यवस्था का रक्षक राज्य को माना है। स्वार्थगत

राजनीति की निन्दा करते हुए वे लिखते हैं "कभी-कभी एक विचारधारा गलत होने पर भी राजनीति में इसलिए स्वीकार कर ली जाती है कि उसके पीछे पार्टी का बहुमत होता है। प्रायः पार्टी के नेताओं में एक ही शास्त्र की व्याख्या में मतभेद हो जाता है। रूसी राजनीति में ऐसे उदाहरण एक नहीं अनेक हैं, जबकि नेता कभी एक ओर देखे गये कभी दूसरी ओर, भारत में ऐसी गलतियाँ निरन्तर होती रहीं हैं। साहित्य का भी एक अंग ऐसी ही परिवर्तन की राजनीति से पीड़ित है।"⁶⁶ हिन्दी साहित्य का रीतिकाल पूर्णतः दरबारी था। दलगत राजनीति से सम्बद्धता के लिए साहित्य तथा पत्रकारिता दोनों का नाम लिया जा सकता है।

रांगेय राघव मार्क्सवादी होते हुए भी सामाजिक दायित्व के सम्बन्ध में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का पार्टी प्रतिबद्धता के नाम पर यथा तथ्य स्वीकृत को गलत मानते हुए लिखते हैं। "मार्क्सवाद एक दर्शन है और उसको व्यवहार में लाने वाली पार्टी एक साधन है। उसमें बुराई हो सकती है। वे बदली भी जा सकती हैं। इनको बदलने का काम जनता का है और जनता को पार्टी शिक्षित करती है। शिक्षक की सारी शक्ति इस शिक्षित जनता में ही है। जनता ही उसके उद्देश्य का अन्त है।"⁶⁷ साहित्यकारों को उनके कर्तव्यों से अवगत कराते हुए वे लिखते हैं "वह किसी राजनीतिक पार्टी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। वह जनता के प्रति उत्तरदायी है। यही वास्तविक बहुजन हित है तथा जीवन का यथार्थ है। जो दलीय प्रतिबन्धों में न पड़कर जनजीवन के प्रति ईमानदार होते हैं वे ही वास्तविक साहित्य का सृजन करते हैं जो अपने आदर्श को यथार्थ के साथ प्रस्तुत करता है। वही वास्तव में उच्चकोटि का कलाकार होता है।"⁶⁸

रांगेय राघव ने राजनीति एवं कला के आपसी सम्बन्धों को स्वीकार कर उसे अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। लेखक के अनुसार "राजनीति वर्गों का सम्बन्ध स्पष्ट करती है, लेकिन साहित्य में वह दस्तावेजी रूप में नहीं अपितु मनुष्य के जीवन में से प्रतिबिम्बित होकर आती है अर्थात् वह युग विशेष में व्यक्ति का सांगोपांग अध्ययन बनकर आती है। उस अवस्था में राजनीति संकुचित नहीं रहती, वह मात्र दस्तावेज नहीं होती वह उत्पादन के साधनों में पैदा हुए प्रभावों का यांत्रिक वर्णन नहीं होती, समाज में व्यक्तियों के व्यापक जीवन उनके मनोविज्ञान और प्रेरणाओं का बिंब बनाती है।"⁶⁹ राजनीतिक साहित्य तथा साहित्यकार की शक्ति से परिचित होता है वह अपनी छवि साहित्यकार के माध्यम से सामान्य जन तक पहुँचाता है। साहित्य मानव जीवन की विकास गाथा है। साहित्य में राजनीति दस्तावेज के रूप में नहीं अपितु सामाजिक विकास की प्रक्रिया में जीवन से घुल-मिल कर अभिव्यक्त होता है।

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के आगमन के पूर्व भारत में सामंती व्यवस्था थी। ये सामन्त किसान मजदूरों

का तरह-तरह से शोषण करते थे। अंग्रेजों के आगमन से यह शोषण चक्र और अधिक तीव्र हुआ। क्योंकि दोनों के मिलने से इन किसान मजदूरों का शोषण दोहरा हो गया। रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'सीधे सादा रास्ता' में उन राजनीतिक आन्दोलनों का चित्रण किया है। जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के शोषण से मुक्ति पाने के लिए चल रहा था। उस समय साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद में परस्पर गठबन्धन था। जो स्वार्थ के लिए आन्दोलनकारियों का सभी प्रकार से दमन कर रहे थे। मजदूर नेता ब्रह्मदत्त मिल के मजदूरों के उचित मजदूरी के लिए हड़ताल करवाता है। प्रशासन से मिलकर मिल मालिक इस हड़ताल को रूसी एजेंटों का बहकावा तथा अनुचित कार्यवाही घोषित करता है। ब्रह्मदत्त इसके जवाब में कहता है "मजदूरों पर विदेशी सरकार की गोलियाँ, क्योंकि सम्पत्ति के लिए बंदूक विदेशी नहीं है, क्योंकि डराकर आप चाहते हैं कि हड़ताल नहीं हो।"^{१३} प्रशासन इस चर्चित हड़ताल को तोड़ने के लिए आर्थिक प्रलोभन भी देता है, परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती है। ब्रह्मदत्त का विचार है कि मजदूरों को अपने अधिकार के लिए प्रशासन के अत्याचार के विरुद्ध हथियार उठाना चाहिए। क्योंकि गाँधीवादी विचारों का दामन पकड़े वह अपने अधिकारों के लिए विद्रोह नहीं कर पायेगा। वह हड़ताल को व्याख्यायित करता हुआ कहता है "हड़ताल शब्द एक तूफान है। इसका मतलब मुनाफे में कमी नहीं, इसका मतलब सिर्फ मिल का फाटक बन्द होना नहीं था, इसका मतलब आराम से पैर फैलाकर सोना नहीं था, इसका मतलब औरतों की घुटन थी, बच्चों की रोटी के लिए टेटें करके भूखा सो जाना था, मर्दों की सूनी आँखों में एक अँधेरे की तस्वीर थी जिसका अंत खून से सनी हुई जमीन थी और उन पर पुलिस और फौज के भारी बूटों का चलना था।"^{१४}

रांगेय राघव समाजवादी उपन्यास लेखक थे। उन्होंने उन सभी स्थितियों एवं व्यक्तियों का विरोध किया है जो मानवता के सर्वांगीण विकास में बाधक हैं। वे मानवता के विकास के लिए सभी व्यक्तियों के समान अधिकार के पक्षपाती हैं। वह अपनी कल्पना में एक ऐसा समाज चाहते हैं जो भेदभाव, ऊँचनीच आदि भावनाओं से सर्वथा मुक्त हो। जहाँ सभी के समान अधिकार हों। वे जनसामान्य को उनके परिश्रम का उचित मूल्य दिलाने के पक्षपाती हैं। उनका विचार है कि सामंत और ब्रिटिश अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए जनता का शोषण करते हैं। इस शोषण के लिए सामंत ब्रिटिश पूँजीपति संगठित होकर भारतीय जनता का दोहन करते हैं। अपने विचारों को ब्रह्मदत्त के माध्यम से व्यक्त करते हुए रांगेय राघव लिखते हैं। "अंग्रेज सरकार भी पूरी तरह उनकी है जिसके पास पूँजी है। वह गरीबों की नहीं है। तुम्हें अपना संगठन स्वयं करना होगा, उस दिन के लिए जब तुम्हारे बच्चे पढ़े लिखे होंगे। तुम साफ कपड़े पहन सकोगे। जब दुनिया में तुम्हारी इज्जत होगी। लेकिन सबसे पहले तुम्हारा पेट भरा होगा, एक नहीं दो नहीं सैकड़ों कुर्बानी

देनी होगी। किसी भी वक्त यह जालिम तुम्हारे दोस्त नहीं हो सकते। यह बड़े-बड़े डाकू और चोर हैं। क्या इनका मुनाफा है? कहाँ से आता है?.....तुम मजदूरी करते हो माल की कीमत होती है। वह माल यह मनचाहे दाम पर बेचते हैं। इधर तुम कहते हो उधर ग्राहक लूटता है। तुम्हें जानना चाहिए कि अमेरिका में लाखों मन चाय समंदर में डाल दी गई ताकि कीमत घटने न पाये। माल बाजार में ज्यादा ही न रहने देंगे और जब जरूरत होगी तब ये माल बहुत सस्ता बेचेंगे ताकि गरीब देशों का व्यापार फेल हो जाए या कुटीर उद्योग आगे न बढ़ने पाए। यही जापान कर रहा है। अमेरिका में गेहूँ को आग में लकड़ी की जगह जला देते हैं ताकि किसी और मुल्क में न भेजा जाए।¹⁷⁹⁴

औद्योगिक विकास के साथ भारत की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इस नयी अर्थव्यवस्था में भारतीय सामंतों, राजाओं एवं जमींदारों की पूँजी पर बढ़ती पकड़ को ध्यान में रखते हुए रांगेय राघव ने इन्हें देशी पूँजीपति कहा है। इन पूँजीपतियों से जनता को सावधान करते हुए वे कहते हैं "ये पूँजीपति तभी तक तुम्हारे साथ हैं जब तक अंग्रेजी पूँजी इन्हें दबाती है। यह लोग तुम्हारी शक्ति से विदेशी पूँजीवाद को भगाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। तुम ही इनकी शक्ति हो। अपनी शक्ति को पहचानो। उठो। इन्हीं राजाओं एवं जमींदारों के बल पर यह विदेशी सरकार यहाँ खड़ी है।"¹⁷⁹⁵

देशी पूँजीपति तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद दोनों से त्रस्त जनता विशेष रूप से किसान मजदूरों को दोहरे संघर्ष का सामना करना पड़ रहा था। उनके अशिक्षा एवं अज्ञान का लाभ ये उठा रहे थे। "आप मजदूरों एवं गरीबों का खाना छीनकर खा रहे हैं। आपउनकी अशिक्षा से लाभ उठाना चाहते हैं। आप अंग्रेजों से लड़ना नहीं चाहते, आप अपने राज के लिए लड़ना चाहते हैं"¹⁷⁹⁶ लेखक इस वर्ग की स्वार्थी प्रवृत्ति से मजदूरों को आगाह करते हुए लिखता है "उन्होंने इस वर्ग की स्वार्थी प्रवृत्ति से मजदूरों को आगाह करते हुए लिखता है "उन्होंने तुम्हें गरीब बनाकर इसलिए पढ़ने नहीं दिया कि पढ़ने के बाद आदमी अपने हकों को समझ लेता है।"¹⁷⁹⁷ आजादी के पहले तथा आजादी के बाद अज्ञान दलित शोषित वर्ग के परिश्रम का पूरा-पूरा लाभ पूँजीपतियों ने उठाया। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से इस वर्ग में चेतना आयी। वे इस चेतना के प्रकाश में अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए तथा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करने लगे।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में साम्राज्यवादी व्यवस्था का विरोध किया है तथा गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली को समर्थन प्रदान किया है। 'मुर्दों का टीला', 'महायात्रा गाथा', 'हुजूर', 'सीधा सादा रास्ता'

आदि उपन्यासों में इनके राजनीतिक विचार विस्तार से अभिव्यक्त हुये हैं। 'मुर्दों का टीला' का श्रेष्ठि मणिबन्ध । आमेन-रा का प्रोत्साहन पाकर गणतंत्र शासन व्यवस्था के स्थान पर राजतंत्र की स्थापना के लिए प्रेरित होता है। आमेन-रा मणिबन्ध को निरंकुश राजतंत्र के लिए उकसाता हुआ कहता है "गण के जो सदस्य आपके विरुद्ध हैं उन्हें आपको कुचल देना होगा।.....सभ्यता की रक्षा के लिए इन सबको अपना दास बनाना होगा। साधन आपके पास हैं। धन की कमी नहीं।" १७६ साम्राज्यवाद की जड़ यही धन है। मानवता को भूलकर धन के बल पर ये शोषण एवं अत्याचार करते हैं। आमेन-रा की धारणा है। "वह मनुष्य क्या जिसके इंगित पर करोड़ों मनुष्यों का जीवन घास की भाँति नहीं काँप उठता।" १७७ धन तथा हिंसा द्वारा मणिबन्ध साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था की स्थापना करता है। वह अपने सैनिकों को ललकारता हुआ कहता है "सैनिकों! प्रजा एक दही के समान है। सैनिक अपने खड़गों की राई चलाकर, पानी की जगह रक्त डालकर, मक्खन सा पवित्र साम्राज्य निकालते हैं, अपने बल से रक्षित करते हैं।" १७८ परन्तु उपन्यास के अन्त में विनाश की भयंकरता को देखकर उसका धन एवं अधिकार का नशा उतर जाता है वह आत्मग्लानि से भरकर कहता है "कहाँ है उसका साम्राज्य? कहाँ है उसकी अधिकार मादकता? वह पापी है, वह हत्यारा है.....उसने अपने पिता की हत्या की है।" १७९

रांगेय राघव ने साम्राज्यवादी निरंकुश शासन व्यवस्था की अमानवीयता तथा भयंकरता के साथ ही इसके विरुद्ध तैयार होते जनमत को भी चित्रित किया है। जैसाकि विश्वजीत कहता है "मनुष्य की समानता उसका न्याय नहीं है।स्वर्ण के मुकुट को मनुष्य के सत्य से ऊँचा स्थान दिया गया है। महानागरिक याद रखो पृथ्वी पर तब तक शान्ति नहीं होगी जब तक तुम राजमुकुट को खण्ड-खण्ड करके समुद्र में नहीं फेंक दोगे।" १८० अपने अधिकारों तथा शोषण के विरुद्ध जागृत चेतना ने इन्हें राजतंत्र से लड़ने तथा गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के समर्थन के लिए प्रेरित किया। लेखक गणतंत्र के व्यापक उदात्त उद्देश्य को स्पष्ट करता हुए लिखता है - "अपने दुख को दूसरों के दुख के सामने खो देना मेरा कर्तव्य है।" १८१

इस तरह रांगेय राघव ऐसे गणतंत्र के समर्थक थे जहाँ जाति, धर्म, अर्थ आदि के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति में कोई भेदभाव न हो। परन्तु दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता के पश्चात् में ऐसा गणतंत्र स्थापित नहीं हो पाया। स्वतंत्रता के नाम पर मात्र सत्ता का हस्तांतरण हुआ। स्वतंत्रता के बाद देश में शासन व्यवस्था का जो स्वरूप उभर कर आया, उसमें राजनीतिक जनता की समस्याओं को सुनने समझने तथा सुलझाने के बजाय शासन में अपनी सत्ता बनाये रखने के हर सम्भव प्रयास में लगे दिखाई देते। अपनी स्वायत्तता

बनाये रखने के लिए वे जनता से झूठे वायदे करते। इस सत्ता परिवर्तन से सत्ताधारी वर्ग जितना ही खुश था जनता उतनी ही त्रस्त थी। चोरबाजारी, रिश्वत, छलकपट आदि सभी बुराईयों से राजनीति भ्रष्टाचार का अण्डा बन गयी। इस स्वतंत्रता का वास्तविक चित्रण करते हुए डा० रांगेय राघव ने लिखा है “काँग्रेसियों ने बिल्कुल अंग्रेजों का जामा पहन लिया था। छुट्टियों को लूट कर छोड़ा, बड़े-बड़े गद्दियों पर बैठे पुलिसवाले देशभक्त करार दिये गये। वामपंथी जेलों में पकड़कर रख दिये गये। आज़ाद हिन्दुस्तान में लगातार दफा १४४ लगी रहने लगी और मंहगाई बढ़ती जा रही थी। रोज नेता झूठे वायदे करते थे और वे ही आई०सी०एस० जैसे ऊँचे पदों पर रख दिए गये थे।.....कई स्थानों पर ऐसे बेईमानों को चुना जाता है जिन पर चोरबाजारी के मुकदमें चल रहे होते हैं।”^{८५}

चुनाव पद्धति भी अत्यन्त दोषपूर्ण था। चुनाव के दौरान अपने पक्ष में वोट डलवाने के लिए तरह-तरह के हथकंडों का प्रयोग किया जाता। इन वोटों को प्रलोभन भी दिये जाते “वोटों को उठाकर बंद कर दिया कोठरी में। वहीं खाओ वही पीओ। लड्डू खाओ, पूरी खाओ, जो मन में आए खाओ। मिठाई जो तबीयत हो माँगों। यहाँ नहीं होगी तो शहर से मँगाकर देंगे, लेकिन बाहर नहीं जा सकते। कैद। भीतर कैदी बने रहो।.....किसी को कुछ नहीं तो लो पचास रुपये, दो सौ रुपये। तुम्हें कम्बल दे दूँगा, कोट बनवा दूँगा।”^{८६} व्यक्तिगत स्वार्थों के वशीभूत लोग वोट भी डालते हैं परिणामस्वरूप भ्रष्ट, बेईमान तथा मक्कार नेता सत्ता में आते। चुनाव के वक्त ये नेता जो बड़े-बड़े वायदे करते हैं चुनाव जीतने के पश्चात् जनता से किनारा कर लेते हैं। इस तथ्य का उद्घाटन रांगेय राघव ने माधो के द्वारा कराया है “खबर शहर तक क्या नहीं पहुँची, जो अभी तक डॉक्टर नहीं आये। वोटों के वख्त तो बड़ी गाड़ियाँ दौड़ती हैं। आजकल क्या पटरोल नहीं मिलता?”^{८७} भ्रष्ट राजनीति तथा दूषित चुनाव पद्धति का यह चित्रण आज के सन्दर्भ में भी शत-प्रतिशत विश्वसनीय है। आज भी चुनावों के दौरान ये सब नैतिक अनैतिक तरीके अपनाये जाते हैं।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में सम्पूर्ण समाज के कल्याण को ध्यान में रखकर समाजवादी विचारधारा का प्रचार प्रसार किया है। उन्होंने समस्त बुराईयों की जड़ धन को माना है। “इंसान दौलत के पीछे पागल.....है।.....जातियों का उठना गिरना उसके धन और शक्ति के बल पर चलता है। आज मैं अनुभव करता हूँ कि जब तक श्रम करने वाले को ही समाज में उत्पादन के साधनों पर अधिकार नहीं मिलेगा, इंसान और उसकी दुनिया ऐसे ही भटकती रहेगी।”^{८८} आर्थिक समानता को समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया है। वह वर्ग वैषम्य तथा शोषण को पूर्णतः मिटाना चाहता है। इसे समाप्त करने के लिए ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता बताया है जो मौजूदा समाज व्यवस्था के स्थान पर नवीन समाजवादी व्यवस्था

का निर्माण कर सकें।

लेखक ने 'सीधा सादा रास्ता' उपन्यास में परम्पराबद्ध समाज व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट किया है। नये पुराने का संघर्ष दिखाकर नवीनता को समर्थन प्रदान किया है। उन्होंने ब्रह्मदत्त के माध्यम से गाँधीवादी दर्शन का विरोध किया है ".....मनुष्य की पाशविकता का सर्वोत्तम रूप सत्ता और सम्पत्ति वालों के शोषण के साधन फौज, पुलिस और जेल हैं। बाकी कोई पाशविकता नहीं जो समाज में अडंगा बन सकती है।.....यह अपने समाज की सभ्यता है, जहाँ कुछ लोग लाखों करोड़ों को अपनी दया पर आश्रित समझते हैं। जो जनता को अपने काम का साधन समझते हैं, वे ही भेड़ बकरी कहते हैं।.....कल जब सम्पत्ति का समाजीकरण होगा तो मनुष्य लक्ष्मी-पूजन करेगा, हर मनुष्य एक दूसरे के मनुष्यत्व की पूजा करेगा।"^{८६} वह अहिंसा एवं हृदय परिवर्तन के माध्यम से नहीं अपितु सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकारों को समाप्त कर वर्ग विहीन समाज का निर्माण करना चाहते हैं। "व्यक्तिगत असम्पत्ति का मतलब नंगा रहना नहीं है, न भूखा रहना। हर किसी को भोजन, नौकरी शिक्षा की सुविधा हो, पर किसी का मिल, कारखाने, जमीन और खानों पर व्यक्तिगत अधिकार न हो। मुनाफे के लिए पैदावार न हो, जनता की जरूरत के लिए जनता की सरकार चीजें पैदा करें।"^{८७} इस तरह लेखक ने बड़े ही तर्कसंगत रूप से गाँधीवादी अहिंसा का खण्डन करते हुए समाजवादी विचारधारा का प्रबल समर्थन किया है। इनके सभी उपन्यासों में शोषण का विरोध दिखाई देता है। "यह शोषण किसी भी रूप में हो प्रगतिशील साहित्य उसका प्रत्येक युग में विरोध करता रहा है। आज ही नहीं वह कालिदास के युग में भी यही देखता है कि उस समय कौन शोषक वर्ग का हिमायती था कौन नहीं।"^{८८} वे शोषण तथा समाज में व्याप्त विषमता को दूर करके ऐसे प्रगतिशील समाज का निर्माण करना चाहते थे। जहाँ सभी को उचित काम तथा उसके अनुरूप मजदूरी प्राप्त हो। जीवन निर्वाह के साधन सभी को उपलब्ध होने चाहिए। इसका एक पूर्ण एवं मात्र साधन है कि उत्पादन के साधनों पर सबका समान अधिकार हो।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में शोषक तथा शोषित के संघर्ष को विस्तार से चित्रित किया है। ये न सिर्फ वर्ग संघर्ष के विभिन्न पहलू का उद्घाटन करते हैं अपितु उन परिस्थितियों को भी रेखांकित किया है, जो इस संघर्ष को जन्म देती हैं। "पुलिस को रिश्वत, तांगे वाले की गरीबी, झूठ से पैसा लेना, क्योंकि अशिक्षा के कारण शराब पी, किसे दोष दिया जाय। सारा समाज गल गया है पैसे के लिए इंसान की आबरू कुत्ता बन गयी है।"^{८९} इन्होंने जहाँ शोषण के विरुद्ध भयंकर विद्रोह प्रकट किया है, वही शोषितों

के प्रति हृदय से संवेदना तथा सहानुभूति प्रदान किया है। वर्ग संघर्ष की समाप्ति के प्रति अपना दृढ़विश्वास प्रकट करते हुए लिखते हैं "शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। वह मिट जायेगी। सत्य सूर्य है। वह सदैव मेघों से घिरा नहीं रहेगा। मानवता पर से यह बरसात एक दिन अवश्य दूर होगी और नये शरद में नये फूल खिलेंगे।"^{६३}

रांगेय राघव ने शोषक एवं शोषित वर्ग के अतिरिक्त मध्यवर्ग द्वारा होने वाले शोषण को भी चित्रित किया है 'हुजूर' उपन्यास के माध्यम से इस वर्ग की आर्थिक स्थिति, रूढ़ि मान्यताओं तथा सतही दृष्टिकोण पर व्यंग्य किया है। ये संस्कृति तथा राष्ट्रीय का झूठा लबादा ओढ़े वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ होने पर भी अपने को सर्वज्ञ समझकर बहसबाजी करते हैं। "भैया कभी गालिब का नाम लेकर जिगर की कविता सुनाते थे, कभी हीगेल का नाम लेकर मार्क्स की बातें करते थे।"^{६४} ये देश की विकट नाजुक स्थिति में भी अपने स्वार्थ तथा झूठी प्रतिष्ठा के लिए परिस्थितियों का अनुचित लाभ उठाने में भी पीछे नहीं रहते। ".....और अब छिपे गोदामों को उचित मोल पर दलालों के जरिए बेच देने का इंतजाम हो गया है।"^{६५} ये पुलिस एवं प्रशासन को रिश्वत देकर अपने घृणित कार्यों को निर्विघ्न करते हैं। प्रशासन में व्याप्त रिश्वतखोरी का पर्दाफाश करते हुए सत्यदेव कहता है "साली रिश्वत न लो तो आफत। बात यह है कि सब लेते हैं.....औसत मिनिस्टर लेता है, सेक्रेटरी लेते हैं, इसलिए सबको लेनी पड़ती है। मैं न लूँ तो मेरे ऊपर वालों की रसद बंद हो जाए, लिहाजा मैं मारा जाऊँ।"^{६६} लेखक इन व्यक्तियों के भीतरी एवं बाहरी जीवन के अन्तर्विरोध को दिखाकर, इनके सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक जीवन के अन्तर को व्याहारिक जीवन के अन्तर को व्यक्त किया है। ये बाहर से जितने ही सभ्य, सुशिक्षित, आदर्शप्रिय दिखाई देते हैं। भीतर से उतने ही रूढ़िवादी असभ्य एवं स्वार्थी होते हैं।

लेखक ने सामाजिक विषमता, आर्थिक संकट तथा राजनीतिक शोषण के उन्मूलन के लिए सामूहिक शक्ति का महत्व प्रतिपादित किया है, जिसका स्वार्थ भी सामूहिक हो व्यक्ति अपनी सीमित दृष्टि तथा स्वार्थ का परित्याग करके समाज एवं राष्ट्र हित के कार्यों में संलग्न हो। "वे टूटे से कच्चे घर, गन्दे धिनौने आदमी, औरत, अधकचरे, घृणित.....मध्यवर्ग की करुणा का उनके लिए एक रूढ़ अभिशाप। किन्तु फिर भी कुछ नहीं कर सकते? व्यक्तिगत रूप से यह नहीं हो सकता। तो क्या सामूहिक रूप में मनुष्य इस संसार के सामाजिक दुख को मिटा सकेगा।"

उपन्यासकार अपने उपन्यासों में यह प्रतिपादित किया है कि देश को कलंकित और बदनाम करने

तथा उसे पतन की ओर उन्मुख करने का श्रेय भ्रष्ट राजनीति तथा उनके कर्णधारों को ही है। उन्होंने स्वच्छ समाज के उचित विकास के लिए परम्परागत भ्रष्ट राजनीति का विरोध किया है। व्यवस्था को उत्कृष्ट पारदर्शी एवं प्रगतिशील बनाने के लिए सामंतवादी साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था के स्थान पर गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को आवश्यक माना है जिसमें सभी की समान हिस्सेदारी हो। वे भ्रष्टाचार के विरुद्ध सामूहिक संघर्ष करने को प्रेरित करते हैं। राजनीतिक नेताओं से कुत्सित, कलंकित स्वार्थी प्रवृत्ति को त्यागकर समाज व राष्ट्रहित में कार्य करने की मांग करते हैं।

४. धार्मिक कथ्य

धर्म का अभिप्राय है कानून। प्राचीन काल में समाज के आर्थिक राजनीतिक नियम को धर्म कहा जाता था। परन्तु कालान्तर में धर्म शब्द नये अर्थ में रूढ़ हो गया। "एक विशेष प्रकार की संस्कृति के अन्तर्गत रहकर अपने-अपने संप्रदायों को मानना।"^{१०} ये सम्प्रदाय बाह्य आक्रमणों से अपनी संस्कृति को संरक्षण प्रदान करते थे। इस सम्बन्ध में रांगेय राघव लिखते हैं "धर्म जब जन्म लेता है तब वह एक विशेष समाज में से उद्भूत होता है और अपने से पुराने समाज की विरासत को ग्रहण करता है किन्तु जब वह अपना आकार ग्रहण कर लेता है तब वह विकास नहीं कर पाता, लेकिन समाज विकास से अपने को अलग नहीं पाता, तब विकास और धर्म में द्वन्द्व हो जाता है विकास नयी परिस्थितियों में नयी-नयी व्याख्या चाहता है।"^{११} अतः समाज में विकास तथा मानव के ज्ञान विकास के साथ धर्म की स्थिति सदैव एक सी रहकर परिवर्तित हुयी है।

योरप में पुर्नजागरण के साथ मनुष्य के जीवन जगत् की प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर देखा परखा जाने लगा था। जिसके आधार पर प्रत्येक वस्तु की तर्क संगत नवीन व्याख्या भी प्रस्तुत की गयी। अतः पुर्नजागरण के समय ही यहाँ धर्म का रूढ़ अर्थ समाप्त हो गया था। परन्तु भारतीय समाज में वह आज भी पूर्ववत् बना हुआ है। जागृति के लिए यहाँ वैसी परिस्थितियाँ नहीं निर्मित हो पायी हैं जिससे धर्म के स्वरूप को समाप्त किया जा सके।

रांगेय राघव एक प्रगतिशील विचारक थे। धर्म का रूढ़ रूप सामाजिक विकास में अवरोधक है। अतः वे धर्म के स्वरूप परिवर्तन या समाप्ति को आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि धर्म को समाज से अलग कर देना आवश्यक समझते हैं। भारतीय समाज जिस तरह धर्म से प्रभावित एवं संचालित है उसमें यह सम्भव नहीं। इसका पूर्ण ज्ञान लेखक को था। अतः उन्होंने धर्म के स्वरूप परिवर्तन को दूसरे विकल्प

के रूप में प्रस्तुत किया है। “धर्म के मुख्य विचार बदल जाएं अथवा उनके विचार पद्धति से अलग हो जाए जो कि उसमें प्राचीन विरासत के रूप में आ गये हैं, जो तर्क से काम नहीं लेते और संसार की एक भ्रामक व्याख्या करते हैं। धर्म इस प्रकार यदि वैज्ञानिक युग में अपने अन्दर परिवर्तन करता चले तो ठीक है। इस परिवर्तन की स्थिति में बढ़ाने घटाने का बिल्कुल बदलने की जरूरत भी पड़ सकती है। धर्म सत्य के प्रकटीकरण के रूप में व्याख्यायित होता रहा है। ऐसे में विज्ञान द्वारा प्रदत्त सत्य से, उसे तादात्म्य स्थापित करना होगा। यह आवश्यक है कि विज्ञान की खोजों के साथ-साथ जो नये तथ्य प्रकट हो उसे धर्म में लिया जाए और परिवर्तन के लिए द्वार खोल दिये जाएं। इस प्रकार धर्म के विचारों में स्पष्टता आयेगी।”^{१००}

मार्क्स ने धर्म की व्याख्या की है तथा मानवता को मानव का सबसे बड़ा धर्म बताया है वे लिखते हैं “धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है, जो कि मनुष्य के इर्द-गिर्द तब तक घूमता रहता है जब तक कि मनुष्य अपने (मनुष्य के) गिर्द नहीं घूमता। इसलिए नए जगत की सृष्टि करने वाले इतिहास का काम है कि परलोक के सत्य के लुप्त हो जाने पर इस जमीन सत्य स्थापित करें। इस तरह करने से स्वर्ग का खण्डन पृथ्वी के खण्डन के रूप में, धर्म का खण्डन कानून के खण्डन के रूप में, देववाद का खण्डन राजनीति के खण्डन के रूप में बदल जाता है।.....धर्म के खण्डन का अंतिम पाठ यह होगा कि मानव जाति के लिए मानव सर्वश्रेष्ठ है। अतएव उन सभी परिस्थितियों को खत्म कर दिया जाय जिन्होंने कि मानव को एक पतित दास उपेक्षित घृणास्पद प्राणी बना दिया है।”^{१०१}

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में धर्म के रूढ़ स्वरूप तथा अप्रगतिशील तत्वों का विरोध किया है जो स्वस्थ समाज के विकास में बाधक है। वैदिक काल में धर्म सम्पन्न व्यक्तियों तथा सत्ताधारियों के लिए था। ब्राह्मण सत्ताधारी के सहयोगी थे। राजनीति तथा धर्म दोनों पर इनका वर्चस्व था। ये धार्मिक अनुष्ठान, पूजा तथा यज्ञ की जटिल प्रक्रिया को सम्पन्न कराते तथा दान के रूप में अत्यधिक धन सम्पत्ति प्राप्त करते थे। ये धन वैश्यों द्वारा राजकोष में जमा कराये जाते थे। साधारण का इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता था। कालान्तर में धर्म की आड़ में शूद्रों तथा दासों का व्यवस्थित शोषण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस शोषण को पुनर्जन्म, कर्मफल आदि विविध नामों से धर्म संगत ठहराया गया। शनै-शनै समाज में ऐसी स्थिति पैदा हो गयी जब शासन सत्ता का समस्त कार्य धार्मिक संस्था धर्मार्थियों के हाथों नियंत्रित तथा संचालित होने लगा। इस तरह इन्होंने काफी धन सम्पत्ति के साथ कुछ प्रशासनिक अधिकार भी प्राप्त कर लिये थे। “किसानों के आर्थिक अधिकार तो कम हो ही रहे थे, राजा के प्रशासनिक अधिकार भी सीमित हो गये थे। अपराध

1 के लिए दण्ड निर्धारित करने का अधिकार भी मठों के हाथों में आ गया था।¹¹⁹² किसानों की दयनीय आर्थिक स्थिति तथा धर्म के नाम पर होने वाले शोषण को चित्रित करते हुए रांगेय राघव लिखते हैं "उस युग में विलासिता की धारा में ब्राह्मण भी थे। दरबार में अखण्ड विलास होता था। परिणामतः खालसा भूमि की आय घट गयी खर्चा बढ़ गया और इसका बोझ टूटा किसानों पर।¹¹⁹³ इस स्थिति के प्रति जनता जागृत हुयी। धार्मिक उपालमों से ठगी जाती जनता का रोष धीरे-धीरे विद्रोह में बदल गया। 'काका' तथा 'आँधी की नींव' के अनेक प्रसंग में इस विद्रोह की स्थिति को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

भारतीय समाज में अपने अधिकारों एवं आर्थिक असमानता के विरोध के परिणाम स्वरूप धर्म प्रारम्भ हुआ जो आज भी विद्यमान है। प्रारम्भ में जैन एवं बौद्ध धर्म ग्रहण करके छोटी जातियों ने हिन्दू धर्म के प्रति अपना विरोध प्रकट किया था। यही नहीं कुछ शासकों ने भी जनता से सद्भावना प्राप्त करने तथा नयी आध्यात्मिक जिज्ञासावश धर्म परिवर्तन किया था। मध्यकाल में इस्लाम धर्म के उदय के साथ निम्नवर्ग के लोगों द्वारा धर्म परिवर्तन हुआ उसका मुख्य कारण सामाजिक एवं आर्थिक समानता का आग्रह था। जबकि उच्च वर्ग व्यक्तिगत स्वार्थ तथा प्रशासन से सम्पर्क स्थापित करने के लिए ऐसा कर रहा था। आधुनिक काल में यह स्थिति न सिर्फ यथावत् बनी रही अपितु अधिक उग्र रूप में प्रकट हुयी। विदेशी पादरी अंग्रेजी प्रशासन से मिलकर भारत में अपने धर्म का प्रचार किया। आर्थिक तथा सामाजिक समानता के नाम पर धन वैभव का प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन कराया। स्थिति के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए रांगेय राघव लिखते हैं "अंग्रेज पादरियों ने धर्म को ओट में भारत में राज करने की दृढ़ दीवार बनायी है। वह यह जानते हैं कि पद दलितों को कैसे अधकचरा अण्डा बनाया जा सकता है। लोगों का मत दल फरेब से बदलवाना ही श्रद्धा का माप है। ये पादरी धार्मिक नहीं सामाजिक और राजनीतिक मत परिवर्तन करा रहे हैं।¹¹⁹⁴ धर्म का विकास सामन्तवाद एवं साम्राज्यवाद की छत्रछाया में हुआ।

धर्म की सभी परिभाषाएँ प्रायः उन लोगों के लिए निर्धारित की गयी जो अभावों में जीते हैं तथा उच्च वर्ग द्वारा शोषित तथा उत्पीडित है। इस स्थिति के सम्बन्ध में लेनिन ने लिखा है। "जो लोग जीवन भर मशक्कत करते और अभावों में जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें धर्म इस लोक में विनम्र होने और धैर्य रखने की तथा परलोक में सुख की आशा से सांत्वना प्राप्त करने की शिक्षा देता है लेकिन जो लोग दूसरों के श्रम पर जीवित रहते हैं उन्हें धर्म इस जीवन में दयालुता का व्यवहार करने की शिक्षा देता है इस प्रकार उन्हें शोषण के रूप में अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करने का सस्ता नुस्खा बता देता है.....

धर्म एक प्रकार की आत्मिक शराब है जिसमें पूँजी के गुलाम अपनी मानव प्रतिभा को अपने थोड़े बहुत मानवोचित जीवन की माँग को डूबो देता है।^{१०५} 'मुर्दों का टीला' उपन्यास का मणिबन्ध इसी भावना से प्रेरित हो धन को संसार की सबसे बड़ी वस्तु तथा स्वयं को देवता का प्रतिनिधि मानता है। रांगेय राघव इस विषमता के प्रति अपने विचार धन कुमार के माध्यम से व्यक्त किया है। "दीन और धनी सुवर्ण का महत्व न दे मनुष्य को दे तो यह पाप कहाँ रहे।"^{१०६}

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में हिन्दू-मुस्लिम, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद आदि से ग्रस्त हो राजनीतिक एवं सामाजिक आधार पर विभाजित हो गया। समाज में व्याप्त इस संकीर्णता ने विकास के समस्त मार्ग को अवरुद्ध किया "एक आधुनिक राष्ट्र के निर्माण में नागरिकों की समानता और जातीयता व राष्ट्र के प्रति निष्ठा तथा शेष तमाम निष्ठाओं के राष्ट्र के अधीन होने पर आधारित राष्ट्र के निर्माण में सांप्रदायिकता, धार्मिक अलगाव, जातिवाद आदि बाधक है।"^{१०७} स्पष्ट है कि कोई भी समाज इन समस्याओं से ग्रस्त हो अपना स्वस्थ सर्वांगीण विकास कदापि नहीं कर सकता। समाज को इन समस्याओं एवं मानसिकता से मुक्त कराकर स्वस्थ समाज के निर्माण के सम्बन्ध-लेखक का विचार है "हमें ऐसा समाज चाहिए जहाँ वे लोलुप न हों जो रूढ़ियों में अहंकार लिए बैठे रहें।"^{१०८} लेखक ने धार्मिक रूढ़िवादिता, संकीर्णता आदि को समाज विकास का अवरोधक चित्रित करके दृढ़तापूर्वक इसका खण्डन कर प्रगतिशील समाज के निर्माण का मार्ग अपने उपन्यासों में प्रशस्त किया है।

साहित्यकार समाज में धर्म की उपयोगिता विषय पर बहस करते रहे हैं। इस सन्दर्भ में डा० रांगेय राघव का स्पष्ट मत है कि धर्म समाज के लिए कभी भी उपयोगी नहीं रहा है। इस विचार को अपने उपन्यासों में यथास्थान अभिव्यक्त किया है। 'छोटी सी बात' उपन्यास में तारा के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है "धर्म यदि अंधविश्वास और मोक्ष यदि रूढ़ कल्पना ही नहीं है तो सदा ये दोनों काम और अर्थ के दास क्यों रहे हैं। अर्थ और काम ने ही मोक्ष और धर्म पर शासन किया है।.....समाज की व्यवस्था अर्थ के आधार पर बनती है धर्म और मोक्ष मनुष्य की कल्पनाएं हैं।" अपने उपन्यासों में रांगेय राघव ने रूढ़ियों एवं धर्माडम्बरों से ग्रसित समाज को वास्तविक यथार्थ से साक्षात्कार कराकर उसे धार्मिक आडम्बरों से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है।

संदर्भ

१. आलोचना, जुलाई १९६५
२. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास – डा० रांगेय राघव, पृ० ३६
३. भारतीय संत परम्परा और समाज – डा० रांगेय राघव – भूमिका
४. काव्य कथा और शास्त्र – डा० रांगेय राघव, पृ० ३६
५. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड – डा० रांगेय राघव, पृ० ४
६. वही – पृ० ३२८
७. वही पृ० ४६
८. साहित्य संदेश, रांगेय राघव स्मृति अंक, सन् १९६३, पृ० २६५
९. साहित्य संदेश, आधुनिक उपन्यास अंक १९५६, पृ० ८७ (उपन्यास कैसे लिखे गये – डा० रांगेय राघव)
१०. यशोधरा जीत गई – रांगेय राघव, पृ० ३०
११. धूनी का धुआं – रांगेय राघव, पृ० ३४
१२. धूनी का धुआं – डा० रांगेय राघव, पृ० ७८
१३. लोई का ताना – डा० रांगेय राघव, पृ० ७१
१४. सोई का ताना – डा० रांगेय राघव, पृ० ३
१५. वही, पृ० ३
१६. अंधेरे के जुगनू – रांगेय राघव, पृ० १४२
१७. पतक्षर – रांगेय राघव, पृ० १७७
१८. लखमा की आँखें – डा० रांगेय राघव, पृ० १७७
१९. लोई का ताना – डा० रांगेय राघव, पृ० ६०
२०. घरौंदे – डा० रांगेय राघव, पृ० २
२१. घरौंदे – डा० रांगेय राघव, पृ० ७८
२२. वही – पृ० ४७
२३. सीधा सादा रास्ता – डा० रांगेय राघव, पृ० २८६
२४. महायात्रा गाथा : अंधेरा रास्ता – डा० रांगेय राघव, पृ० २३६
२५. मुर्दों का टीला – डा० रांगेय राघव, पृ० १०८
२६. वही, पृ० ३५१
२७. पक्षी और आकाश – रांगेय राघव, पृ० २१५
२८. यशोधरा जीत गई – रांगेय राघव, पृ० ३५

२६. वही, पृ० १२
३०. लोई का ताना – डा० रांगेय राघव, पृ० ८६
३१. राह न रूकी – डा० रांगेय राघव, पृ० ६५
३२. घरौंदे – डा० रांगेय राघव, पृ० १७०
३३. वही, पृ० २६८
३४. मुर्दों का टीला – रांगेय राघव, पृ० ३५१
३५. घरौंदे – रांगेय राघव, पृ० १६८
३६. यशोधरा जीत गई – रांगेय राघव, पृ० ६३
३७. छोटी सी बात – रांगेय राघव, पृ० ५५
३८. पराया – डा० रांगेय राघव, पृ० ६१
३९. पतक्षर – डा० रांगेय राघव, पृ० २६
४०. वही, पृ० २६
४१. घरौंदे – डा० रांगेय राघव, पृ० १६८
४२. वही, पृ० ३४५
४३. पराया – डा० रांगेय राघव – भूमिका
४४. मुर्दों का टीला – डा० रांगेय राघव – भूमिका
४५. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास : प्रतिमान एवं विकासेतिहास – डा० सत्यपाल चुघ, पृ० ३६
४६. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – त्रिभुवन सिंह, पृ० ३६
४७. अंधेरे के जुगनू – डा० रांगेय राघव – भूमिका
४८. राह न रूकी – डा० रांगेय राघव, पृ० १५
४९. पक्षी और आकाश – डा० रांगेय राघव, पृ० १२
५०. आधुनिक उपन्यास अंक साहित्य संदेश पत्रिका, १९५६, पृ० ८७
५१. देवकी का बेटा – डा० रांगेय राघव – भूमिका
५२. महायात्रा : अंधेरा रास्ता – डा० रांगेय राघव, पृ० ४००
५३. मुर्दों का टीला – डा० रांगेय राघव, पृ० २८
५४. वही, पृ० ४२७
५५. वही, पृ० १६६
५६. वही, पृ० २४२
५७. वही, पृ० ३११
५८. वही, पृ० ३५०
५९. वही, पृ० १००
६०. वही, पृ० २६०
६१. काका – डा० रांगेय राघव, पृ० २६

६२. वही, पृ० १२५
६३. महायात्रा गाथा : अंधेरा रास्ता — डा० रांगेय राघव, पृ० ३५३
६४. काव्य यथार्थ और प्रगति — डा० रांगेय राघव, पृ० १२१
६५. धर्म और समाज — डा० राधाकृष्णन, पृ० १२४
६६. महायात्रा गाथा : रैन और चंदा — डा० रांगेय राघव, पृ० ५६३
६७. छोटी सी बात — डा० रांगेय राघव, पृ० ७४
६८. समीक्षा और आदर्श — डा० रांगेय राघव, पृ० ४०
६९. वही, पृ० ४२
७०. वही, पृ० ४६
७१. वही, पृ० ४७
७२. वही, पृ० ११६
७३. सीधा सादा रास्ता — डा० रांगेय राघव, पृ० २७४
७४. वही, पृ० २८६
७५. वही, पृ० २८६
७६. वही, पृ० २७६
७७. वही, पृ० २८२
७८. वही, पृ० २८८
७९. मुर्दों का टीला — डा० रांगेय राघव, पृ० ७६
८०. वही, पृ० ८०
८१. वही, पृ० ३६६
८२. वही, पृ० ४३६
८३. वही, पृ० ४७६
८४. वही, पृ० ५३६
८५. हुजूर — डा० रांगेय राघव, पृ० ११६—११७
८६. आखिरी आवाज — डा० रांगेय राघव, पृ० ३७६
८७. आग की प्यास — डा० रांगेय राघव, पृ० ७८
८८. हुजूर — डा० रांगेय राघव, पृ० ११७—११८
८९. सीधा सादा रास्ता — डा० रांगेय राघव, पृ० २७
९०. सीधा सादा रास्ता — डा० रांगेय राघव, पृ० २६२
९१. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड — डा० रांगेय राघव, पृ० २
९२. हुजूर — डा० रांगेय राघव, पृ० ६६—६७
९३. कब तक पुकारूँ — डा० रांगेय राघव, पृ० ६२८

६४. हुजूर — डा० रांगेय राघव, पृ० ६४
६५. विषाद मठ — डा० रांगेय राघव, पृ० १०६
६६. दायरे — डा० रांगेय राघव, पृ० ७०
६७. घरौंदे — डा० रांगेय राघव, पृ० १५४-५५
६८. समीक्षा और आदर्श — डा० रांगेय राघव, पृ० ४
६९. वही, पृ० ४
१००. वही, पृ० १५-१६
१०१. वैज्ञानिक भौतिकवाद — राहुल सांकृत्यायन, पृ० ५०-५१
१०२. भारतीय सामन्तवाद — डा० रामशरण शर्मा, पृ० ८२
१०३. मेरी भव बाधा हरो — डा० रांगेय राघव, पृ० १०६
१०४. घरौंदे — डा० रांगेय राघव, पृ० १८३
१०५. धर्म और लेनिन — इंडिया पब्लिशर्स, पृ० ६
१०६. पानी और आकाश — डा० रांगेय राघव, पृ० २४१
१०७. उत्तरगाथा साम्प्रदायिकता विरोधी अंक १०-११ (जनवरी-अप्रैल १९८२), पृ० १६६
१०८. रत्ना की बात — डा० रांगेय राघव, पृ० १४६
१०९. छोटी सी बात — डा० रांगेय राघव, पृ० ८३

पंचम अध्याय

रांगेय राघव के उपन्यासों का शिल्प विधान

१. शिल्प एवं शिल्प विधान का अर्थ
२. उपन्यास और शिल्प
३. प्रगतिवादी दृष्टि के अनुरूप उपन्यासों का शिल्प विधान
४. रांगेय राघव के उपन्यासों का शिल्प-विधान (सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक तथा औपन्यासिक जीविनयों)

रांगेय राघव के उपन्यासों का शिल्प विधान

हिन्दी साहित्य में रांगेय राघव से पूर्व हिन्दी उपन्यास की एक समृद्ध परम्परा विद्यमान थी। शिल्प विधान की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रारम्भिक अवस्था से ही भिन्न-भिन्न प्रयोग भी हुए। प्रारम्भ में नीति-विषयक, कल्पना प्रधान, जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों की प्रधानता रही। इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य के लिए उपयुक्त भूमि तैयार करने के साथ ही साथ एक विशाल पाठक समूह भी तैयार किया।

प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। उपन्यास को तिलस्मी ऐय्यारी कल्पना आदि से निकाल कर यथार्थ की कठोर भूमि पर लाने का श्रेय उन्हीं को है। यह परिवर्तन कथ्य के स्तर पर ही नहीं अपितु शिल्प के स्तर पर भी हुआ। उन्होंने उपन्यास को जीवन तथा जगत् से जोड़ने का प्रयास किया। जीवन तथा जगत् के परिवर्तन एवं विकास के साथ उपन्यास के शिल्प का भी कलात्मक विकास होने लगा। रांगेय राघव के उपन्यासों के शिल्प विधान का अध्ययन करने से पूर्व शिल्प तथा शिल्प विधान का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है।

१. शिल्प एवं शिल्प विधान का अर्थ

‘शिल्प’ शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। ‘उणादिकोश’ के अनुसार ‘शिल्प’ शब्द शील समाधौ धातु से ‘य’ प्रत्यय और शील के द्वस्व लगाकर बनता है। आप्टे के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति शिल् + पक् है। अमरकोश में शिल्प को ‘कर्मकलादिकम्’ कहा गया है।^१

संस्कृत साहित्य में शिल्प शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। शिल्प शब्द का प्रयोग विधाता की रचना को ‘देव शिल्प’, शिल्प के अन्तर्गत चौसठ कलाओं का, शिल्प का प्रयोग कला कौशल के अर्थ में तथा नृत्य एवं गीत के साथ शिल्प शब्द का प्रयोग मिलता है। इस तरह हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में शिल्प शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है। प्रथम कौशलपूर्ण रचना के लिए। द्वितीय – नृत्य मृदंग वादन मूर्ति निर्माण आदि विभिन्न कलाओं के अर्थों में।

अंग्रेजी भाषा में शिल्प के पर्याय के रूप में एक्सप्रेशन, टेक्नीक तथा क्राफ्ट शब्दों का प्रचलन

है। परन्तु अनेक वाद-विवाद के पश्चात् यह स्पष्ट हो गया है कि एक्सप्रेसन शब्द अभिव्यंजना एवं अभिव्यक्ति का पर्याय है। वही टेकनीक शब्द का अर्थ है शिल्प प्रविधि, शिल्प तंत्र, शिल्प के नियम तथा सिद्धान्त। अतः अंग्रेजी का 'क्राफ्ट' शब्द ही वास्तव में शिल्प का पर्याय है। हिन्दी साहित्य में सामान्यतः 'रूप' और 'शिल्प' का प्रयोग समान अर्थ में किया जाता है। परन्तु दोनों में अन्तर है। क्योंकि अंग्रेजी में 'रूप' के लिए 'फार्म' तथा शिल्प के लिए 'क्राफ्ट' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

शिल्प विधान

हिन्दी साहित्य के आलोचक तथा लेखक प्रायः शिल्प शब्द के साथ विधि अथवा विधान शब्द का प्रयोग करते हैं, परन्तु उसके अर्थ में भेद नहीं करते हैं। वास्तविकता यह है कि दोनों के अर्थ में पर्याप्त अन्तर है। 'विधि' का अर्थ है नियम, सिद्धान्त, कानून आदि तथा 'विधान' का अर्थ है, संयोजन, अन्विति, प्रबन्ध, व्यवस्था आदि। इस तरह 'विधि' और 'विधान' शब्दों के अन्तर होने के कारण शिल्पविधि तथा शिल्प विधान शब्दों में भी अन्तर है। शिल्प-विधि निर्माण या रचना के नियम अथवा सिद्धान्त का वाचक है। जिसे टेकनीक के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है।

शिल्प-विधान शब्द कौशलपूर्ण रचना प्रबन्ध अथवा व्यवस्था के अर्थ का द्योतक है। किसी भी रचना का आरम्भ से लेकर अन्त तक कौशलपूर्ण संयोजन व्यवस्था अथवा प्रबन्ध शिल्प विधान कहलाता है। यह शिल्प विधान शब्द शिल्प विधि से व्यापक है। शिल्प विधान में लेखक की सृजनात्मकता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इससे ही कौशलपूर्ण संग्रथन एवं संयोजना सम्भव हो पाता है। शिल्प-विधान के अन्तर्गत हम उपन्यास की व्यवस्था अथवा प्रबन्ध का अध्ययन करते हैं। इस व्यवस्था के करने में सृजन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः सृजन प्रक्रिया शिल्प विधान का एक अंग है। परन्तु यह उसी समय सम्भव है जब हमें उपन्यास की सृजन प्रक्रिया का ज्ञान हो। इस सृजन प्रक्रिया के ज्ञान अथवा अध्ययन से इस बात का निर्णय आसानी से किया जा सकता है कि उपन्यासकार ने अपने उपन्यास के लिए अमुक शिल्प विधान ही क्यों किया। लेखकों द्वारा अपने सृजन प्रक्रिया का उल्लेख करने की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है। परन्तु सृजन प्रक्रिया के अध्ययन से अमुक शिल्प विधान में ऐसा ही क्यों का उत्तर मिल सकता है। उपन्यास की व्यवस्था अथवा प्रबन्ध के अध्ययन का सीधा सम्बन्ध शिल्प विधान से है।

२. उपन्यास और शिल्प

साहित्य के अन्य रूपों की तुलना में उपन्यास साहित्य अपेक्षाकृत नवीन रूप है। यह आधुनिक

रूप जो महाकाव्य, नाटक, त्रासदी आदि के चरमोत्कर्ष के उपरान्त साहित्य जगत में अवतरित हुआ। बाद में अवतरित होकर भी अपनी विशिष्टता तथा विशेषता के कारण निरन्तर विकासशील रहा है। इसकी विशिष्ट प्रकृति के कारण सभी आलोचक या लेखक इसे परिभाषित करते रहे हैं, परन्तु इसके किसी सर्वमान्य स्वरूप को निश्चित नहीं कर पाये। इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि उपन्यास का कभी एक रूप स्थिर नहीं रहा। इसका स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। यह महाकाव्य, नाटक आदि के समान विषय सामग्री एवं शिल्प के नियमों में रूढ़िबद्ध नहीं रहा। यही कारण है कि आज स्थिति यह है कि जीवन जितना विस्तृत एवं व्यापक है। जीवन की प्रत्येक अवस्था, स्थिति, चिन्तन, दर्शन, भाव, बुद्धि आदि का उपन्यास में चित्रण किया जा सकता है। अब तक के उपन्यास साहित्य का इतिहास यही दर्शाता है कि उपन्यास ने समय-समय पर यत्र-तत्र-सर्वत्र से उपयोगी उपकरणों का समावेश करता रहा है। उपन्यास साहित्य की अन्य विधाओं के शिल्प से अनेक तत्वों को ग्रहण करता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँच सका है।

उपन्यासकार विषय के साथ-साथ अपनी निजी शिल्प की भी रचना करता है। यद्यपि शिल्प के महत्व को लेकर विद्वानों में मत वैभिन्न है। कोई तो उसे विषय वस्तु का अविभाज्य रूप मानता है तो उससे भिन्न। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उपन्यास की संवेदना का शिल्प से घनिष्ठ और अमेद सम्बन्ध है। परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए इसे अलग किया जाता है। यहाँ शिल्प से हमारा तात्पर्य रचना प्रक्रिया के तत्वों से है। यह उपन्यास की संवेदना को कथा, पात्र, वातावरण, उद्देश्य आदि के सम्मिश्रण से एक निश्चित आयाम प्रदान करता है।

उपन्यास मानव जीवन की समग्र अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार कुछ निश्चित व्यवस्था का आश्रय लेता है। इसी को आधार बनाकर मानव जीवन को सजीव यथार्थ चित्रण प्रदान करता है। जिसे शिल्प विधान के नाम से जाना जाता है। उपन्यास कला के अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात् इसके अन्तर्गत पाँच तत्व प्राप्त होते हैं – कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा एवं उद्देश्य। इन तत्वों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों ने छठे तत्व शैली का भी उल्लेख किया है। ये पाँचों तत्व एक दूसरे से अभिन्न नहीं हैं। अपितु ये एक दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण करते रहते हैं। यह कहना अधिक संगत होगा कि पाँचों तत्व एक वस्तु को देखने के भिन्न पाँच दृष्टिकोण हैं। क्योंकि इनको पृथक् करना उपन्यास की सजीवता को नष्ट करना है। मानव जीवन के समस्त पहलुओं को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यासकार विविध विधियों के प्रयोग के लिए उद्धत होता है। उदाहरणार्थ सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि के पश्चात् मानव मन को अभिव्यक्त करने के लिए नया प्रयोग किया। इस

प्रकार उपन्यास तथा उपन्यास लेखक निरन्तर नये क्षेत्र तथा सामग्री के साथ नये-नये शिल्प विधान को विकसित करता हुआ निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है।

३. प्रगतिवादी दृष्टि के अनुरूप उपन्यासों का शिल्प विधान

प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास साहित्य अपने परिवर्तित रूप में जन साधारण से जुड़ा तथा साधारण जन-जीवन के एलबम के रूप में सामने आया। यह नये परिवर्तित युग को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ। "उपन्यास नये युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रूप है। साहित्य के रूपों के उद्भव के सम्बन्ध में यह एक अखण्ड सत्य है कि वे व्यक्ति और युग के शाश्वत और सामयिक रसायन का परिणाम होते हैं।"^२ प्रगतिवाद से प्रभावित उपन्यासकार स्वच्छन्द नहीं रहता है। समाजवादी यथार्थवादी शैली को ग्रहण कर उपन्यास लेखक समाज के यथार्थ की अवहेलना नहीं कर सकता। यथार्थ की भी अपनी सीमा होती है। प्रगतिवादी उपन्यास लेखक उपन्यास को यथार्थ से अलग नहीं कर सकते। यथार्थ से निकटता ही उसकी कृति की सार्थकता है। इस तरह प्रगतिवादी उपन्यासों के वर्ण्य विषय का चित्रण यथार्थ की कठोर भूमि पर होता है। यथार्थ के आग्रह के कारण इसमें कुछ विशिष्ट औपन्यासिक तत्वों का समावेश होता है। इस विशिष्टता को उपन्यास के सभी तत्वों कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण उद्देश्य आदि पर स्पष्टतः देखा जा सकता है।

कथावस्तु

यह उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्व है। इसी पर उपन्यास का भव्य भवन निर्मित होता है। सभी विद्वानों ने एक मत से यह स्वीकार किया है कि कथावस्तु के अभाव में उपन्यास की रचना सम्भव नहीं है। इस तरह कथावस्तु न सिर्फ उपन्यास का मूल तत्व है अपितु उपन्यास रचना का आधार भी है। समाजवादी उपन्यासों की कथावस्तु की सबसे बड़ी विशेषता उसका उद्देश्य होता है। यही कारण है कि इन उपन्यासों में कथावस्तु का चयन, आरम्भ, विकास तथा अन्त उस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर निश्चित तथा संचालित होता है। "उपन्यासों की समाहरणीयता का आधार बहुत कुछ उद्देश्य होता है। यदि वस्तु का मूल समाहार तत्व होता है।"^३ इन उपन्यासों में समस्याओं की अपेक्षा सिद्धान्त विशेष का आग्रह अधिक होता है। उपन्यास लेखक पात्रों के माध्यम से यथास्थान उसको प्रस्तुत तथा व्याख्यायित करता है।

प्रगतिवाद एक राजनीतिक दर्शन है। इसी कारण समाजवादी उपन्यासों में राजनीति के प्रति एक विशेष आग्रह दिखाई देता है। इसमें रंजनतत्व तथा नाटकीयता को पर्याप्त स्थान मिलता है क्योंकि रंजन

तथा नाटकीयता उपन्यासों के उद्देश्य को अधिक सहायता प्रदान करते हैं। प्रायः उपन्यासों में एक से अधिक अधिकारिक कथावस्तु होती है जो मुख्य कथा से सम्बद्ध होकर उसे दृढ़ता प्रदान करती है।

चरित्र चित्रण

मानव जीवन की यथार्थ समस्या तथा समाज के यथार्थ रूप को अभिव्यक्त करने के कारण प्रगतिवादी उपन्यास लेखक ऐसे पात्रों की सृष्टि करता है। जो अपने चरित्र के माध्यम से इन यथार्थ समस्याओं तथा स्थितियों से सर्वसाधारण को अवगत करा सके। लेखक को उपन्यास के चरित्र चित्रण में अत्यधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है। उसे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि अपने विचारों तथा सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार के लिए जिन पात्रों को माध्यम बनाया गया है कहीं वह अस्वाभाविक तथा कृत्रिम रूप न धारण कर ले। इसके पात्रों के जीवन तथा स्थिति के अनुरूप ही अपने सिद्धान्तों को उसके अपने सिद्धान्त तथा आदर्श बनाकर प्रस्तुत करना चाहिए।

चित्र फलक की दृष्टि से व्यापक होने के कारण इन उपन्यासों में पात्रों की संख्या भी अधिक होती है। कलात्मक दृष्टि से पात्रों की अधिकता को उपन्यास का दोष माना जाता है। क्योंकि अधिकता के कारण इनका चारित्रिक विकास नहीं हो पाता, परन्तु प्रगतिवादी उपन्यासों में पात्रों की अधिकता एक विशेषता के रूप में सामने आती है। पात्रों को चरित्र विकास का पर्याप्त अवसर भी मिलता है। ".....पूरे उपन्यास में लगभग दो सौ पात्र हैं और उपन्यास का सजीव तथा विश्वसनीय बनाने में उन सभी का महत्वपूर्ण योग है और यही लेखक है कि इन दो सौ पात्रों के व्यक्तित्व और हैसियत को भुला नहीं पाता। कथानक के इस विशाल रंग मंच पर वे समयानुसार आते हैं और अपने अभिनय समाप्त करके फिर ओट में हो जाते हैं। चरित्र चित्रण का कार्य तो असाधारण है ही इतने पात्रों का नाम याद रखना और उनके कार्य कलापों के क्रम को सन्तुलित अभिव्यक्ति देना तो कठिन है। इन सबको अपनी आँखों के सामने रखते हुए चरित्रों की इतनी विभिन्नता प्रस्तुत कर उपन्यासकार ने अपने कौशल का अच्छा परिचय दिया है।" चरित्रों की अधिकता के बावजूद यदि उपन्यास लेखक कुशल है तो "चुनाव क्षेत्र की व्यापकता, पात्रों की विविधता और अनुभूति की गहनता की मणिमाला पिरोकर उपन्यास के कलात्मक सौष्ठव को बनाये रख सकता है।" इस तरह चरित्र चित्रण सामर्थ्य संख्या पर आश्रित न होकर विषय क्षेत्र, सहज विकास तथा स्वाभाविक गति पर निर्भर करता है।

कथोपकथन

यह उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तत्व है। उपन्यास चाहे जैसा भी कथोपकथन की श्रेष्ठता उसकी श्रेष्ठता का मानदण्ड होता है। कथोपकथन के माध्यम से ही पात्रों की भावनाएं अभिव्यक्ति पाती है। “यदि देश कला और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है तो बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग, भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति जिस कोटि, वर्ग देश और काल का है। संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा सम्बन्ध हो जाता है।”^५ प्रगतिवादी उपन्यासों का कथोपकथन कथावस्तु के विस्तार, पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण तथा उद्देश्य प्रस्तुत करने के साथ ही साम्यवादी विचारों के प्रतिपादन का भी साधन होती है।

वातावरण

उपन्यास को स्वाभाविक एवं सजीव बनाने के लिए वातावरण की आवश्यकता होती है। उपन्यास लेखक जिस समय एवं स्थान की कथा को प्रस्तुत करता है उसके सम्पूर्ण वातावरण को उपन्यास में अभिव्यक्त करता है। “उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार-विचार, रहन-सहन और परिस्थिति आदि से है।..... बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसीलिए मनोरंजक होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से सम्बन्ध रखने वाला ही वर्णन होता है ऐसी दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जायेगा।”^६ सामयिक समस्याओं के चित्रण तथा विश्लेषण के कारण प्रगतिवादी उपन्यासों में वातावरण का विशेष महत्व है। इन उपन्यासों में वातावरण के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक विकास व समस्याओं को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण के साथ ही प्रगतिवादी उपन्यासों में स्थानीय या क्षेत्र विशेष के वातावरण को यथार्थ तथा जीवन्त रूप में चित्रित किया गया है।

भाषा

भाषा साहित्य का बाह्य रूप तथा भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। यह मानव हृदय के भावों को मूर्त रूप देकर उन्हें स्थायित्व प्रदान करती है। साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा उपन्यास की भाषा सरल होती है। भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भावानुकूल, प्रसंगानुकूल तथा पात्रानुकूल शब्दों का प्रयोग किया जाता है। प्रगतिवादी उपन्यास भाषा की दृष्टि से चमत्कार प्रधान न होकर सहज सरल तथा सुबोध होते

हैं। इन उपन्यासों ने जनसाधारण के भावों तथा विचारों को जन सामान्य की बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्त किया है। सरलता इनकी प्रमुख विशेषता है। यही कारण है कि उपन्यासों के मूल विचार तथा दार्शनिक सिद्धान्तों को भी सरल सहज रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ रहे हैं।

४. रांगेय राघव के उपन्यासों का शिल्प-विधान (सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक तथा औपन्यासिक जीवनियाँ)

रांगेय राघव प्रेमचन्दोत्तर काल के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार हैं। इन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक उपन्यासों तथा औपन्यासिक जीवनियों की सफल सृष्टि की। शिल्प की दृष्टि से भी रांगेय राघव के उपन्यासों का महत्वपूर्ण योगदान है। ये समाजवादी उपन्यास लेखक हैं। इनके सभी उपन्यासों में यथार्थ का आग्रह है। ये समाज की रूढ़ि परम्पराओं एवं विकृत मान्यताओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उसके मूल कारणों तक पहुँचने का यत्न करते हैं। रांगेय राघव अपने युग के परिवर्तन के अनुसार गतिशील रहे तथा युग के साथ कदम से कदम मिलाकर चलें। उनका उपन्यास साहित्य 'घरौंदे' से लेकर 'आखिरी आवाज' तक इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रांगेय राघव के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ तथा युग की प्रगतिवादी चेतना का स्वर अधिक मुखर हुआ है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। इन्होंने मानव की दयनीय स्थिति को युगों से चले आ रहे शोषण के सन्दर्भ में अभिव्यक्त किया है, साथ ही मानव समाज को शोषित तथा शोषक वर्गों में विभक्त किया है। आर्थिक असमानता को समाज की सबसे बड़ी समस्या या यह कहा जाय सभी समस्याओं का मूल माना है। हिन्दी उपन्यास रचना के क्षेत्र में प्रगतिवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक रांगेय राघव के उपन्यासों के शिल्प-विधान का अध्ययन करने के लिए हमें उनके उपन्यासों के उद्देश्य, कथाशिल्प चरित्र-चित्रण आदि तत्वों पर विचार करना होगा।

उद्देश्य

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति के लिए अनेक प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से दो प्रमुख हैं आदर्शवादी प्रणाली तथा यथार्थवादी प्रणाली। आदर्शवादी प्रणाली के अनुसार साहित्यकार असाधारण शक्तियों (ईश्वर, देवता आदि) के माध्यम से जनसाधारण के भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करता है। इनके साहित्य में सभी श्रेष्ठ तथा आदर्श बातों का समावेश होता है। जो समाज के उन्नत तथा विकास में सहायक है। यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार रचना करने वाले साहित्यकार असाधारणतत्त्व के दूर मानव

के साधारण भावों तथा विचारों को अंकित करते हैं। उन्हें साधारण तथा यथार्थ अभिव्यक्ति अधिक प्रिय है। "आदर्शवादी कलाकार की दृष्टि में जीवन का कोई महान आदर्श रहता है, जबकि यथार्थवादी की दृष्टि सदैव जीवन की तुच्छता एवं हीनता की ओर ही जाती है। फिर भी आदर्शवादी को अपने आदर्श की स्थापना के लिए जीवन के कटु सत्य एवं उसकी वास्तविकताओं को भी प्रत्यक्ष न सही, किन्तु परोक्ष रूप से अवश्य अपना कर चलना पड़ता है और वह भी मानव की दुर्बलता दिखाकर फिर कहीं जाकर उसके आदर्श की स्थापना करता है।"⁹⁸

रांगेय राघव इस दृष्टि से यथार्थवादी लेखक है। उनके उपन्यासों में मानव जीवन का यथार्थ जीवन्त चित्रण मिलता है। जिसमें मानव अपनी सबलता एवं दुर्बलता के साथ विद्यमान है। रांगेय राघव ने स्वयं लिखा है "प्रेमचन्द आदर्शवादी भी थे। गाँव की बहुत सी असलियत वे उसी से स्पष्ट नहीं लिख सके थे, क्योंकि उस समय उनकी समस्या राष्ट्रीय आन्दोलन को बल देने की ही थी। किन्तु अब युग प्रेमचन्द से अलग है और केवल शोषण का आर्थिक पहलु देखना काफी नहीं है। शहरों में बैठने वाले आधुनिकता के जरिये से सब कुछ देख डालते हैं। पर असली भारत गाँव में है। जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त है। वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित है। मैंने उनको स्पष्ट करने का यत्न किया है।"⁹⁹

रांगेय राघव ने अपने यथार्थवादी दर्शन के आधार पर मानव जीवन का वास्तविक चित्रण किया है उन्होंने मानव के सुख-दुख, आशा आकांक्षा, वेदना, कुण्ठा तथा अभाव आदि का चित्रण साधारण व्यक्तियों के माध्यम से किया है। इन्होंने अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण से ग्रामीण जीवन का वास्तविक चित्र अंकित किया है किसानों मजदूरों के यथार्थ स्थिति का अंकन करते हुए यह दिखाया है कि सेठ साहूकारों द्वारा होने वाले शोषण ने उनकी स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया है। अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों, बाह्याडम्बर, मिथ्याभिमान, पाखण्ड आदि को चित्रित किया है। रांगेय राघव के उपन्यासों में यथार्थ के साथ कहीं-कहीं आदर्शवादी दृष्टिकोण भी मिलता है। इस यथार्थ और आदर्श के मिश्रण में उसका स्पष्ट उद्देश्य यह है कि यथार्थ की कठोर भूमि पर आदर्श की स्थापना करना। उन्होंने स्वयं लिखा है "मैंने जीवन के यथार्थ को देखा है इसीलिए नहीं कि मेरी किसी आदर्श में आस्था नहीं है मेरी आस्था मानव में है, उसमें शाश्वत कल्याण धर्म में है।"¹⁰⁰

रांगेय राघव के सामाजिक उपन्यासों में सम्पूर्ण समाज अपने पूर्ण यथार्थ के साथ चित्रित हुआ है। उन्होंने समाज के विकृति, विषमता, दरिद्रता आदि दुर्बलताओं के साथ ही समाज की सबलता को

अभिव्यक्त किया है। उन्होंने यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए जिन परिस्थितियों का निर्माण किया है वह पूर्ण यथार्थ है। इनके उपन्यासों में भारतीय समाज अपनी सम्पूर्णता के साथ उभरा है। इन्होंने किसी वाद विशेष को अत्यधिक महत्व नहीं प्रदान किया। उन्होंने अपने प्रथम मौलिक उपन्यास 'घरौंदे' में कालेज जीवन की विभिन्न समस्याओं को उठाया है। कालेज के विद्यार्थी विद्या अध्ययन से विमुख होकर सस्ती कामुकता में आबद्ध हो अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेते हैं। छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त प्राध्यापक वर्ग के नैतिक पतन को प्रो० मिश्रा के माध्यम से चित्रित किया है। सहशिक्षा के दुष्परिणामों के अतिरिक्त कालेज में होने वाले चुनावों का तथा उसमें व्याप्त जातीयता की समस्या को दिखाया है। साथ ही वेश्या जीवन की समस्याओं का यथार्थ मार्मिक चित्रण नादानी के माध्यम से किया है जिसे परिस्थितियों ने इस स्थिति तक पहुँचाया है। वह चाहते हुए भी इस नरक से उबर नहीं पाती अपनी व्यथा तथा वेश्या जीवन का यथार्थ व्यक्त करती हुई कामेश्वर से कहती है "रण्डी किसी की रिश्तेदार नहीं होती। यह तुम्हारी लड़की नहीं होगी। वह सिर्फ माँ को जान सकेगी पन्द्रह साल की तो बात है। आना फिर। तुम्हारी लड़की जवान हो जायेगी और वह कुरुपता से ठठाकर हंस पड़ी। कामेश्वर हताश सा सिर झुकाकर सोचने लगा।" "पतक्षर" उपन्यास की आधुनिक युग के युवक युवतियों के परस्पर सम्बन्ध को दिखाकर उनके द्वारा किये जाने वाले पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्ष को अभिव्यक्त किया है।

रांगेय राघव ने 'दायरे', 'राई और पर्वत', 'आखिरी आवाज' आदि उपन्यासों में समाज की अनेक समस्याओं रुढ़ि परम्पराओं को चित्रित किया है। 'दायरे' में शोषित, उत्पीड़ित, उपेक्षित नारी की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास की मिसेज सिंह ऐसी ही अविवाहित माताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। जो पुरुष की वासना का एक बार शिकार होकर अभिशप्त कलंकित जीवन व्यतीत करने को विवश है। नाजायज औलाद की समस्या को उठाया गया है। ये बच्चे किसी और के अपराधों की सजा आजीवन पाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त रिश्त, छुआछूत पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति आदि की समस्याओं को उठाकर उसका उचित सांकेतिक समाधान प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यासों में देश की स्वतंत्रता के पूर्व तथा उसके पश्चात् की समस्याओं को या यूँ कहा जाय समस्त समाज को उसकी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त किया है।

रांगेय राघव के उपन्यासों में राजनीति को भी पर्याप्त स्थान मिला है। वे राजनीतिक, आर्थिक परिस्थिति को जीवन का एक आवश्यक अंग मानते हैं। इनका विचार है कि साहित्यकार राजनीति से अलग नहीं रह सकता परन्तु वह राजनीति से बद्ध भी नहीं है तात्पर्य यह है कि उसके साहित्य को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष

रूप से राजनीति प्रभावित करती है। राजनीति तथा मार्क्सवाद के सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट मान्यता है कि “मैं मार्क्सवादियों का हमदर्द रहा हूँ किन्तु उतनी ही श्रद्धा इस वाद के प्रति मेरी सदा से रही है जितनी अन्य उन वादों के प्रति जो कि मनुष्य के सामूहिक कल्याण को प्रश्रय देते हैं, क्योंकि मैं मनुष्य की मूल उदात्त भावना सदिच्छा को ऊँचा स्थान देता आया हूँ।”⁹² रांगेय राघव गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली के समर्थक हैं। उन्होंने गणतंत्र के क्रमिक विकास को दिखाया है। गणतंत्र में व्यक्ति स्वतंत्रता तथा सुरक्षा का अनुभव करता है। गणतंत्र मनुष्य को समुचित विकास का अवसर प्रदान करता है। जिसमें व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है इसके विपरीत राजतंत्र की निंदा की है। वह व्यक्ति की स्वस्थ भावनाओं तथा स्वतंत्र विकास में बाधक है। इस स्थिति में व्यक्ति का निजी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। पूँजीपति तथा राजसत्ता के व्यक्तियों का वर्चस्व होता है। ये सत्ताधारी अपने स्वार्थ के लिए सामान्य जनता का शोषण करते हैं। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में राजतंत्र और गणतंत्र के संघर्ष को चित्रित किया है। राजतंत्र की विकृतियों को दिखाकर गणतंत्र को समर्थन प्रदान किया है। “यह युद्ध मूलतः एकतंत्र और गणतंत्र का युद्ध है। इसीलिए मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप युद्ध न करके छल का अवलम्बन लें।”⁹³ परन्तु सत्तावर्ग द्वारा अपने स्वार्थ के लिए किये जाने वाले अमानवीय तरीकों के पश्चात् भी गणतंत्र की सदैव विजय दिखाई है। उन्होंने साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों की भी कटु आलोचना की है। इनके द्वारा किये जाने वाले शोषण तथा अत्याचार के प्रति सामान्य जनता को जागृत कर एकजुट होकर संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में धर्म के विकृत रूप तथा बाह्याडम्बर का विरोध किया है। रूढ़ धार्मिकता का विरोध करके मानवतावादी धर्म को स्थापित किया है। इस तरह रांगेय राघव के सभी उपन्यासों का उद्देश्य प्रगतिशील समाज की स्थापना करना है। जिसमें सभी व्यक्तियों को सामान्य विकास का अवसर प्राप्त हो सके। स्वस्थ समाज के विकास मार्ग में अवरोधक सभी रूढ़ियों, मान्यताओं तथा शक्तियों का विरोध किया है।

रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यासों में भी यथार्थ का स्वर प्रधान है। इनका प्रसिद्ध उपन्यास ‘कब तक पुकारूँ’ वर्ग संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। नटों के जीवन को लक्ष्य करके लिखे गये इस उपन्यास में ठाकुरों, जमींदारों तथा सिपाहियों आदि का भी स्वाभाविक चित्रण मिलता है। ‘काका’ उपन्यास मथुरा के पण्डों के भ्रष्ट आडम्बरपूर्ण जीवन के रहस्य को उद्घाटित किया है। ‘घरती मेरा घर’ लौहपीटों के जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इनके आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य उपेक्षित अंचल तथा वर्ग को संवेदना तथा सहानुभूति प्रदान करना, उपेक्षित वर्ग को सामान्य वर्ग की तरह प्रतिष्ठा दिलाना है। लेखक का विचार

है कि उपेक्षित वर्ग का व्यक्ति अपनी समस्त दुर्बलताओं के साथ कुछ विशिष्टता भी रखते हैं। इन्हें भी विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त होना चाहिए।

रांगेय राघव ने महापुरुषों के जीवन को आधार बनाकर अनेक औपन्यासिक जीवनीयों की सृष्टि की है। युग नायकों के माध्यम से तत्कालीन युग को रेखांकित किया है उन्होंने 'देवकी का बेटा' उपन्यास में कृष्ण को देवत्व के पद से उतारकर साधारण व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। लेखक ने भूमिका में स्पष्ट किया है। "मैंने कृष्ण-चरित्र को चमत्कारों से अलग करके देखा है। धर्म मूढ़ लोग तो शायद इसे नहीं सह सकेंगे, उनमें मैं क्षमा मांगता हूँ परन्तु वैसे तो महानता कृष्ण के मनुष्य रूप में प्रकट होती है यह वैसे नहीं मिलती, चमत्कारों में सत्य डूब जाता है।" "यशोधरा जीत गयी" उपन्यास बुद्ध के चरित्र पर आधारित है। लेखक ने बुद्ध को साधारण के रूप में चित्रित किया है "बुद्ध को मैंने चमत्कारों से अलग करके देखा है चमत्कार व्यक्ति की महानता को गिराते हैं।" "लोई का ताना" उपन्यास में कबीर को विशिष्ट व्यक्ति तथा लोकनायक के रूप में रखकर तत्कालीन समस्त परिस्थितियों को जीवन्त यथार्थ चित्रण किया है। इसी तरह इन्होंने 'भारती का सपूत', 'धूनी का धुआँ', 'मेरी भव बाधा हरो' आदि उपन्यासों में चरित्र विशेष को केन्द्र बनाकर उस युग की सभी स्थितियों का यथार्थ चित्रण कर प्रगतिशील समाज के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

कथानक

कथानक उपन्यास के प्रमुख तत्वों में से एक है यह उपन्यास का आधार स्तम्भ है। भारतीय तथा पाश्चात्य अनेक विद्वानों ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि उपन्यास के लिए कथानक आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अरस्तु के अनुसार "कथावस्तु से तात्पर्य घटनाओं का कुशल संगठन। कथानक घटनाओं का वह संगठित ढांचा है। जिस पर उपन्यास आकार ग्रहण करता है। कथानक के अनेक भेद माने जाते हैं। कथा की दृष्टि से दो प्रकार के कथानक होते हैं – अधिकारिक कथा तथा प्रासंगिक कथा। अधिकारिक कथा मुख्य पात्र के आसपास केन्द्रित कथा होती है। उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य पात्रों की कथाएं प्रासंगिक कथा है। उपन्यास लेखक के रचना कौशल पर निर्भर करता है कि वह अपने उपन्यासों में किस प्रकार प्रासंगिक कथाओं को एक दूसरे से तथा समस्त प्रासंगिक कथाओं को अधिकारिक कथा से किस प्रकार सम्बद्ध करते हैं। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में अधिकारिक तथा प्रासंगिक कथाओं के माध्यम से समाज के अधिकाधिक चित्रों को अंकित करने का प्रयास किया है। 'घरोंदे' उपन्यास में भगवती और

इन्दिरा की कथा अधिकारिक कथा है जो कालेज जीवन की समस्या पर आधारित है। इसी के साथ प्रासंगिक कथा के रूप में कामेश्वर तथा नादानी की कथा है जिसमें वेश्या के दयनीय स्थिति का चित्रण है। इसके अतिरिक्त की अन्य कथाएं हैं। इन कथाओं को लेखक ने इतने कौशल से सम्बद्ध किया है। कि किसी जोड़ का एहसास नहीं होता। कथानक के अन्य भेदों में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, सांस्कृतिक तथा घटनाप्रधान, चरित्र प्रधान, भाव-प्रधान आदि हैं। रांगेय राघव का उपन्यास साहित्य न सिर्फ संख्या में अधिक है अपितु उनमें कथानक की दृष्टि से भी विविधता देखी जा सकती है। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक उपन्यासों तथा औपन्यासिक जीवनियाँ लिखकर हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया है।

हिन्दी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों का विकास 'परीक्षा गुरु' से माना जाता है सामाजिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक है। सामाजिक उपन्यासों को विधिवत् स्थापित करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। प्रेमचन्द के पश्चात् यह परम्परा निरन्तर चलती रही। सामाजिक उपन्यास लेखकों में रांगेय राघव का विशेष स्थान है। इन्होंने 'घरौंदे' से लेकर 'आखिरी आवाज' तक अनेक सामाजिक उपन्यासों की रचना की जिसमें समाज की विविध समस्याओं को चित्रित किया है तथा उसके समाधान की ओर भी संकेत किया है। इन्होंने समाज में व्याप्त जातिपाति, अन्धविश्वास, शोषण नारी की समस्याओं आदि को चित्रित किया है।

सुगठित क्रमबद्ध कथानक उपन्यास को कलात्मक महत्ता प्रदान करता है। उपन्यास की प्रत्येक घटना का प्रभाव दूसरी घटनाओं व सम्पूर्ण उपन्यास पर किसी न किसी रूप में पड़ता है। अतः इसका संयोजन विशेष महत्व रखता है। रांगेय राघव के सभी उपन्यासों का कथानक सुगठित तथा क्रमबद्ध है। महायात्रा गाथा में मानव सभ्यता के श्रृंखलाबद्ध क्रमिक विकास को चित्रित किया गया है। जिसे विभिन्न कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इनके उपन्यासों के कथानक की श्रृंखला कहीं भी टूटती प्रतीत नहीं होती हैं किसी-किसी उपन्यास में राजनीतिक विचारों से बोझिल कथा में शिथिलता अवश्य देखी जा सकती है। परन्तु घटना तथा कला की सम्बद्धता को इससे आघात नहीं पहुँचा है।

कथानक का रोचक होना भी आवश्यक है। पूर्व प्रेमचन्द युग में कथानक को रोचक तथा मनोरंजक बनाने के लिए अमर्यादित कल्पना का सहारा लिया जाता था। जिससे कथानक में अव्यवहारिक तथा अविश्वसनीय तत्वों का समावेश हो जाता था। ये तत्व मात्र चमत्कार उत्पन्न करते थे। उपन्यास के कलात्मक

विकास के साथ-साथ उपन्यास में रोचकता का निर्माण करने के लिए चमत्कारिक तत्वों का प्रयोग न करके उसे यथार्थ तथा वैज्ञानिक तरीके से रोचक बनाने की दिशा में प्रयत्नशील हुआ। आज उपन्यास को रोचक बनाने में बुद्धि कौशल तथा कथाओं के कलात्मक मोड़ का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कथाओं का सुन्दर संयोजन कर उसे रोचक रूप में प्रस्तुत करना रांगेय राघव की विशेषता है। उनके समस्त सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक उपन्यासों तथा औपन्यासिक जीवनियों में इस विशेषता को देखा जा सकता है। इनके उपन्यास यथार्थवादी होने के बावजूद भी रोचक तथा नाटकीय है।

उपन्यास लेखक की सफलता प्रबन्ध-कौशल पर निर्भर करती है। उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत तथा व्यापक होता है। जिसमें अनेक प्रासंगिक तथा एक अधिकारिक कथा होती है। यह उपन्यास लेखक के कलात्मक कौशल पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार कथा को सुनियोजित एवं संगठित करता है। रांगेय राघव के समस्त उपन्यासों के कथानक में कुशल प्रबन्ध कौशल देखा जा सकता है। इनके उपन्यास यथार्थवादी होने के बावजूद भी रोचक तथा नाटकीय है।

उपन्यास लेखक की सफलता प्रबन्ध-कौशल पर निर्भर करती है। उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत तथा व्यापक होता है। जिसमें अनेक प्रासंगिक तथा एक अधिकारिक कथा होती है। यह उपन्यास लेखक के कलात्मक कौशल पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार कथा को सुनियोजित एवं संगठित करता है। रांगेय राघव के समस्त उपन्यासों के कथानक में कुशल प्रबन्ध कौशल देखा जा सकता है। इन्होंने अपने उपन्यासों में बड़े ही कौशल के साथ अनेक प्रासंगिक कथाओं को अधिकारिक कथा से संयोजित किया है। 'कब तक पुकारूँ', 'मुर्दों का टीला' आदि वृहद् उपन्यासों में अनेक कथाएँ हैं परन्तु ये सभी कथाएँ एक अधिकारिक कथा से इस तरह सम्बद्ध हुयी है कि कहीं भी जोड़ का अहसास नहीं होता। उपन्यास लेखक के लिए मौलिकता एक आवश्यक गुण है। उपन्यास का महत्व कथानक की मौलिकता तथा नवीनता पर निर्भर करता है। जिस उपन्यास में जितनी अधिक मौलिकता तथा नवीनता होगी वह उपन्यास उतना ही श्रेष्ठ होगा। उपन्यासकार इसी तत्व के आधार पर समाज तथा जीवन से जुड़ता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में मौलिकता पात्रों तथा वातावरण के व्यक्त होती है। रांगेय राघव एक मौलिक उपन्यास लेखक है। इससे इनके सभी उपन्यासों में मौलिकता का आग्रह देखा जा सकता है। कथानक के क्षेत्र में इन्होंने अनेक मौलिक प्रयोग भी किये। औपन्यासिक जीवनियाँ उनके मौलिक प्रतिभा को उजागर करती है। इसी तरह उन्होंने 'विषाद मठ', 'आनन्द मठ' के तथा 'सीधा सादा रास्ता', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के प्रतियुत्तर में या उससे आगे लिखकर एक अभिनव प्रयोग किया तथा अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

उपन्यास लेखक अपने उपन्यासों में जिस कथानक का निर्माण करता है, उसमें उसे कल्पना का पर्याप्त सहारा लेना पड़ता है। चाहे यह सत्य घटना पर ही आधारित क्यों न हो। रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों तथा औपन्यासिक जीवनियों में कल्पना के आधार पर ही प्रस्तुत किया है परन्तु उनकी कुशल वर्णनात्मक अभिव्यक्ति के कारण उसमें घटनात्मक सत्यता तथा यथार्थ के दर्शन किये जा सकते हैं। उनके राजनीतिक तथा आंचलिक उपन्यासों में यथार्थ चित्रण का आग्रह प्रमुख है।

चरित्र चित्रण

उपन्यास के मुख्य तत्वों में चरित्र चित्रण एक महत्वपूर्ण तत्व है। पात्रों के माध्यम से उपन्यास लेखक समाज तथा जीवन के अनेक रूपों को प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से उपन्यास में पात्रों का महत्व अधिक है गुलाब राय लिखते हैं “यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र के ही कारण हम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक् करते हैं। चरित्र द्वारा ही हम मनुष्य के आपे को प्रकाश में लाते हैं।”¹⁰ चरित्र-चित्रण के स्वरूप तथा भेद को लेकर भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार अपने विचार व्यक्त किये हैं। पात्रों का चरित्र निर्माण उपन्यास की एक प्रमुख समस्या है। जिनके माध्यम से उपन्यास लेखक यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि मानव चरित्र में कौन-कौन सी विशेषताएं पायी जाती है। जिनको आधार बनाकर मनुष्य की मानवता को जाँचा परखा जा सके। यह उपन्यास लेखक की कुशलता तथा महानता पर निर्भर करता है कि वह कितने सशक्त तथा जीवन्त पात्र का निर्माण करता है। इन्हीं पात्रों के माध्यम से लेखक हमारे विश्वासों, भावनाओं व आस्थाओं को जगाते हुए जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। यदि उपन्यास लेखक पात्र की सृष्टि कल्पना के आधार पर करता है तो वह किसी प्रकार से विश्वसनीय नहीं हो सकता है। उपन्यास लेखक समाज का सजग प्राणी होता है। वह अपने उपन्यासों में ऐसे पात्रों की भी सृष्टि करता है, जिसमें लेखक के व्यक्तित्व की छाया देखी जा सकती है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उपन्यास लेखक सदैव अपना ही चित्रण करता है। सफल उपन्यास लेखक अपने पात्रों के चरित्र में अपने व्यक्तित्व का वहीं तक समावेश करता है जहाँ तक पात्र के स्वतंत्र चरित्र विकास में बाधा न पहुँचे। समर्थ लेखक काल्पनिक तथा दुर्बल पात्रों को भी सशक्त बना देता है। परन्तु कुछ लेखक प्रमुख पात्रों के चरित्र को भी नहीं संभाल पाते हैं। यही कारण है कि एक ही विषय तथा परिवेश पर आधारित दो उपन्यास लेखकों के उपन्यास में काफी अन्तर होता है। उपन्यास लेखकों ने प्रायः चरित्र चित्रण की दो प्रणालियों को अपनाया है – बहिरंग प्रणाली व अंतरंग प्रणाली।

पात्र अपने चरित्र का परिचय अपने व्यक्त विचारों द्वारा देते हैं। उपन्यास में प्रत्येक पात्र का नाम भी होता है। नाम प्रायः सार्थक होते हैं। कहीं-कहीं उपन्यासकार पात्रों की आकृति, वेश-भूषा, गुण-अवगुण, रुचि-अरुचि आदि के सम्बन्ध में टिप्पणी लिख देता है। जिसमें पात्र का औपचारिक परिचय प्राप्त हो जाता है। परिस्थिति विशेष में पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया से भी उनके चरित्र का परिचय मिलता है।

कतिपय विद्वान पात्रों के बाह्य व्यवहार की अपेक्षा आन्तरिक पक्ष को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इसके लिए वे मनोविज्ञान का सहारा लेते हैं। मनुष्य के चेतन अवचेतन को महत्व प्रदान करते हुए उनकी समस्याओं को व्यक्त करते हैं। "व्यक्ति के अवचेतन मानस को प्रत्येक विकारों के लिए खोजा जा सकता है उसके घोर अन्धकारमय गहन कक्ष में पैठकर वहां की दूषित भावनाओं पर सर्चलाइट डाली जाती है।" सम्मोहन तथा पूर्ववृत्तान्त प्रणाली भी आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। प्रायः मनोविश्लेषणवादी लेखकों ने इसका उपयोग किया है।

उपन्यास मानव समाज का सम्पूर्ण चित्रण करता है। समाज व्यक्तियों से निर्मित होता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति समान नहीं होते हैं। "किन्हीं भी दो आदमियों की सूरतें नहीं मिलती, उसी भाँति सब आदमियों के चरित्रों में भी बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ होती है। यही चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता, अभिनत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिनत्व दिखाना उपन्यास का प्रमुख कर्तव्य है।" उपन्यास के पात्र दो प्रकार के होते हैं प्रमुख पात्र, सहायक पात्र।

उपन्यास का केन्द्र बिन्दु मुख्य पात्र होते हैं। उपन्यास लेखक अपना पूर्ण ध्यान इन पात्रों के चरित्र चित्रण पर केन्द्रित रखता है। रांगेय राघव ने 'घरौंदे', 'राई और पर्वत' आदि उपन्यासों में क्रमशः भगवती, सत्यपाल, रामभरोसे आदि को विशेष रूप से चित्रित किया है। उपन्यास में अन्य पात्रों को भी स्थान मिला है जो इन प्रमुख पात्रों के चरित्र विकास में सहायक है। इसके अतिरिक्त पात्रों का एक अन्य वर्गीकरण वर्णगत् प्रतिनिधि पात्र तथा व्यक्तित्व प्रधान पात्र किया जाता है। प्रतिनिधि पात्र समाज के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं जिनमें सम्पूर्ण मानवीय तथा सामाजिक तत्व विद्यमान होता है। जबकि व्यक्तिवादी पात्र निजी विशेषताओं व समस्याओं से युक्त होते हैं।

रांगेय राघव के उपन्यासों के टाइप पात्रों की अपनी विशेषता है। इनके अतिरिक्त पात्र अपना निजी व्यक्तित्व भी रखते हैं। इनके व्यक्तित्व का उतना ही विकास दिखाया गया है जितना समस्याओं के विश्लेषण, अभिव्यक्ति तथा समाधान के लिए आवश्यक है। इनके पात्र विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उदाहरणस्वरूप 'घरौंदे' के भगवती, कामेश्वर, लीला, इंदिरा, 'उबाल' के विलास, सत्यपाल, मनोरमा, सरस्वती, 'राई और पर्वत' के रामभरोसे, विद्या, फूलवती, 'छोटी सी बात' के राज एवं सुशीला, 'बन्दूक और बीन' के लेफ्टिनेंट कर्नल रणधीर, 'बौने और घायल फूल' के सुरेश, परमेश्वर, कमला, नीलिमा, 'दायरे' के सत्यदेव, श्रीमति रोजालिण्ड सिंह, 'कल्पना' के नीला, निर्मला, 'पतक्षर' के जगन्नाथ, मोहिनी, 'आखिरी आवाज' के हिरदेराम, चंचलसिंह, गोविन्द, प्याराराम, निहारकौर, 'विषादमठ' के चट्टोपाध्याय, अमिताभ आदि पात्रों को ले सकते हैं। रांगेय राघव ने प्रेमचन्द की अपेक्षा पात्रों के मनोवैज्ञानिक मानसिक क्रिया व्यापार को अधिक सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्रों को भी आधार बनाया है। इनका महायात्रा गाथा – 'अँधेरा रास्ता', 'रैन और चंदा' तथा 'देवकी का बेटा' पौराणिक कथा पर आधारित उपन्यास है। इसमें वर्णित इन्द्र, विष्णु, वरुण, परशुराम, राम, कृष्ण, देवकी, राधा, रोहिणी, नाचिकेता, वैवस्वत आदि पौराणिक पात्र हैं। जिनके माध्यम से लेखक ने तर्कसंगत ढंग से धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया है। इनके सामाजिक तथा राजनीतिक उपन्यासों के पात्र भी वर्गों में विभक्त हैं। उच्चवर्ग के पात्र प्रायः शोषक के रूप में तथा निम्न वर्ग शोषित के रूप में चित्रित हैं। इनके बीच मध्यवर्ग की स्थिति भी देखने योग्य है। आंचलिक उपन्यासों के पात्र चारित्रिक दृष्टि से अधिक आकर्षक हैं। क्योंकि इनका जीवन कृत्रिमता तथा थोथी नैतिकता द्वारा नियंत्रित नहीं है। ये जीवन को स्वतंत्र रूप से सम्पूर्णता में जीने के पक्षधर हैं। उदाहरण के रूप में सुखराम, काका परसराम आदि को लिया जा सकता है। मौलिक पात्रों की दृष्टि से रांगेय राघव की औपन्यासिक जीवनियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने विद्यापति, कबीर, तुलसी, बिहारी भारतेन्दु आदि पात्रों को अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा उपन्यास का नायक बनाया है। जिनके माध्यम से इनके द्वारा स्थापित तथा प्रतिपादित विचारों व मान्यताओं को अभिव्यक्त किया है।

रांगेय राघव की यह अपनी विशेषता है कि इन्होंने अपने अधिकांश पात्रों का निर्माण अपने अनुभव के आधार पर कल्पना का सहारा लेकर किया है। जिसमें अनुभव प्रधान है। उन्होंने प्रेमचन्द की भाँति अपने उपन्यासों के लिए जीवन तथा समाज का व्यापक फलक चुना है। यही कारण है कि इन्होंने नागरिक तथा ग्रामीण समाज के प्रत्येक वर्ग के पात्रों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। नागरिक जीवन के शासक, पूँजीपति, व्यापारी, डाक्टर, वकील, अध्यापक, नेता, सुधारक, सम्पादक, सभा सोसाइटियों के प्रधान, मजदूर, विद्यार्थी, वेश्या, भिखारी आदि पात्रों को चित्रित किया है वही ग्रामीण जीवन के किसान, जमींदार,

सेठ-साहूकार, पटवारी, महंत, मजदूर आदि को जीवन्त रूप में अभिव्यक्त किया है। यह उपन्यास लेखक के व्यापक जीवनानुभव, संवेदनशीलता व सहानुभूति की ही परिणति है कि समाज के सभी वर्गों के पात्रों को लेकर समाज को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है। रांगेय राघव के प्रमुख पात्र क्रान्तिकारी, स्वाभिमानी व मानवता प्रेमी है। ये पात्र सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विषमताओं के विरुद्ध पूरी शक्ति से संघर्ष करते हैं। गौण पात्रों में भी यह विशेषता न्यूनाधिक मात्रा में दिखाई देती है। कथानक तथा पात्रों के चारित्रिक विकास में तारतम्यता विद्यमान है। पूर्व नियोजित कथानक में पात्रों को रखकर उनका आवश्यकतानुसार चारित्रिक विकास दिखाया गया है। इनके पात्र वास्तविक जगत् जीवन में आसानी से देखे जा सकते हैं।

कथोपकथन

कथोपकथन उपन्यास का एक आवश्यक तत्व है। कथोपकथन के माध्यम से कथा का विकास तथा पात्रों के व्यक्तित्व को चित्रित किया जाता है। उपन्यास की श्रेष्ठता कथोपकथन की श्रेष्ठता पर आश्रित है। उपन्यास चाहे जैसा भी हो कथोपकथन उसकी श्रेष्ठता की कसौटी है। "यदि देश काल और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है तो बातचीत का प्रांजलता और विदग्धता शब्द और वाक्य के प्रयोग, भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति किस कोटि, वर्ग देश और काल का है। संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा सम्बन्ध हो जाता है।"²⁰ इससे कथोपकथन का महत्व स्पष्ट हो जाता है प्रायः कथोपकथन की योजना का उद्देश्य होता है। जैसे कथानक को गति प्रदान करना, पात्र तथा चरित्र का विश्लेषण करना, उपन्यास लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना तथा वातावरण की सृष्टि करना आदि। रांगेय राघव ने इन सभी उद्देश्यों के लिए कथोपकथन का आश्रय लिया है।

कथोपकथन की सहायता से उपन्यास लेखक कथानक का विस्तार करता है। संगठित व सुव्यवस्थित कथोपकथन जहाँ कथानक विकास में सहायक होते हैं वही अनावश्यक, विस्तृत, अरोचक कथोपकथन कथानक को अव्यवस्थित तथा बोझिल बना दते हैं। कथोपकथन का कथानक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिए वरना कथानक अकलात्मक व अक्रमबद्ध हो जाता है रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों के कथानक को कथोपकथन से गति प्रदान करते हैं परन्तु इसके माध्यम से कथानक में बिखराव न आये इस बात का सदैव ध्यान रखा है। उपन्यास लेखक ने कई स्थानों पर कथोपकथन के द्वारा कथा को दूसरी दिशा में

भी मोड़ा है। ये मोड़ कथोपकथन के स्वाभाविकता के कारण अस्वाभाविक नहीं लगते। 'प्रोफेसर' उपन्यास से एक उदाहरण द्रष्टव्य है। उपन्यास नायिका निर्मला अपने विवाह की तैयारी में लगी है। एक अनाथाश्रम का बालक आकर कहता है – बहनजी, अनाथालय का चंदा।' और उसने एक कापी आगे बढ़ा दी। निर्मला ने उसकी रसीदों की छपी कापी को देखा और फिर उस लड़के की ओर ऊपर से नीचे की ओर देखकर कहा – तुम फिर आ गये?

“मैं तो आज पहली बार आया हूँ, बहनजी!”

“तुम लोगों ने एक धंधा बना रखा है, खाने कमाने का। क्या उम्र है तुम्हारी?”

“सोलह सत्रह साल का होऊँगा।”

“तुम कुछ काम नहीं करते। तुम्हें शर्म नहीं आती।”

लड़के की आँखें जैसे भारी हो गयी और उसने लज्जित स्वर में कहा – “आप लोग बड़े आदमी हैं। आप लोग कुछ करते ही नहीं तो हम क्या करें।”

निर्मला को कौतुहल हुआ। उसने कहा – “हम क्या कर सकते हैं.....।”

लड़के ने कहा – “बहनजी, हम भीख मांगते नहीं। हमसे भीख मंगवाई जाती है।”

“कौन मंगवाता है तुमसे?”

“हमारा मास्टर।”

“मास्टर! कैसा मास्टर?”

“हम लोगों का जगह-जगह तबादला होता है।”

“तबादला!” निर्मला ने आश्चर्य से पूछा।

“जी हाँ!” उसने कहा “गुजरात और राजस्थान, यू०पी० और जगह-जगह अनाथालय हैं।”

“तो तुम उसके पास रहते क्यों हो? और नौकरी क्यों नहीं कर लेते।”

“बहनजी, अगर हम नौकरी मांगते हैं तो लोग अपने घर में नौकर रखते नहीं।”^{२१}

इस उद्धरण के आरम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि निर्मला बालक के साथ कठोरता से पेश आयेगी और उसे भगा देगी। परन्तु उसे बालक से हमदर्दी होती है तथा समाज सेवा के नाम पर समाज सेवकों के द्वारा किये जाने वाले अनैतिक कार्यों से घृणा होता है। यही बातचीत उसे अनाथों की सेवा के लिए प्रेरित करती है।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं को कथोपकथन के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। पात्रों के कथोपकथन स्वगत कथन उनके मनोभावों व चरित्र को उभारने निखारने में विशेष सहायक हुये हैं। पात्रों के कथोपकथन उनके चरित्र विश्लेषण के साथ ही कथा को भी दिशा प्रदान करते हैं। कथोपकथन के माध्यम से उपन्यासकार अपने उद्देश्य का स्पष्ट एवं प्रकट करता है। वह पात्रों के माध्यम से अपनी बात भी व्यक्त करता है। रांगेय राघव ने उपन्यासों में अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए कथोपकथन को माध्यम बनाया है। इन्होंने कहीं भी अपने विचारों को पात्रों पर थोपा नहीं है अपितु सहज रूप से पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। यही कारण है कि इनके उपन्यासों के कथोपकथन स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ 'विषादमठ', 'सीधा सादा रास्ता', 'हुजूर', 'पराया' आदि के कथोपकथन को लिया जा सकता है।

कथोपकथन के माध्यम से उपन्यास लेखक वातावरण की सृष्टि करता है। पात्रों के कथोपकथन से तत्कालीन समाज व संस्कृति को व्यंजित किया है। रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में कथोपकथन के माध्यम से वातावरण की सृष्टि की है। इससे इनके उपन्यासों में जहाँ एक ओर स्वाभाविकता आयी है वहीं दूसरी ओर वर्णित युग भी साकार हुआ है। कथोपकथन में अनुकूलता, भावात्मकता, सार्थकता, संक्षिप्तता, सम्बद्धता आदि गुणों का विद्यमान होना आवश्यक है। रांगेय राघव के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे पात्रों एवं घटनाओं के अनुकूल है। इनके पात्रों का संसार विस्तृत है जो विभिन्न देश, प्रान्त तथा संस्कृति के प्रतिनिधि होकर आये हैं तथा अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में भी पूर्ण सक्षम रहे हैं। इनकी भाषा पात्रानुकूल तथा परिवेशानुकूल है। इसके अतिरिक्त पात्रों के बौद्धिक स्तर को भी लेखक ने ध्यान में रखा है। इनके पात्रों के संवाद परिस्थिति तथा आन्तरिक भावों के अनुकूल परिवर्तित होते रहते हैं। रांगेय राघव के कथोपकथन संयमित तथा सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में सफल है। इनके संवादों में श्रृंखला विद्यमान है। कहीं भी अप्रसंगिक कथोपकथन नहीं है इनके उपन्यासों के कथोपकथन रुचि तथा कौतुहल उत्पन्न करने के साथ ही साथ पूर्वापर रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित है। रांगेय राघव के उपन्यासों के संवाद संक्षिप्त तथा विस्तृत दोनों प्रकार के हैं। लम्बे संवादों की वजह से ही कुछ उपन्यासों के आकार में वृद्धि हुई है। छोटे संवाद भी सार्थक तथा प्रासंगिक है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि इनके उपन्यास कथोपकथन की दृष्टि से सभी आवश्यक गुणों से युक्त हैं इनके संवाद कथा का अभिन्न अंग बनकर वातावरण का निर्माण करने, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने के साथ ही साथ कथानक का अनिवार्य अंग बनकर आये हैं।

वातावरण

वातावरण उपन्यास को स्वाभाविक तथा सजीव बनाता है। उपन्यास लेखक जिस समय तथा समाज की कथा को प्रस्तुत करता है। उसे उस समय का सम्पूर्ण वातावरण उपन्यास में उपस्थित करना पड़ता है। उसे उस समय का सम्पूर्ण वातावरण उपन्यास में उपस्थित करना पड़ता है। किसी समाज का वातावरण उपस्थित करने के लिए वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्त परिस्थितियों का तथा वहाँ के रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, खान-पान आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। “उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार-विचार, रहन-सहन और परिस्थिति आदि से है।बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसीलिए मनोरंजक होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से सम्बन्ध रखने वाला ही वर्णन होता है। ऐसी दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जायेगा।”²² इस तरह उपन्यास की सफलता के लिए देश काल का बन्धन आवश्यक है। वातावरण ही पात्रों का संसार होता है। इसके भीतर ही उनका जीवन संचालित तथा नियंत्रित होता है। पात्रों के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में वातावरण का महत्वपूर्ण स्थान होता है वातावरण उसकी भाषा को भी प्रभावित करता है। वातावरण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण।

सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत समाज की यथार्थ दशाओं का चित्रण होता है। जबकि प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत प्राकृतिक दृश्यों, पशु, पक्षी, झरना, नदी, वनस्पतियों आदि का चित्रण मिलता है। ये प्रकृति उपन्यास लेखक तथा उपन्यास के पात्रों के सुख-दुख के प्रति संवेदनशील देखे जा सकते हैं। “भौतिक या प्राकृतिक दृश्य विधान का सबसे सुन्दर उपयोग वह है जब उपन्यासकार अपनी विशेष कला से मानव भावनाओं के साथ प्रकृति का विरोध या साम्य दिखाता है। कभी-कभी तो उपन्यासकार विपत्ति-ताण्डव के समय प्रकृति का सुन्दर सुरम्य रूप दिखाकर मानव के हर्ष-विषाद की ओर से प्रकृति की व्यंग्यात्मक उदासीनता का परिचय देता है और कभी-कभी इसके विपरीत उसके संवेदनशील रूप का दर्शन कराता है। मृत पति के शव पर क्रंदन करती हुई विकल अनाथा के लिए आंगन में फैली हुई शुभ्र शीतल चन्द्रिका नियति का व्यंग्यात्मक हास ही तो है। ऐसे वैषम्य का भी अपना महत्व होता है और इससे कथा की मार्मिकता बहुत बढ़ जाती है। परन्तु अधिकतर कलाकार इस वैषम्य प्रदर्शन की अपेक्षा प्रकृति का संवेदनशील रूप ही अधिक चित्रित करते हैं और यह युक्ति मानव से अधिक परिचित भी है।”²³

रांगेय राघव के सामाजिक उपन्यासों में वर्तमान के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति का यथार्थ वर्णन है। 'घरौंदे' में इन्होंने कालेज जीवन की विविध समस्याओं को चित्रित किया है। इन्होंने समाज में व्याप्त विषमता का जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को अंकित किया है। आर्थिक अभाव में भगवती हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है, वह धन को ही सफलता का आधार मान लेता है। पूँजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणाम के साथ ही नारी की दयनीय स्थिति, वेश्या समस्या, कांग्रेस का सत्याग्रह आदि के यथार्थ चित्रण से तत्कालीन परिस्थितियों का सफल चित्रण किया है। इनके सामाजिक उपन्यासों में नगर तथा देहात दोनों का वर्णन हुआ है। 'घरौंदे', 'छोटी सी बात', 'प्रोफेसर', 'उबाल', 'पतक्षर' आदि उपन्यास नारी जीवन से सम्बन्धित हैं। जिसमें नागरिक जीवन के परिवेश की समस्याओं को उठाया गया है। वहीं 'आग की प्यास' व 'आखिरी आवाज' में ग्रामीण परिवेश साकार हुआ है। इस परिवेश में अंकन हुआ है। इन्होंने स्वयं लिखा है "हमारी मान्यताएं आज कैसी जड़ खुदी सी हो गयी हैं। क्या इनमें से बाहर निकलने का उपाय नहीं है? मेरे सामने यह प्रश्न उठा। तब मेरे सामने प्रश्न आया – मैं किसे अपनाऊँ? युग के यथार्थ को या अपने आदर्शों के यथार्थ को? दूसरे पक्ष पर ज्यादा जोर देता मैं, तो क्या होता? सत्य से मैं दूर हो जाता। इसीलिए मैंने युग के साथ संस्कारों के द्वन्द्वों को भी देखा। मानव का सर्वांगीण रूप देखा।"²⁸ यथार्थ का आग्रह प्रधान होने के कारण इनके सामाजिक उपन्यासों में वातावरण की सफल सृष्टि हुई है।

ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों को वातावरण के प्रति अधिक सतर्क एवं सचेत रहना पड़ता है। इतिहास विरुद्ध किसी वातावरण की सृष्टि ऐतिहासिक दृष्टि से दोष माना जाता है। "ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाले का काम ही यह है कि पुरातत्व और इतिहास के जानकारों ने जिन रूखी-सूखी बातों का संग्रह किया हो उसको वह सरस और सजीव रूप देकर अपने पाठकों के सामने उपस्थित करें और उसे इधर-उधर बिखरी हुई जो सामग्री भिन्न-भिन्न साधनों से मिले उसकी सहायता से वह अपने कौशल के द्वारा एक सर्वांगपूर्ण चित्र प्रस्तुत करें। ऐतिहासिक उपन्यासों के पाठक तो उसी लेखक का सबसे अधिक आदर करते हैं जो किसी विशिष्ट अतीत काल का बिल्कुल सच्चा, जीता जागता और साथ ही मनोरंजक वर्णन कर सके। इससे उसके पाण्डित्य और पुरातत्व ज्ञान का भी आदर होता है पर उतना अधिक नहीं जितना उसकी वर्णन शक्ति का।"²⁹ ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए वातावरण की सृष्टि आवश्यक है क्योंकि काल स्थान की प्रामाणिकता के अभाव में उपन्यास उच्चकोटि का हो ही नहीं सकता।

रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण का सफल अंकन हुआ है। उन्होंने इतिहास के किसी युग विशेष को आधार बनाकर उस युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक,

धार्मिक समस्त परिस्थितियों का यथार्थ परिचय दिया है। इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'मुर्दों का टीला' है। जिसमें मोहनजोदड़ों काल की समृद्ध संस्कृति का वर्णन है। इसके अतिरिक्त विभिन्न जातियों के मध्य होने वाले युद्धों के यथार्थ वर्णन के साथ विभिन्न सांस्कृतिक सम्यता का उत्थान पतन भी वर्णित है। इस उपन्यास में लेखक सजीव यथार्थ वातावरण निर्मित करने में सफल हुआ है जिससे उपन्यास की प्रभावात्मकता बढ़ जाती है। 'महायात्रा : अंधेरा रास्ता', 'महायात्रा : रैन और चंदा' में प्राचीन भारत की समस्त परिस्थितियों को वर्णित किया गया है। आर्यों का वर्णन करते हुए रांगेय राघव लिखते हैं – "जो आर्य भारत में पहले पहल आये वे देव कहलाते थे और इन देवों का सम्बन्ध सबसे पहले भारत में पिशाच, यज्ञ, राक्षस, गांधर्व, किन्नर, वानर, ऋक्ष आदि के परिवार से हुआ। इस परिवार को ही मैंने किरात परिवार की संज्ञा दी है। संभवतः इसी के माध्यम से भारतीय चिंतन और सम्यता चीन में अपना प्रभाव डाल सकी थी। ये लोग हिमालयस्थ प्रदेशों में रहते थे। इनमें वृक्ष पूजा थी, चैत्य अर्थात् खुले चबूतरों की तथा पत्थरों की पूजा थी, बलि देने की प्रथा थी, मातृसत्ता के समाज में पितृसत्ता के उदय का सम्मिलन था। इनकी स्त्री '(अप्सरा) संभोग के लिए स्वतंत्र थी।'"²⁶ इसमें प्रागैतिहासिक काल से लेकर सन् १२०० तक की मानव सम्यता के विकास को दर्शाया गया है। 'चीवर', 'राह न रूकी', 'जब आवेगी काल घटा' आदि उपन्यासों में धार्मिक वातावरण को प्रमुखता से चित्रित किया है।

रांगेय राघव के राजनीतिक उपन्यासों में 'सीधा सादा रास्ता', 'विषाद मठ', 'हुजूर' आदि प्रमुख हैं। 'सीधा सादा रास्ता' में इन्होंने स्वतंत्रता पूर्व के कांग्रेस आन्दोलन की पृष्ठभूमि व्यंजित है। तत्कालीन युग की अस्थिर राजनीतिक स्थिति का वर्णन है जिसमें सभी दलों का मुख्य आग्रह स्वतंत्रता प्राप्ति ही था। सभी अपने-अपने ढंग से इसके लिए प्रयत्नशील भी हैं। जमींदार विशेष रूप से अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए चिन्तित थे। यही वातावरण इस उपन्यास का केन्द्र है। पात्रों के संवाद आदि के माध्यम से मार्क्सवादी, गांधीवादी तथा उग्रवादी सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इसके लिए आकर्षक यथार्थ चरित्रों की भी सृष्टि की है। 'विषाद मठ' उपन्यास बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि को साकार तथा सजीव करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास में अकाल की भयंकरता, भीषणता के साथ-साथ व्यापकता का भी यथार्थ वर्णन है। उस समय भूख की ज्वाला ने मानवता के सभी मानदण्डों को किस प्रकार समाप्त सा कर दिया था उसका सजीव यथार्थ चित्रण रांगेय राघव ने किया है। 'हुजूर' उपन्यास में तत्कालीन समाज के शासक, शोषित, जमींदार, पूंजीपति आदि के द्वारा उस सम्पूर्ण समाज का यथार्थ वातावरण निर्मित किया है।

रांगेय राघव ने अपने समस्त आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष के सम्पूर्ण वातावरण को मुखरित किया है। इस वातावरण में वहाँ का समग्र जीवन चित्रित हुआ है। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' ने नटों के जीवन का यथार्थ वर्णित है। नटों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, आदि मान्यताओं को उसकी सम्पूर्णता में चित्रित किया गया है। इस तरह 'धरती मेरा घर' लोहपीटों के जीवन पर आधारित है। जिसमें लोहपीटों के रहन-सहन, जीवन संघर्ष, रीति रिवाज आदि को उसकी सम्पूर्णता सबलता एवं दुर्बलता के साथ अंकित किया गया है। 'काका' उपन्यास में मथुरा के पंडों का यथार्थ जीवन वर्णित करने वाला उपन्यास है इन सभी उपन्यासों में वर्णित परिवेश का यथार्थ अंकन हुआ है।

वातावरण सृष्टि की दृष्टि से रांगेय राघव की औपन्यासिक जीवनियों का अपना विशेष महत्व है। इनकी समस्त जीवनियों में तत्कालीन युग अपनी पूर्णता में अभिव्यक्त हुआ है। वे उस युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवेश को अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं। उन परिस्थितियों के अतिरिक्त प्रकृति चित्रण द्वारा भी वातावरण का निर्माण करने में रांगेय राघव सफल रहे हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। इन्होंने जहाँ एक ओर प्रकृति के सरस, सौम्य, रमणी रूप को प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर उसे भयंकर, रौद्र, विकराल रूप भी वर्णित है। इन्होंने पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप प्रकृति के आकर्षक, अनाकर्षक रूप का चित्रण करके विश्वसनीयता उत्पन्न की है। रांगेय राघव ने प्रकृति के सरस रूप को अधिक व्यक्त किया है। बसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए लिखते हैं "बसन्ती सौरभ से भ्रमर तृप्त हो जाते और आम्रमंजरी के मधुमय पराग तथा बसन्त बेला की सुमधुर गन्ध से सिक्त तृप्त होकर उन्मादिष्णु अन्ध मधुकरों के समूह ठौर-ठौर पर निदियात से झूमने लगते। प्रत्येक दिशा फूलों से भर जाती। ऐसा लगता जैसे ऋतुराज बसन्त ने किसी वियोगिनी को दण्ड देने को शरपिंजर बनवाया हो। कोयलरूपी बटमार कामदेव से सम्पत्ति पाकर प्रवासी यात्रियों को वन-मार्ग में देखकर क्रोध से लाल-लाल आँखें करके कुहू-कुहू रूपी कुहौ-कुहौ (मारो-मारो) का शब्द कर उठते। परकीया नायिका गुलाबों की कलियों के खिलते ही अपने प्रेमी को कुंज में छोड़कर गृह की ओर चली जाती।"³⁰ इस तरह के अनेक सौम्य सरस प्रकृति वर्णन इनके विभिन्न उपन्यासों में देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं प्रकृति वर्णन इनके विभिन्न उपन्यासों में देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं प्रकृति की भयंकरता तथा भीषणता का भी वर्णन किया है। 'मुर्दों का टीला' में प्रकृति के रौद्र रूप का वर्णन प्रकृति की भीषणता को व्यक्त करने में सफल हुआ है। वे लिखते हैं "खरसविणी की विराट् जलधारा की मोटी तह में दूर-दूर के ग्राम बहने लगे, धारा ही धारा छा गयी और कहीं भी कुछ नहीं रहा। मनुष्य, घर, वन, उपवन उसकी चपेट में डूबकर बहने लगे

और अररर करता वह भीषण जल ऐसे बह उठा जैसे महानदी अपनी एक दूसरी सखा से मिलने इधर चली आ रही थी और जब यह दोनों नदियाँ आकर एक दूसरी में मिल गयीं तब पानी का पाट इतना चौड़ा हो गया, इतना चौड़ा विराट् और विस्तृत केवल विस्तृत हो गया कि अंधकार उस पर क्रोध से हिलने लगा.।^{२८} 'महायात्रा : अंधेरा रास्ता' में भी प्रकृति के भयावह रूप का चित्रण किया है। "अब पर्वत पर जल चढ़ रहा था। आकाश में बादल ठहाके मारकर हँसने लगे। अंधकार छा गया, घोर अंधकार छा गया। अचानक बिजली कड़की और फिर टुकड़े-टुकड़े होकर झूलने लगी, जैसे इन्द्र के श्वेत भवन में लम्बी दरारें पड़ गयीं हों। दिगन्तों में से ख सा उठ रहा था। वज्र निर्घोष से आकाश फटा जा रहा था। जल चिल्लाता हुआ सब पर आक्रमण कर रहा था।"^{२९} इस तरह रांगेय राघव के उपन्यासों में अन्य वातावरण की सफल सृष्टि के साथ प्राकृतिक वातावरण भी यथार्थ सजीव रूप में मुखर हुआ है।

भाषा शैली

साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा उपन्यास की भाषा सरल सहज तथा पात्रानुकूल होती है। उपन्यासों की भाषा जन सामान्य की भाषा से निकट होती है। रांगेय राघव यथार्थवादी उपन्यास लेखक है। उन्होंने अपने उपन्यासों में सरल सुबोध जनवादी भाषा को अपनाया है तथा पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। भाषा को जीवन्त तथा व्यापक बनाने के लिए समाज के सभी स्तरों से शब्दों का चयन किया है। संस्कृत निष्ट क्लिष्ट भाषा की अपेक्षा प्रेमचन्द की भाँति सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में प्रवाह तथा स्वाभाविकता विद्यमान है। रांगेय राघव ने तत्सम, तद्भव, देशज के साथ-साथ विदेशी – उर्दू, फारसी, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अपने उपन्यासों में खुल कर किया है। इन्होंने यथास्थान लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा में सरलता स्वाभाविकता तथा प्रभावात्मकता उत्पन्न किया है।

सुशिक्षित पात्रों के माध्यम से रांगेय राघव ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। शिक्षित वर्ग की भाषा परिष्कृत तथा परिमार्जित है। इन्होंने अपने ऐतिहासिक व जीवन चरित्रात्मक उपन्यासों में वातावरण की सृष्टि के लिए संस्कृत तथा तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ 'वटुरिणा, आयोगव, अवरीट, अपस्कार, वयवासह, प्रकोष्ठ, सोपान आदि अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों से लेखक जहाँ प्राचीन वातावरण निर्मित कर सका है वही अकृत्रिमता की रक्षा करने में भी सफल हुआ है। लेखक ने साधारण पाठकों की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए इन शब्दों का अर्थ कोष्ठक में दे दिया है इन्होंने इन शब्दों का यथोचित स्थान पर प्रयोग करके अपनी विद्वता का परिचय दिया है।

रांगेय राघव के उपन्यासों में तद्भव शब्दों के प्रयोग से भाषा में सहजता एवं सरलता आयी है। इनके सामाजिक तथा आंचलिक उपन्यासों में तद्भव शब्दों का खुल कर प्रयोग हुआ है। भाषा को पात्रानुकूल तथा जनभाषा के निकट रखते हुए इन्होंने खुरम, दरद, धरम, निरदय, पन्तर, परजा, परफेसर, सरधा, गोरधान, लोट, मिसिर, टेसन, मुसलिम, नितुर, जिनावर, साकसात्, तिरलोक आदि शब्दों का सफल प्रयोग किया है।

स्थानीय तथा देशज शब्दों के प्रयोग में रांगेय राघव सिद्धहस्त हैं। उनके आंचलिक उपन्यासों में देशज शब्दों का बाहुल्य है इनके आंचलिक उपन्यासों के पात्र अपने स्थान विशेष की भाषा को सफलतापूर्वक बोलाते देखे जा सकते हैं। इन्होंने स्थानीय शब्दों का प्रयोग इन्हीं पात्रों के माध्यम से किया है। काजर, मरजाद, जोबन, जतन, जोनि, न्याव, जिनावर, झोल, कारे, नैक, टुरकैया, आंधरे, बराऊँ, हक्क, ग्रीव, पिरभो, फिकिर शब्दों से वातावरण सृष्टि के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति में सहायता मिली है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में प्रचलित गालियों का भी प्रयोग किया है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में प्रचलित गालियों का प्रयोग किया है – उल्लू, गधा, चुड़ैल, हरामजादी, निगौड़ी, हरामी, साला, भंगी आदि।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में अरबी, फारसी, उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। मुस्लिम पात्र अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं – कयामत, हिज्जे, ईजाद, खुमार, खिदमतगार, बेलज्जत, अफजाई, तकल्लुफ, माशाल्लाह, मुलम्मा, दहलीज, लाहौल-बिलाकूबत, ऐश, हैवान, आशिक, माशूक, खिलाफ, बेफिकर आदि।

रांगेय राघव ने अंग्रेजी के शब्दों के साथ ही साथ पूरे-पूरे वाक्यों का भी प्रयोग किया है जिसके साथ उन्होंने इसका हिन्दी अनुवाद भी दे दिया है। इनके उपन्यासों में मुहावरे तथा लोकोक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग किया है। इनके उपन्यासों के लोकोक्तियों तथा मुहावरों को एकत्र करके कोश तैयार किया जा सकता है। प्रेमचन्द की भाँति इनके उपन्यासों में सूक्तियाँ भी आयी हैं। जिसमें जीवन का सच्चा अनुभव, गर्म तथा सार अभिव्यक्त हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं – अभिव्यक्ति की चरम सीमा मौन है, औरत-औरत की सबसे बड़ी दुश्मन होती है, अधिकार एक धोखा है, जो मनुष्य को खाये जा रहा है, पाप-पुण्य समाज के बदलते हुए नियम हैं, प्रेम समस्त अधिकार चाहता है, प्रतिहिंसा का अन्त क्षमा में है आदि।

रांगेय राघव के उपन्यासों की भाषा कहीं कहीं असावधानी के कारण दोषपूर्ण हो गयी है। ये त्रुटि,

लिंग, वचन आदि की दृष्टि से है। जो भाषा के सहज प्रवाह को अवरुद्ध कर चमत्कार को कम कर देते हैं। परन्तु ये दोष उसके अज्ञान के कारण नहीं अपितु असावधानी के कारण है।

शैली की दृष्टि से रांगेय राघव ने वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी, काव्यात्मक तथा मिश्रित शैली का प्रयोग किया है। जिसमें प्रमुख रूप से वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक शैली उपन्यास की अत्यधिक प्रचलित शैली है। रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'महायात्रा : अंधेरा रास्ता', 'महायात्रा : रैन और चंदा', 'अँधेरे के जुगनू' आदि में इतिहासकार की भाँति घटनाओं का वर्णन किया है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये उपन्यासों में 'हुजूर', 'कल्पना', 'पक्षी और आकाश' आदि प्रमुख हैं। 'हुजूर' में एक विलायती कुत्ता जैक अपने अनुभवों को व्यक्त करता है जो अनेक स्वामियों के घर रहकर समाज के विभिन्न वर्गों पर करारा व्यंग्य करता है। 'कल्पना' उपन्यास की कथा कहने वाला उपन्यास का प्रमुख मात्र नहीं है। जबकि 'पक्षी और आकाश' का नायक धनकुमार इस उपन्यास में मानव जीवन की अनेक समस्याओं को तर्क वितर्क द्वारा उठाता है तथा स्वयं उत्तर भी देता है। कुछ उपन्यासों में आंशिक रूप से इस शैली का प्रयोग हुआ है। रांगेय राघव का 'छोटी सी बात' पूर्णतः पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसके अतिरिक्त अन्य उपन्यासों में भी यह शैली यथास्थान प्रयोग में लायी गयी है। लेखक ने डायरी तथा काव्यात्मक शैली का प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। इसके अतिरिक्त अनेक उपन्यासों की मिश्रित शैली अपनी विशेषता रखती है। लेखक ने अपनी बात स्पष्ट करने तथा कथा को गति प्रदान करने के लिए जिस शैली की जहाँ आवश्यकता अनुभव की उसका सुन्दर प्रयोग किया है। जिससे उपन्यास रोचक तथा प्रभावपूर्ण बने हैं। इस तरह रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में आधुनिक उपन्यास साहित्य की सभी प्रचलित शैलियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। इस प्रयोग में उनकी अपनी विशेषता मिलकर उनके उपन्यासों को अधिक कलात्मकता तथा प्रभावात्मकता प्रदान करती है। शिल्प की दृष्टि से रांगेय राघव के एक-एक उपन्यास महत्वपूर्ण है। इनका प्रथम उपन्यास 'घरौंदे' कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का है। इस उपन्यास को सुन्दर संवेदनशील तथा प्रभावात्मक बनाने में इसकी भाषा शैली विशेष उल्लेखनीय हैं। सरल, व्यवहारिक, प्रवाहमान, काव्यमय तथा विषयानुकूल परिवर्तनशीलता के गुण से युक्त हैं तत्सम् तद्भव शब्दों के साथ अरबी फारसी के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी शब्द तथा अंग्रेजी कविताओं ने उपन्यास को क्लिष्ट बना दिया है। रांगेय राघव ने इनके अर्थ नहीं दिये हैं जिससे पाठक को कठिनाई होती है। इस उपन्यास के संवाद सशक्त तथा पात्रानुकूल हैं। जिसे स्वाभाविक सहज तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विदेशी भाषा तथा कविताओं का प्रयोग किया

है। उपन्यास लेखक ने अपने परिचित स्थान को चुनकर अपने समाजवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार तथा प्रतिपादन किया है। अपनी कुछ कमजोरियों के बावजूद 'घरौंदे' एक सफल सामाजिक उपन्यास है जो रांगेय राघव के भावी संभावनाओं की तरफ सहज ही हमारा ध्यान आकर्षित कराने में सफल है।

'उबाल' उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद आदर्श प्रेम, सेवा एवं त्याग आदर्श आदि है। सत्यपाल का जीवन जहाँ त्याग एवं आदर्श से संचालित है वहीं मनोरमा का जीवन वैभव विलास से पूर्ण है। मनोरमा परिस्थिति के अनुरूप अपने आपको परिवर्तित करती है इस परिवर्तन में ही उसके चरित्र का आकर्षण है। संवाद सरल भाषा में व्यंजित है। प्रायः सभी स्तर के पात्र एक ही भाषा बोलते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने संवादों के माध्यम से पूर्व कथा का संकेत दे दिया है। उपन्यास की प्रत्येक स्थिति मानसिक उबाल का ही परिणाम है।

'बौने और घायल फूल' मध्यवर्गीय नारी समस्या पर आधारित उपन्यास है। इसमें वर्णन का तत्व कम है। संवाद प्रधान इस उपन्यास की भाषा सरल व्यवहारिक है। संवाद सजीव नाटकीय तथा चुटीले हैं। स्थान-स्थान पर विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ न देकर लेखक ने साधारण पाठकों के लिए समस्या खड़ी कर दी है। यह उपन्यास पत्रात्मक तथा प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें देशज भाषा का भी प्रचुर प्रयोग किया है। रांगेय राघव ने समाज में व्याप्त संकीर्ण मान्यताओं का विरोध किया है। रांगेय राघव ने समाज में व्याप्त संकीर्ण मान्यताओं का विरोध किया है। जीवनानुभव से प्राप्त स्वस्थ वैज्ञानिक मान्यताओं का समर्थन किया है। 'बन्दूक और बीन' उपन्यास की शिल्प के विषय में रांगेय राघव ने स्वयं लिखा है "क्राफ्ट के सम्बन्ध में कहूँ कि इस उपन्यास में मैंने सदा की तरह कुछ नये ही प्रयोग किये हैं।" अरबी-फारसी, अंग्रेजी और तद्भव शब्दों से युक्त इस उपन्यास की भाषा सरल तथा प्रवाहमान है। जिसमें पत्रशैली का प्रयोग हुआ है। लेखक को इस नये प्रयोग में पर्याप्त सफलता मिली है। यही कारण है कि उपन्यास स्वाभाविक, मार्मिक तथा प्रभावात्मक है। इस उपन्यास के शिल्प विधान की आलोचकों ने भी मुक्त कण्ठ से पर्याप्त प्रशंसा की है। 'राई और पर्वत' एक चरित्र प्रधान सामाजिक उपन्यास है। शिल्प की दृष्टि रांगेय राघव की एक उत्कृष्ट रचना है। इसके पात्र ब्रज तथा खड़ी बोली बोलते हैं। अशिक्षित ग्रामीण स्थानीय भाषा का प्रयोग करते हैं जिससे उपन्यास में स्वाभाविकता आ गयी है। इस उपन्यास में संवाद के द्वारा व्यंग्य तर्क चिन्तक आदि सभी का समावेश हो गया है। अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के साथ उसके अर्थ को दे देने से भाषा सहज ही बनी हुयी है। इसकी भाषा आदि ने वातावरण निर्माण में भी पूर्ण सहायता प्रदान की है। कुल मिलाकर यह ग्रामीण समस्या व स्थिति को स्पष्ट करने

वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। 'छोटी सी बात' शिल्प की दृष्टि से साधारण उपन्यास है। लेखक ने भाषा को पात्रानुकूल बनाने के प्रयास में अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य प्रयोग किया है। जिससे उपन्यास की सहजता तथा रोचकता में बाधा उत्पन्न हुयी है। लेखक ने इस उपन्यास में व्यंग्य तथा हास्य का भी यथास्थान सफल प्रयोग किया है। पत्र शैली का सफल प्रयोग इनकी कलात्मकता तथा विचारधारा को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हुयी है। 'पापी' उपन्यास भी शिल्प की दृष्टि से साधारण उपन्यास है। इसके संवाद भाव तथा पात्रों के अनुकूल है। कहावतों तथा देशज शब्दों का प्रचुर प्रयोग करके लेखक ने वातावरण सृष्टि तथा उपन्यास की स्वाभाविकता की रक्षा करने में सफल रहा है। व्यंग्य का प्रखर रूप इस उपन्यास में दर्शनीय है। भाषा की दृष्टि से यह रांगेय राघव का परिपक्व उपन्यास है। 'दायरे' रांगेय राघव का विचार प्रधान उपन्यास है। इसकी भाषा तथा शिल्प पर यथार्थवाद का आग्रह महत्वपूर्ण है। विषय तथा पात्र के अनुरूप शैली तथा भाषा परिवर्तन उपन्यास का मुख्य आकर्षण है। इस उपन्यास में अरबी-फारसी अंग्रेजी के अतिरिक्त पंजाबी शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया गया है। सफल व्यंग्य के प्रयोग से उपन्यास में रोचकता तथा प्रभावात्मकता आ गयी है। 'आग की प्यास' एक सफल यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास की भाषा में अरबी फारसी तद्भव तथा लोक शब्दों के अत्यधिक प्रयोग के बाद भी सरल तथा प्रवाहमान है। इस उपन्यास का प्रकृति चित्रण तथा काव्यमय सौन्दर्य इसकी अपनी विशेषता है। इस उपन्यास में नारी पात्रों का पर्याप्त मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। उपन्यास में अभाव प्रधान जीवन की विषमता का यथार्थ चित्रण है। कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा अभिव्यक्ति का आग्रह प्रमुख है। 'कल्पना' उपन्यास सफल आत्मकथात्मक उपन्यास है जिसमें वर्णन कौशल के द्वारा समाज की विविध समस्याओं, धर्म-संस्कृति तथा नीति का सफल अंकन हुआ है। उपन्यास की भाषा सहज तथा प्रवाहमान है। इस उपन्यास के पात्र शिक्षित होने के कारण अंग्रेजी के शब्दों का खुलकर प्रयोग करते हैं। परन्तु लेखक ने पाठकों को ध्यान में रखकर उनका हिन्दी अर्थ भी प्रस्तुत कर दिया है। भाषा को आकर्षक तथा प्रवाहपूर्ण बनाने में कविता का भी हाथ है। इस उपन्यास की भाषा समृद्ध सुगठित तथा सारगर्भित है। कुल मिलाकर यह उपन्यास शिष्य की दृष्टि से रांगेय राघव का एक सफल उत्कृष्ट उपन्यास है। 'पतक्षर' उपन्यास लेखक का दर्शन प्रधान सामाजिक उपन्यास है। भाषा पर असाधारण अधिकार रखने वाला लेखक गम्भीर से गम्भीर विचारों को बड़े ही सहज तथा आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है। मनोविश्लेषण तथा समाजशास्त्रीय विचारों की व्याख्या करते हुए भी रांगेय राघव ने शिल्प की सशक्ता से उपन्यास को बोझिल होने से बचा लिया है। हास्य-विनोद का उपन्यासकार ने कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। संवाद विषयानुकूल तथा पात्रानुकूल है। उर्दू अंग्रेजी के

शब्दों के प्रयोग से उपन्यास में प्रवाह आ गया है। विषय साधारण होने के बावजूद शिल्प की असाधारणता ने उपन्यास को उत्कृष्ट बना दिया है। 'प्रोफेसर' उपन्यास भी दर्शन प्रधान सामाजिक उपन्यास है। भाषा के असाधारण प्रयोग से दार्शनिकता के बाद भी उपन्यास में प्रवाह विद्यमान है। इस उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। जिसमें अंग्रेजी अरबी फारसी तथा उर्दू के शब्दों व अंग्रेजी के वाक्यों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रयोग ने कहीं कहीं भाषा के प्रवाह में भी अवरोध उत्पन्न किया है। तदभव शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। उपन्यास की शिल्पगत कलात्मकता ने इसे प्रभावात्मक तथा सजीव बना दिया है। 'पराया' चरित्र प्रधान सामाजिक उपन्यास है। जिसमें आदर्श तथा विचारों का अभूतपूर्व समन्वय तथा संतुलन दर्शाया गया है। इस उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल सहज तथा स्वाभाविक है। जिसमें तदभव, देशज भाषा के अतिरिक्त संस्कृत तथा अंग्रेजी शब्दों का भी किया गया है। व्यंग्य तथा हास्य के प्रयोग ने उपन्यास की रोचकता प्रदान की है। शिल्प की दृष्टि से एक सफल उपन्यास है। 'आखिरी आवाज' शिल्प की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है। इस यथार्थवादी उपन्यास के विषय तथा शिल्प में पर्याप्त सामंजस्य है। भाषा पात्रानुकूल सरल सहज तथा स्वाभाविक है। विषय तथा प्रसंगानुकूल भाषा में परिवर्तन का गुण विद्यमान है। सोद्देश्य यथार्थ वर्णन में व्यंग्य विशेष सहायक हुआ है। देशज शब्दों के अत्यधिक प्रयोग से भाषा में आंचलिकता का पुट आ गया है। दारोगा जी की गालियों तथा अदालती भाषा के प्रयोग ने उपन्यास के भाषा प्रवाह को कहीं कहीं अवरुद्ध कर बोझिल बना दिया है। लेखक ने स्थान-स्थान पर कविताओं का भी प्रयोग किया है। प्रकृति चित्रण, समाज-चित्रण, चरित्र-चित्रण सबको ध्यान में रखते हुए यह रांगेय राघव की सशक्त रचना है। जिसमें लेखक अपने उद्देश्य को यथार्थवादी ढंग से सशक्त रूप में प्रस्तुत कर सका। 'काका' शिल्प की दृष्टि से एक सशक्त आंचलिक उपन्यास है। भाषा के माध्यम से लोक-रंग को उजागर करने के प्रयास से लेखक सफल रहा है। उपन्यास में आंचलिक तथा देशज शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। जिससे वातावरण निर्माण में सहायता मिली है। लेखक ने जिन आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया है। उसका अर्थ भी साथ ही देकर पाठकों की समस्या का समाधान कर दिया है। लेखक ने सूरदास के पदों का तथा गीता के श्लोकों का भी यथास्थान प्रयोग किया है। इन उद्धरणों के साथ इनका अर्थ भी दे दिया है। अंग्रेजी तथा उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास के संवाद पात्रानुकूल तथा परिस्थिति के अनुरूप है। दारोगा द्वारा सामान्य व्यवहार में दी जाने वाली गालियों ने इसे व्याहारिक बना दिया है। लेखक ने कथा की भाषा तथा चरित्र में सामंजस्य स्थापित किया है। उपन्यास का करुण अन्त दिखाकर लेखक पाठकों की करुणा जगाने में सफलता प्राप्त की है। 'कब तक पुकारूँ' रांगेय राघव का अत्यन्त उत्कृष्ट सफल प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास

हैं इस उपन्यास की भाषा प्रेमचन्द की भाषा से अत्यन्त निकट है। इस उपन्यास में कई रूप के दर्शन एक साथ होते हैं। लेखक द्वारा प्रयुक्त सरल साहित्य भाषा के साथ ही करनट जाति की भाषा व अन्य पात्रों की भाषा विद्यमान है। ब्रज तथा खड़ी बोली के मिश्रण से बनी इसकी भाषा ब्रज की ओर झुकी हुई है। इस उपन्यास में आंचलिक स्थानीय भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी तथा उर्दू के प्रचलित शब्दों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। जो स्थानीय भाषा में घुल मिलकर उनके अपने से हो गये हैं जैसे रपट, बक्स, पुलस, हस्पताल, गवरमन्ट आदि। इसमें स्थानीय मुहावरों कहावतों के साथ उत्तर भारत में प्रचलित गालियों की भी भरमार है। इस उपन्यास में प्रयुक्त प्रतीक तथा दृष्टान्त भी आंचलिक हैं। समग्र रूप से यह उपन्यास शिल्प की दृष्टि सशक्त, व्यवहारिक प्रवाहमान होने के साथ ही साथ साहित्यिक भी है। 'दरती मेरा घर' शिल्प की दृष्टि से नवीन तथा प्रौढ़ उपन्यास है। इस आंचलिक उपन्यास में स्थानीय शब्दों मुहावरों आदि का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। तरन्तु लेखक के कौशल के कारण यह आंचलिकता कहीं भी उपन्यास की कथा को बोझिल नहीं बनाती। देशज तथा कहीं कहीं उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग किया गया है। संवाद स्पष्ट सुन्दर आकर्षक तथा काव्यमय है। कथानक के कुछ अंशों की पुनरावृत्ति तथा अंतिम भाग कविता में होना उपन्यास में अस्वाभाविक सा लगता है। उपन्यास का दुखद अंत दिखाकर लेखक पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल रहा है। उपन्यास अपनी कुछ कमजोरियों के बाद भी सफल तथा उत्कृष्ट है। 'विषाद मठ' एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना को आधार बनाकर लिखा गया उत्कृष्ट उपन्यास है। यह उपन्यास शिल्प की दृष्टि से साधारण हैं लेखक ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। वाक्य छोटे-छोटे तथा भाव उद्देश्य परिस्थितियों को व्यंजित करने वाले है। वर्णनात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास बाह्य परिस्थितियों तथा आन्तरिक भावों को व्यंजित करने में सफल रहा है। लेखक ने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। व्यंग्य का प्रयोग करके भाषा को प्रवाहमान तथा प्रभावी बनाने में सफलता अर्जित की है। अरबी फारसी के बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। जीवन के प्रति लेखक का यथार्थ दृष्टिकोण उपन्यास में व्यंजित है। प्रचलित मुहावरों तथा उपमा का प्रयोग भी उपन्यास के सौन्दर्य वृद्धि में सहायक हुआ है। 'हुजूर' व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। व्यंग्य की धार तीखी तथा पैनी है। कुत्ते के माध्यम से समाज के सभी वर्गों की कथा अभिव्यक्त की गयी है। राजनीतिक वाद विवादों की खुली स्पष्ट व्याख्या उपन्यास की कलात्मक को प्रभावित करती है। हास्य तथा व्यंग्य के सुन्दर समन्वय से सम्पूर्ण समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति सम्भव हो पायी है। संवाद भाव, विचार तथा पात्रानुकूल है। अंग्रेज हिन्दी को भी अंग्रेजी ढंग से बोलते हैं "आप बड़े वफादार हैं, आपकी बात हम नहीं टालने सकता। कुटटा

आपको जरूर डेगा”³⁹ इस उपन्यास में कथ्य शिल्प तथा भाषा तीनों ही नवीन है। रांगेय राघव को इस अभूतपूर्व प्रयोग में पर्याप्त सफलता मिली है। ‘सीधा सादा रास्ता’ एक वृहद यथार्थवादी उपन्यास है। जीवन के यथार्थ को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्त करना लेखक को अभीष्ट है। लेखक ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। जो सशक्त तथा प्रवाहमयी है। भाषा सरल, सहज, प्रवाहमयी तथा व्यवहारिक है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। लोक शब्दों का प्रयोग वातावरण निर्माण में सहायक बन पड़ा है। लोक शब्दों के अतिरिक्त उर्दू अंग्रेजी के शब्दों तथा प्रचलित मुहावरों का प्रयोग उपन्यास के सौन्दर्य वृद्धि में सहायक हुये हैं। ये विदेशी शब्द बहुप्रचलित होने के कारण पाठकों के समक्ष समस्या खड़ी नहीं करते। इस तरह यह उपन्यास महान उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखा गया है। जो शिल्प की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ‘मुर्दों का टीला’ कल्पना प्रधान प्रागैतिहासिक उपन्यास है। लेखक ने अपने अपूर्व कल्पना शक्ति के बल पर इस सुदूर अतीत को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है। यह उपन्यास विषय तथा शैली दोनों दृष्टियों से उद्भूत है। इसमें अलंकारों उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि के प्रयोग से भाषा काव्यमयी हो गयी है। इस उपन्यास का प्रकृति वर्णन भी महत्वपूर्ण है। वाक्य छोटे छोटे सारगर्भित तथा प्रवाहपूर्ण हैं। संवाद पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल सहज तथा स्वाभाविक हैं। जो भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। ‘चीवर’ रांगेय राघव का सफल ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें लेखक के इतिहास तत्व की पूर्ण रक्षा की है। भावात्मक तथा कथात्मक दोनों ही दृष्टिकोण से यह एक सफल उपन्यास है। इस उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल सहज, सरल तथा काव्यात्मक है। संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग हुआ है। बड़े-बड़े वर्णनों के बावजूद भाषा में आकर्षण व प्रवाह विद्यमान है। ‘अंधेरे के जुगनू’ एक साधारण ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक कोई स्पष्ट दृष्टिकोण या विचारधारा को अभिव्यक्त करने में असफल रहा है। गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था से सम्बन्धित अस्पष्ट विचारों को अभिव्यक्ति मिला है। उपन्यास का कारुणिक अन्त भी पाठक को प्रभावित नहीं कर पाता। तत्सम तथा संस्कृत के अप्रचलित शब्दों के प्रयोग द्वारा वातावरण की सृष्टि की गयी है। लेखक ने अप्रचलित शब्दों का अर्थ देकर पाठकों की समस्या का समाधान कर दिया है। काव्यमीय भाषा का प्रयोग उपन्यास को सरस बनाने में सफल हुआ है। ‘राह न रूकी’ उपन्यास शिल्प की दृष्टि से आकर्षक तथा सफल है। आत्मकथात्मक शैली में कही गयी इस उपन्यास की कथा में प्रवाह विद्यमान है। दार्शनिक विवेचन की अधिकता के कारण वाक्य सशक्त तथा गम्भीर है। उपन्यास में लेखक के विचारों को अत्यधिक स्थान मिला है। लेखक ने ऐतिहासिक वातावरण में अनेक समस्याओं को उठाकर उसके समाधान की ओर भी संकेत किया है। इस तरह मानवता को अतीत की भूमि पर खड़ा करके उसके

समाधान की ओर भी संकेत किया है। इस तरह मानवता को अतीत की भूमि पर खड़ा करके उसके उज्ज्वल भविष्य की ओर भी संकेत भी दिया है। 'पक्षी और आकाश' एक सफल आत्मकथात्मक उपन्यास है। दार्शनिक विचारों की अधिकता से इसके ऐतिहासिकता को आघात पहुँचा है। वातावरण निर्माण के लिए संस्कृत के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया है। प्रकृति चित्रण में भी संस्कृत कवियों की पद्धति को अपनाया है। भाषा में प्रवाह तथा काव्यात्मकता विद्यमान है। व्यंग्य तथा हास्य उपन्यास को सहज बनाने में सहायक हुए हैं। 'जब आवेगी काल घटा' में शिल्प की दृष्टि से प्रौढ़ता तथा नवीनता विद्यमान है। यह सामान्य शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। लेखक पात्र घटना तथा वातावरण सृष्टि आदि ऐतिहासिकता की रक्षा करने में पूर्ण सफल रहा है। योगियों तथा तुकों की भाषा का प्रयोग किया है। अप्रचलित शब्दों का अर्थ देकर पाठकों की समस्या का समाधान कर दिया है। 'महायात्रा गाथा : अंधेरा रास्ता' प्रागैतिहासिक काल पर आधारित कल्पना तथा तर्क प्रधान उपन्यास है। इस वृहत उपन्यास में इतिहास तथा कथा का अभूतपूर्व सामंजस्य देखा जा सकता है। मानव सभ्यता के क्रमिक विकास को लेखक ने अत्यन्त सरल भावानुकूल भाषा में व्यक्त किया है। प्रकृति चित्रण तथा पात्रों के माध्यम से वातावरण की सृष्टि की है। सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ भाषा परिवर्तन भी हुआ है। संवाद छोटे-छोटे परिस्थिति व भाव के अनुकूल है। इस उपन्यास की महान उपलब्धि यह है कि लेखक ने ठोस प्रमाणों तथा स्पष्ट तर्कों के माध्यम से अनेक ऐतिहासिक मतों का खण्डन किया है। 'महायात्रा गाथा : रैन और चंदा' भी 'अंधेरा रास्ता' की तरह वृहत शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इतिहास के शुष्क धरातल पर काव्यात्मक शैली में लिखा गया रोचक उपन्यास है। जिसकी भाषा में विषयानुकूल परिवर्तन तथा प्रवाह विद्यमान है। लेखक ने संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है तथा प्रसंगानुसार संस्कृत श्लोकों को भी उद्धृत किया है। पाठकों को ध्यान में रखते हुए उसका अर्थ भी दे दिया है। लेखक ऐतिहासिकता की रक्षा करने में पूर्ण सफल है। लेखक प्रबल तर्क व प्रमाणों के आधार पर अनेक स्थापनाएँ भी प्रस्तुत कर सका है। 'देवकी का बेटा' शिल्प की दृष्टि से एक सशक्त रचना है। इसका कथानक महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा उपनिषदों पर आधारित है। अधिकांश पात्र पुराण सम्मत है। लेखक ने तत्कालीन प्रचलित भाषा को अपनाया है। उपन्यास की शैली में काव्यात्मकता विद्यमान है। कृष्ण को देवत्व के पद से उतार इस चर्चित व्यक्ति को अपनी स्मृति व कल्पना के आधार पर पाठकों के समक्ष कुछ इस तरह उपस्थित किया है कि पाठकों में नया दृष्टिकोण विकसित हो सके। यह उपन्यास तत्कालीन समस्त परिस्थितियों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त कर सका है। 'यशोधरा जीत गयी' गौतम बुद्ध के जीवन पर आधारित उपन्यास है। जो शिल्प की दृष्टि से साधारण सफल उपन्यास है। लेखक ने यशोधरा के माध्यम से रुढ़िवादी समाज

में नारी का विद्रोह दिखाया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है। काव्यमयी भाषा ने इसे सहजता एवं सरलता प्रदान की है। उपन्यास में प्रकृति चित्रण भाषा तथा पात्र सभी वातावरण सृष्टि में सहायक हुये हैं। 'लोई का ताना' रांगेय राघव का एक सफल प्रौढ़ तथा शिल्प की दृष्टि से नवीन रचना है। मरणासन्न तुलसी ने अपने संघर्षपूर्ण जीवन को समग्रता में व्यक्त करते हैं। उपन्यास को आकर्षण बनाने के लिए स्वप्न आदि का सहारा लिया गया है। शैली काव्यात्मक है स्थान-स्थान पर व्यंग्य भी दृष्टिगत् है। हिन्दी तथा संस्कृत के अनेक पदों का प्रयोग तथा उसके अर्थ को स्पष्ट न करना उपन्यास को बोझिल बनाता है। इस उपन्यास में नारी जागरण का स्वर भी प्रधान है। जो रत्ना के माध्यम से चित्रित है। 'भारती का सपूत' एक सफल लघु औपन्यासिक जीवनी है। जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधार बनाकर उनके सम्बन्ध में प्रचलित अनेक भ्रान्तियों का तर्कसंगत वैज्ञानिक ढंग से खण्डन किया है। भाषा पात्रानुकूल तथा संवाद भावों तथा पात्रों के अनुरूप है। अन्य उपन्यासों की अपेक्षा पदों की संख्या कम है। जो कथावस्तु के सहज विकास में सहायक है। सभी तत्वों का सानुपातिक समन्वय इस उपन्यास को आकर्षक बनाता है। लेखक ने पात्रों का यथार्थ सहज विकास दिखाया है। 'लखिमा की आंखें' काव्यात्मक शैली में लिखा गया सशक्त उपन्यास है जिसमें लेखक ने विद्यापति को केन्द्र बनाकर तत्कालीन समाज का चित्रण किया है। समास प्रधान तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। परन्तु इससे उपन्यास के प्रवाह में बाधा नहीं पहुँची है। लेखक ने पात्रों का चरित्र चित्रण ऐतिहासिकता की सीमा में अपनी कल्पना को रखकर किया है। 'धूनी का धुआं' विचार प्रधान औपन्यासिक जीवनी है। यह उपन्यास दार्शनिक विवेचनों की बहुलता के कारण नीरस हो गया है। शैली वर्णनात्मक है। उपन्यास की अधिकांश घटनाएं प्रामाणिक है। जो लेखक के गहन अध्ययन तथा सर्तकता का परिणाम है। 'मेरी भवबाध ॥ हरो' प्रभावशाली औपन्यासिक उपन्यास है। बिहारी को कथा के केन्द्र में रखकर तत्कालीन युग को चित्रित किया है। उपन्यास की भाषा तथा संवाद पात्रानुकूल भावानुकूल है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए तार्किक संवादों का सहारा लिया गया जिसमें प्रवाह विद्यमान है। वातावरण सृजन ऋतु वर्णन तथा काव्यमयी भाषा का प्रयोग उपन्यास को सहज सरल बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। कुल मिलाकर यह उपन्यास लेखक के कलात्मक कौशल के कारण शिल्प की दृष्टि से सशक्त है। 'आंधी की नीवें' एक सशक्त प्रभावशाली उपन्यास है। लेखक ने महाराणा प्रताप तथा महारानी लक्ष्मी के जीवन को आधार बनाकर तत्कालीन समाज की समस्त परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया है। इसके अधिकांश पात्र ऐतिहासिक है। लेखक ऐतिहासिकता की पूर्ण रक्षा करने में सफल रहा है। भाषा भावानुकूल तथा पात्रानुकूल है। इसकी शैली काव्यात्मक है। लेखक ने कल्पना के माध्यम से ऐतिहासिकता की पूर्ण रक्षा करते हुए उपन्यास को सरल सहज तथा स्वाभाविक बनाया है।

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि रांगेय राघव ने शिल्प की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग भी किये जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। शिल्प की दृष्टि से वे अपने सामाजिक उपन्यासों में जहाँ प्रेमचन्द की परम्परा से जुड़ते हुए दिखाई देते हैं वहीं राजनीतिक उपन्यासों में यशपाल के निकटवर्ती प्रतीत होते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में वृन्दावन लाल वर्मा प्रभावित देखे जा सकते हैं। इस तरह लेखक सबसे प्रभावित होते हुए भी अपनी शिल्पगत विशेषता रखता है।

सन्दर्भ

१. प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान – डा० कमल किशोर गोयनका, पृ० १३ से उद्धरित।
२. साहित्य संदेश – डा० सत्येन्द्र, जुलाई-अगस्त १९५६, पृ० ५६
३. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि – डा० सत्यपाल चुघ, पृ० ४०८
४. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डा० त्रिभुवन सिंह, पृ० ५६४
५. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन – डा० ब्रजभूषण सिंह, पृ० ४७६
६. कहानी का रचना विधान – डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ० १२१
७. साहित्यालोचन – डा० श्यामसुन्दर शर्मा, पृ० १७२
८. समालोचक – डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, फरवरी १९५६, पृ० १०४
९. कब तक पुकारूँ – डा० रांगेय राघव, भूमिका
१०. आखिरी आवाज – डा० रांगेय राघव, भूमिका
११. घरौंदे – डा० रांगेय राघव, पृ० २६८
१२. महाकाव्य विवेचन – डा० रांगेय राघव, पृ० ११७-१८
१३. देवकी का बेटा – डा० रांगेय राघव, पृ० १४७
१४. देवकी का बेटा – डा० रांगेय राघव, भूमिका
१५. यशोधरा जीत गयी – डा० रांगेय राघव, भूमिका
१६. अरस्तु का काव्य शास्त्र – डा० नगेन्द्र, पृ० ६६
१७. काव्य के रूप – बाबू गुलाब राय, पृ० १६२
१८. वही, पृ० १८७
१९. कुछ विचार – प्रेमचन्द, पृ० ७२
२०. कहानी का रचना विधान – डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
२१. प्रोफेसर – डा० रांगेय राघव, पृ० ४६-४७
२२. साहित्यालोचन – डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० १७२
२३. हिन्दी उपन्यास – शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० ४२७
२४. आखिरी उपन्यास – डा० रांगेय राघव, भूमिका
२५. साहित्यालोचन – डा० श्यामसुन्दर दास, पृ० ६४
२६. महायात्रा गाथा : अंधेरा रास्ता – डा० रांगेय राघव, पृ० १६४
२७. मेरी भव बाधा हरो – डा० रांगेय राघव, पृ० ११२
२८. मुर्दों का टीला – डा० रांगेय राघव, पृ० ३७३
२९. महायात्रा गाथा : अंधेरा रास्ता – डा० रांगेयराघव, पृ० ४३३
३०. बन्दूक और बीन – डा० रांगेय राघव, भूमिका
३१. हुजूर – डा० रांगेय राघव, पृ० ३६

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा भारतेन्दु युग से ही विद्यमान रही है। परिस्थितियों की माँग तथा युग जीवन के यथार्थ ने साहित्य को प्रभावित किया। १९३५-३६ में राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं की तरह साहित्यकारों के समक्ष भी दो विकल्प थे। प्रथम विकल्प साहित्य को निराशा, जड़ता, कल्पना और सौन्दर्य के कृत्रिम आवरणों से बाहर निकालकर उसे जनमानस की इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप यथार्थ के प्राणवान सन्दर्भों में रूपायित करते हुए एक प्रगतिशील समाजवादी आकृति दी जाय। दूसरे विकल्प के रूप में जनमानस की आकांक्षाओं की अवहेलना कर, यथार्थ जीवन से कटकर, यथार्थ मानव मूल्यों से पलायन कर साहित्य तथा साहित्यकार दोनों के निःशेष हो जाने का खतरा उठाये। इस स्पष्ट विकल्प के कारण अविलम्ब निर्णय के परिणामस्वरूप भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई।

प्रगतिवादी आन्दोलन के जीवन के प्रति एक स्पष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। प्रगतिशील लेखकों ने साहित्य को जनता के लिए तथा जन साधारण की प्रगति के लिए स्वीकार किया। इन लेखकों ने साहित्य को कल्पना के आकाश से उतार कर यथार्थ की कठोर धरती पर ला खड़ा किया। उनकी दृष्टि जीवन की विसंगतियों तथा समस्याओं की ओर गयी। निराशा, पराजय तथा अनास्था के स्थान पर सप्राण, सजीव, आशाप्रद साहित्य की सृष्टि का आह्वान किया। इन लेखकों ने स्वयं ऐसा साहित्य रचकर समाज को दिशा तथा गति प्रदान की। जिसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि जनसाधारण की आशाओं, आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति मिलने लगी। साहित्य में युगीन राष्ट्रीयता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद का भी समावेश हुआ। इस तरह प्रगतिवादी आन्दोलन ने साहित्य को न सिर्फ अतिशय कल्पनाशीलता से मुक्ति दिलायी अपितु उसे कोरी भावुकता से निकालकर बौद्धिक आधार प्रदान किया। इस आन्दोलन ने साहित्य का सम्बन्ध सामाजिक विकास से तथा उसकी कसौटी समाज तथा सामाजिक जीवन स्वीकार किया है।

प्रगतिवादी आन्दोलन के साहित्य के अतिवादी पात्रों व नायकों का विरोध किया। पारम्परिक नायकों के स्थान पर जनसाधारण को नायकत्व प्रदान किया। आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों में नामवर सिंह लिखते हैं "कथाकारों को प्रगतिवादी दृष्टिकोण ने सामाजिक मार्क्सवाद के दो खतरों से बचाने का प्रयत्न किया

है। एक खतरा तो मनोविश्लेषणवाद की ओर से है। जिसमें या तो शेखर और भुवन जैसे सर्वथा अहंवादी और असाधारण पात्रों की सृष्टि की जाती है अथवा इलाचन्द्र जोशी के सेक्सग्रस्त अद्भुत नायकों का निर्माण होता है। इन दोनों के असाधारणताओं से उबार कर प्रगतिवाद ने साधारण पात्रों के निर्माण का गुर बताया।”

प्रगतिवादी आन्दोलन के लोकजीवन तथा लोक संस्कृति के पुनरुद्धार का कार्य भी किया। इनके सराहनीय प्रयास के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न अंचलों में वहाँ की बोलियों में साहित्य सृजन करने वाले अनेक साहित्यकारों का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी साहित्य का आंचलिक उपन्यास इसी का परिणाम है। इसके प्रभाव से अनेक प्रगतिशील पात्रों का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्रगतिवादी चेतना से परिपूर्ण अनेक पुस्तकें भी लिखी गयी। इस तरह इस आन्दोलन ने साहित्य और जनजीवन की चेतना को एक नया आयाम प्रदान किया। यही वजह है कि तत्कालीन अन्य सामान्य साहित्यकारों से लेकर कवीन्द्र रवीन्द्र और प्रेमचन्द जैसे उच्चकोटि के साहित्यकारों ने इसे प्रबल समर्थन प्रदान किया।

साहित्य को एक नवीन दिशा देने के उद्देश्य से कुछ जागरूक बुद्धिजीवियों के प्रयास स्वरूप सन् १९३५ में लंदन के नानकिंग रेस्टोरेण्ट में प्रगतिशील लेखकों की एक बैठक हुई जिसकी अध्यक्षता ई०एम० फास्टर ने की। इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र को वहाँ के भारतीय लेखकों ने अपने हिन्दुस्तान में रहने वाले साहित्यकारों को भेजकर भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की जानकारी दी। जिसका भारतीय साहित्यकारों ने विशेष रूप से प्रेमचन्द ने स्वागत किया तथा उनकी योजनाओं पर पूर्ण सहमति व्यक्त की। मुल्कराज आनन्द तथा सज्जाद जहीर के संतत प्रयत्नों से भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। जिसका प्रथम अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में १९३६ में लखनऊ में हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में साहित्य के उद्देश्य पर अपना विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा “अब उनका उद्देश्य मनोरंजन, संयोग-वियोग, नायक-नायिका की कहानी मात्र का निर्माण करना नहीं है अपितु उन प्रश्नों को भी उठाना है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। इस संघ का उद्देश्य साहित्य एवं कला में गति पैदा करना है। जीवन की यथार्थताओं का चित्रण करना और जनता के सुख-दुख और कशमकश की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति करके उनको उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाना है जिनके लिए आज विश्व का मानव समाज कोशिश कर रहा है।” इस प्रकार प्रेमचन्द ने निराशा जनित साहित्य को व्यर्थ तथा संघर्ष एवं कर्म द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाले साहित्य को आवश्यक बताया है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द के आगमन के साथ अमूलभूत परिवर्तन आया। प्रेमचन्द ने साहित्य को न सिर्फ जीवन से जोड़ने का प्रयास किया अपितु जीवन को साहित्य की नींव के रूप में स्वीकार किया। साहित्य में प्रेमचन्द के साथ जो सापेक्षता आयी वह उनकी सबसे बड़ी देन है। प्रेमचन्द ने साहित्य को घटना वैचित्र्य की परिधि से अलग कर समाज से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने जीवन को अन्तर्जगत् तक सीमित नहीं माना बल्कि जीवन की महत्ता समाज सापेक्षता में स्वीकार किया है। संघर्ष समाज सापेक्ष जीवन का सत्य है।

प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले अन्य प्रमुख लेखकों में रांगेय राघव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के तीसरे अधिवेशन से हिन्दी साहित्य में ख्याति अर्जित की। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार रांगेय राघव ने एक सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर भी अत्यन्त साधारण जीवन व्यतीत किया। उन्होंने जीवन तथा जगत् का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर उसे अपने साहित्य में व्यक्त किया। रांगेय राघव ने मार्क्सवाद का विधिवत् अध्ययन किया। वे मार्क्स के सिद्धान्तों को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर व्यवहार में लाना चाहते थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी – यदि भारतवर्ष में मार्क्सवादी परम्पराएँ स्वीकृत हुईं तो निश्चित ही उनका वह रूप स्वीकार नहीं हो पायेगा जो रूस या साम्यवादी देशों में है क्योंकि इस देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ भारतवर्ष से अत्यन्त भिन्न हैं। रांगेय राघव ने प्रगतिवाद की अतिवादी भूमियों का विरोध किया है। प्रगति के नाम पर भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा साहित्य परम्परा के विरोध को घातक माना है। उन्होंने सम्पूर्ण पुरातन का विरोध न करके प्रतिक्रियावादी तत्वों का विरोध किया है। इसी आधार पर मूल्यांकन करते हुए उन्होंने कबीर तथा नानक को प्रगतिशील सिद्ध किया है।

रांगेय राघव साहित्य और समाज का गहरा सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। वे युग के यथार्थ अभिव्यक्ति को साहित्य का आधार मानते हैं। प्रगतिशील साहित्य की व्याख्या करते हुए लिखते हैं – यथार्थ चित्रण साहित्य को वह शक्ति देता है जिससे वह मानवीय हृदय को आकृष्ट कर सके। जिस साहित्य में ये सभी गुण नहीं होते वह न केवल अप्रगतिशील है बस साहित्य ही नहीं है। उन्होंने अपने साहित्य में समाज की अनेक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में व्याप्त विषमता को प्रगतिशील समाज के निर्माण में बाधक स्वीकार किया। रांगेय राघव के अनुसार साहित्य समग्र मानव का एक नया जीवन दर्शन है। जो वर्गवाद को मिटाकर मनुष्य का एक ऐसा सुखी समाज बना सके जहाँ मनुष्य विज्ञान की सहायता से सृष्टि

के रहस्यों को समझ सके। उन्होंने प्रगतिवाद को सामाजिक यथार्थ के रूप में स्वीकार किया है। उनकी प्रमुख विशेषता है कि वे अपने साहित्य में न कहीं उपदेशक के रूप में आये हैं और नही आदर्शवादी नेताओं की तरह आदर्शों के सहारे समस्याओं का समाधान किया है। वे समाज को उसकी यथार्थ स्थिति तथा समस्याओं से अवगत कराते हुए भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, सुख-दुख का चित्रण कर मानव के अन्तर्मन का अवलोकन करते हुए अपने उपन्यासों का कथानक निर्मित किया है। उनकी स्पष्ट मान्यता है – यथार्थ जीवन का वास्तविक चित्रण है। जो समाज की विकृतियों को दूर करने में लगी है। समाज की मूल विकृति है सम्पत्ति के उत्पादन एवं वितरण में असमानता। मनुष्य का मूल कर्तव्य इस असमानता को दूर करना है। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया तथा सामाजिक विडम्बनाओं से पीड़ित स्त्री-पुरुष की यथार्थ स्थिति को अभिव्यक्त किया है। इन समस्याओं में नारी पराधीनता तथा सामंती व्यवस्था की बाह्य संरचना का ही चित्रण नहीं है अपितु उन्होंने जातिप्रथा, जमींदारी प्रथा, महाजनी व्यवस्था, किसान मजदूरों का शोषण, उत्पीड़न, अस्पृश्यता आदि का यथार्थ चित्रण किया है। समाज की विभिन्न समस्याओं को केन्द्र बनाकर उन्होंने एकतालिक उपन्यासों की रचना की।

रांगेय राघव का साहित्य सृजन प्रेमचन्दोत्तर काल से प्रारम्भ होता है। परन्तु उन्होंने समकालीन जनजीवन के साथ-साथ भारत के अतीत कालीन परिवेश अर्थात् प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक समय के भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन का बहुमुखी चित्रण किया है। उन्होंने इतिहास सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं पर अपनी दृष्टि से विचार किया तथा इतिहास के सम्बन्ध में अनेक प्रबल तर्कसंगत प्रमाणों के आधार पर अपनी स्पष्ट रचनाएँ भी दी। रांगेय राघव के सभी उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। उन्होंने प्रगतिवादी साहित्य की सुनिश्चित भावधारा का समग्र मूल्यांकन करते हुए उनका उचित एवं स्पष्ट पथ-प्रदर्शन भी किया।

रांगेय राघव के उपन्यास साहित्य में प्रागैतिहासिक काल से लेकर सन् १९६० तक की घटनाओं का सम्पूर्ण विवरण मिलता है। उन्होंने परिवर्तनशील मानव मूल्यों का यथार्थ चित्रण किया है। वे समाज व्यवस्था के लिए रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं का महत्व स्वीकार करते हैं। किन्तु परम्परागत रूढ़ियों को मनुष्य तथा समाज के विकास में अवरोधक मानते हैं। जाति एवं वर्ण को अपरिवर्तनशील मान उसे कर्मफल से सम्बद्ध कर निम्नवर्ण व जाति का निरन्तर शोषण किया जाता रहा है। यह जाति वर्ण भेद वैदिक काल से लेकर आज के आधुनिक भारतीय समाज तक में व्याप्त है। जातिगत विद्वेष की जो अग्नि आज से कई

सौ वर्ष पहले प्रज्ज्वलित हुई थी वह तब से लेकर आज तक धधक रही है। इस समस्या का समाधान आज भी भारतीय समाज के पास नहीं है। रांगेय राघव ने प्रगतिवादी दृष्टि से इस समस्या का निदान वर्ण संक्रमण तथा जातिगत सम्मिश्रण में तलाश किया है। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता पर प्रहार करने के साथ ही साथ इसे हवा देने वालों को भी बेनकाब किया है। उनके पात्र समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध संघर्षरत हैं। वे समाज द्वारा थोपे गये सभी अनुचित एवं संकीर्ण मान्यताओं को तोड़ने के लिए संकल्पबद्ध हैं। वह बंधन जाति का हो या धर्म का, वे कहीं भी समझौता नहीं करते।

रांगेय राघव के उपन्यासों के प्रत्येक वर्ग को स्थान मिला है। किन्तु मध्यवर्ग को प्रमुख रूप से उसकी सम्पूर्णता में समस्त सबलता एवं दुर्बलता के साथ यथार्थरूप में चित्रित किया है। यह वर्ग समाज की प्रत्येक समस्या के प्रति जागरूक है। वह समाज में व्याप्त गरीबी, अव्यवस्था, रूढ़ियों एवं कुरीतियों से क्षुब्ध होता है तथा उसे समाप्त करने का भी प्रयास करता है। मध्यवर्ग का व्यक्ति सदैव किसी न किसी समस्या से ग्रस्त रहता है यह वर्ग अपने अधिकारों एवं उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक भी है। यह वर्ग समाज का क्रियाशील वर्ग रहा है। जिस कारण प्रत्येक क्रान्ति तथा परिवर्तन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह वर्ग समाज की प्रत्येक समस्या से प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप समस्याओं के निदान का प्रयास करने वाला यह वर्ग समाज का सबसे प्रगतिशील वर्ग रहा है। इस वर्ग के व्यक्तियों की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि प्रायः व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के वशीभूत कोई भी घृणित अमानवीय कार्य कर सकता है। रांगेय राघव ने मध्यवर्ग की नारियों का यथार्थ चित्रण किया है। जो सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक नियम तथा कुल प्रतिष्ठा आदि से दबी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित एक अभिशप्त दयनीय जीवन व्यतीत करने को विवश है। उन्होंने नारी समस्या का मुख्य कारण नारी की आर्थिक परतंत्रता को स्वीकार किया है। नारी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी तथा समर्थ बनकर ही इन समस्याओं से मुक्ति पा सकती है। रांगेय राघव ने समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति के लिए पुरुषों को जिम्मेदार ठहराया है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि पुरुष ने नारी को कलंकित किया। सतीत्व को नारी चरित्र की श्रेष्ठता का मानदण्ड माना, ऐसे में सतीत्व भ्रष्ट नारी को जीने के लिए विवश होकर वेश्यावृत्ति करनी पड़ी। रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में सामाजिक विकृति, विषमता, दरिद्रता आदि का न सिर्फ विस्तृत चित्रण किया है अपितु उसे समाप्त करने का उचित मार्ग भी दिया है। वे स्वयं लिखते हैं – जीवन की विषमता को रटना मेरा ध्येय नहीं है। उसे मिटाना मेरा उद्देश्य है। रांगेय राघव के अनुसार समाज की सबसे बड़ी बुराई धन है। धन सम्पत्ति की

विषमता ने व्यक्ति तथा समाज को अभिशप्त बना रखा है। समाज में शोषक तथा शोषित प्रत्येक युग में रहे हैं। गरीबों पर सामाजिक परिवर्तन का कोई असर नहीं पड़ा। समय तथा व्यवस्था के परिवर्तन के बाद भी वह गरीब ही बना रहा। मनुष्य का व्यवहार भी पूर्ववत् बना रहा जिससे असमानता की दरार कम होने के बजाय बढ़ती गयी। उन्होंने दास प्रथा तथा शासकों के अत्याचारों का प्रबल विरोध किया है। उन्होंने दासों तथा शोषितों को समानता एवं स्वतंत्रता के लिए उच्चवर्ग के प्रति विद्रोह के लिए प्रेरित किया है। वे इस शोषण को ईश्वर का विधान स्वीकार करके मौन होकर सहने की अपेक्षा एकजुट होकर संघर्ष करने को अधिक श्रेष्ठ समझते हैं।

रांगेय राघव ने अपने उपन्यास साहित्य में धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में भी पर्याप्त लिखा है प्राचीन काल में मानव ने जिस भावना तथा उद्देश्य को लेकर धर्म का निर्माण किया, वह कालान्तर में विद्यमान न रह सका। धर्म कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की सम्पत्ति बन गया। पुरोहित वर्ग ने शासकों के इच्छानुसार धर्म की व्याख्या की। शासक वर्ग ने स्वयं को ईश्वर प्रदत्त व्यक्ति घोषित किया तथा कल्पित ईश्वर का भय दिखाकर सामान्य जनता का शोषण किया। धर्मपरायण सामान्य जनता अपनी दयनीय स्थिति तथा शोषण को पूर्व जन्मों का फल मानकर संतुष्ट इनकी गुलामी करती रही। लेखक ने धर्म तथा आध्यात्मिकता को मानव निर्मित माना है। इसे मनुष्य के भय, पराजय तथा दुख का कारण बताया है। उन्होंने धर्माडम्बर एवं अंधविश्वासों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया तथा आधुनिक युग के यथार्थ धरातल पर परख कर स्वीकार करने की सलाह दी। उनकी मान्यता है – हमारे विश्वास अंधे और मान्यताएँ पंगु हैं। आज की मांग है हम अपनी आस्थाओं को आह्वानों की कसौटी पर कसकर देखें। अपने मानदण्डों को एकांगी नहीं वरन् सम्यक् औचित्य की तुलना पर तौलें। मनुष्य की प्रकृति सदैव प्रगतिशील रही है। वह अपने विकास के लिए निरन्तर अतीत से वर्तमान के लिए तथा वर्तमान से भविष्य के लिए संघर्ष करता रहा है। समय के प्रवाह में समाज में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। इस नियम के अनुसार कालान्तर में रुढ़ तथा अनुपयोगी हो जाने पर चीजें नष्ट हो जाती हैं तथा नई चीजें आकार ग्रहण करती हैं। मनुष्य भौतिक जगत् का प्राणी होने के साथ ही साथ सृष्टि का कर्ता भी है। इस सृजन प्रवृत्ति में ही उसकी प्रगतिशीलता निहित है। रांगेय राघव के उपन्यासों में इसी प्रगतिशीलता का चित्रण सर्वत्र हुआ है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में समेटकर उसकी सम्पूर्णता में व्यक्त किया है। उन्होंने समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्त समस्याओं का समाधान प्रगतिशील दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों का मुख्य ध्येय स्वस्थ समाजवादी समाज का निर्माण

करना है। जहाँ मानव द्वारा मानव के श्रम का शोषण कर पूँजी एकत्रित न की जा सके। मानवीय गरिमा और समानता के आधार स्तंभ पर आधारित समाज रांगेय राघव के साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है। लेखक की दृष्टि में यथार्थ का उद्घाटन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

परिशिष्ट

- (क) भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ
के घोषणा-पत्र ।
- (ख) आधार ग्रन्थ
- (ग) सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ
- (घ) पत्र-पत्रिकाएँ

भारतीय 'प्रगतिशील लेखक संघ' के घोषणा-पत्र

लंदन में तैयार हुए 'प्रगतिशील लेखक संघ'
के घोषणा-पत्र का सारांश

भारतीय समाज में बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। पुराने विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं और एक नये समाज का जन्म हो चुका है। भारतीय साहित्यकारों का धर्म है कि वे भारतीय जीवन में पैदा होने वाली क्रान्ति को शब्द और रूप दें और राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर चलाने पर सहायक हों। भारतीय साहित्य पुरानी सभ्यता के नष्ट हो जाने के बाद से, जीवन की यथार्थताओं से भागकर उपासना और भक्ति की शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ कि वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है, रूप में भी और अर्थ में भी। आज हमारे साहित्य में भक्ति और वैराग्य की भरमार हो गई है। भावुकता का ही प्रदर्शन हो रहा है, विचार और बुद्धि का एक तरह से बहिष्कार कर दिया गया है। पिछली दो सदियों में, विशेषकर इसी तरह का साहित्य रचा गया है जो हमारे साहित्य का लज्जास्पद काल है। इस सभा का उद्देश्य अपने साहित्य और दूसरी कलाओं को पुजारियों, पंडितों और अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकलकर उन्हें जनता के निकटतम संसर्ग में लाना, उनमें जीवन और वास्तविकता लाना है, जिससे हम अपने भविष्य को उज्ज्वल कर सकें। हम भारतीय सभ्यता की परम्पराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की निर्दयता से आलोचना करेंगे, जिससे हम अपनी मंजिल तक पहुँच सकें। हमारी धारणा है कि भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए और वे हैं : हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनीतिक पराधीनता का प्रश्न। तभी हम इन समस्याओं को समझ सकेंगे और तभी हममें क्रियात्मक शक्ति आएगी। वह सब कुछ तो हमें निष्क्रियता, अर्कमण्यता और अंधविश्वास की ओर ले जाता है, हेय है, वह सब कुछ जो हम में समीक्षा की मनोवृत्ति लाता है जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।

- हंस जनवरी १९३६ में प्रकाशित

**प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन
का घोषणा-पत्र (अप्रैल १९३६)**

भारतीय समाज में बड़े-बड़े परिवर्तन हो रह हैं। पुराने विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं और एक नये समाज का जन्म हो रहा है। भारतीय लेखकों का धर्म है कि वे भारतीय जीवन में पैदा होने वाली क्रान्ति को शब्द और रूप दें और राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर चलाने में सहायक हों।

भारतीय साहित्य की विशेषता यह रही है कि वह जीवन की यथार्थताओं से भागता है और वह वास्तविकता से मुँह मोड़कर भक्ति और उपासना की शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ है कि यह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है, रूप में भी अर्थ में भी और आज हमारे साहित्य ने विचार और बुद्धि का एक प्रकार से बहिष्कार कर दिया है।

हमारे इस संघ का उद्देश्य साहित्य और दूसरी कथाओं को अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर उन्हें जनता के निकटतम संपर्क में लाया जाए, उनमें जीवन और वास्तविकता लाई जाए और वे उसे उज्ज्वल भविष्य का मार्ग दिखाएं जिसके लिए मानवता इस युग में संघर्षशील है।

हम भारतीय संस्कृति की परम्पराओं की रक्षा करते हुए देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की बड़ी निर्दयता से आलोचना करेंगे। हम इस संघ के द्वारा हर उस भावना को व्यक्त करेंगे जो हमारे देश को एक नए और बेहतर जीवन का मार्ग दिखाए। इस काम में हम अपनी और विदेशों की बुनियादी समस्याओं को अपना विषय बनायें। वे हैं हमारी रोटी की, हमारी दरिद्रता हमारी सामाजिक अवनति की और हमारी राजनीतिक पराधीनता की समस्याएँ।

वह सब कुछ जो हमें निष्क्रियता, अकर्मण्यता और अंधविश्वास की ओर ले जाता है हेय है। हम उसका विरोध करते हैं।

वह सब कुछ जो हममें समीक्षा की प्रवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मठ बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।

संघ के उद्देश्य होंगे –

१. भारत के तमाम प्रगतिशील लेखकों की संस्थाएं संगठित करना और साहित्य छापकर अपने उद्देश्यों का प्रचार करना।
२. प्रगतिशील लेखकों और अनुवादकों को प्रोत्साहित करना और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके देशवासियों के स्वतंत्रता संग्राम को आगे बढ़ाना।
३. प्रगतिशील लेखकों की सहायता करना।
४. स्वतंत्रता और स्वतंत्र विचार की रक्षा करना।

**अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के कलकत्ता अधिवेशन
का घोषणा-पत्र (दिसम्बर, १९३८)**

भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। प्रतिक्रियावाद की आत्मा का अंत यद्यपि अनिवार्य है और वह कुठित भी हो चुकी है फिर भी वह सक्रिय है और अपनी उम्र बढ़ाने की कोशिश कर रही है। क्लासिकल युग के अन्त के बाद भारतीय साहित्य की प्रवृत्ति जीवन की वास्तविकता से मुँह फेर लेने की रही है। यथार्थता से भागकर उसने निराधार अध्यात्मवाद और आदर्शवाद की शरण ली है। फल यह हुआ कि उसके शरीर का रक्त सूख गया है, उसका मानस निष्प्राण हो गया है और उसके परंजरबद्ध रूप और जड़वादी विचार पद्धति स्वीकार कर ली है।

भारतीय लेखकों का यह कर्तव्य है कि भारतीय जीवन में होने वाले परिवर्तनों और देश की प्रगति की स्फुरित और वैज्ञानिक बुद्धि का अपने साहित्य में प्रकाश करें। उन्हें साहित्यिक आलोचना की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए, क्योंकि वही प्रवृत्ति, परिवार, धर्म, नर-नारी, युद्ध और समाज सम्बन्धी प्रतिक्रियावादी अतीतवादी प्रवृत्तियों से सफल लोहा लेगी। जितनी भी सांप्रदायिक विद्वेषी और मानव के शोषण की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हैं, भारतीय लेखक उसका प्रतिकार करेंगे।

हमारे संघ का उद्देश्य उन रूढ़िवादी वर्गों से साहित्य और कलाओं की रक्षा करना होगा जिनके हाथ में वे अब तक धिनौनी बनती रही है। उन्हें हमें जनता के मन प्राण के निकट लाना होगा, उन्हें इतना सजीव बनाना होगा कि वे जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त कर सकें और हमें हमारे अभिप्रेत आदर्श तक पहुँचा सकें।

अपने को भारतीय सभ्यता को समुन्नत और उदात्त परम्पराओं का वारिस मानते हुए हम देश के प्रतिक्रियावादी सभी विचारों की उत्कट आलोचना करेंगे और हम (देशी-विदेशी दोनों साधनों से) व्याख्यात्मक और सृजनात्मक रचनाओं द्वारा वह सब करेंगे जिससे हमारा देश अपने अभिनव नवजीवन को प्राप्त कर सकें। हमारा विश्वास है कि भारत का नया साहित्य तभी सफल और सार्थक होगा जब वह हमारी आज की समस्याओं का हल ढूँढ़ेगा – भूख और दरिद्रता, सामाजिक अवनति और राजनीतिक गुलामी की समस्याओं का हल। जो भी हमें परमुखापेक्षी, निष्क्रिय और तर्कहीन बनाता है, वह सभी हमारे लिए प्रतिक्रियात्मक है और जो भी हममें आलोचनात्मक प्रवृत्ति जगाता है, जो, बुद्धि और तर्क के प्रकाश में संस्थाओं और परम्पराओं की समीक्षा करता है, जो भी हमें सक्रिय बनाता, परस्पर संगठित करता है, हमें बदलकर समुन्नत करता है, उस सब को हम प्रगत्यात्मक मानते हैं।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ के इलाहाबाद अधिवेशन का घोषणा-पत्र (सितंबर, १९४७)

हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का यह सम्मेलन ऐसे अवसर पर हो रहा है जबकि एक ओर हम शताब्दियों की पराधीनता से मुक्त होकर देश के नवनिर्माण की ओर बढ़ रहे हैं तो दूसरी ओर परस्पर विद्वेष और हिंसा का ऐसा तांडव भारत की इस धरती पर हो रहा है, जैसा उसके लम्बे इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ जो अपने जन्म काल से ही सामाजिक और राजनीतिक पराधीनता से लोहा लेता रहा है, स्वाधीनता के इस अवसर पर जनता का अभिनन्दन करता है और इस बात पर हर्ष प्रकट करता है कि वह अब जनता के सांस्कृतिक विकास में अधिक सहयोग कर सकेगा। इसके साथ ही हम इस बात की ओर सभी लेखकों का ध्यान आकर्षित करते हैं कि सांप्रदायिक दंगों के कारण नई संस्कृति का निर्माण कार्य ही नहीं, बल्कि अब तक की जितनी सांस्कृतिक संपत्ति हमने अर्जित की है, उसके लुट जाने का भी खतरा है।

आज अपनी भाषा और साहित्य की तमाम उदार परम्पराओं को भुलाकर कुछ लोग साहित्य और संस्कृति को जाति, धर्म, मत और सम्प्रदाय की सीमाओं में बाँध देना चाहते हैं। हम समझते हैं कि अपनी भाषा और साहित्य का आदर करने वाले हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह उनकी उदार सांस्कृतिक परम्पराओं

की रक्षा करे। प्रगतिशील लेखक सबसे आगे बढ़कर सांप्रदायिक आग का सामना करेंगे। उसके बिना देश के नवनिर्माण और जनता के सांस्कृतिक विकास की समस्या कभी हल नहीं हो सकती।

हम जानते हैं कि दो सौ साल की साम्राज्यवादी गुलामी की विरासत एक दिन में खत्म नहीं हो सकती। देश में ऐसी प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ हैं जो स्वतंत्र भारत में जनता के अभ्युत्थान को अपने लिए सबसे बड़ा संकट समझती हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्यों साम्राज्यवाद ने अपनी जड़ जमाए रखने के लिए ही इनकी सृष्टि की थी और प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक स्वाधीनता देने पर भी साम्राज्यवाद आशा करता है कि इन सहयोगी शक्तियों के भरोसे वह हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर पहले की ही भाँति अपना प्रभुत्व कायम रख सकेगा। देश की जनता के अपार बलिदान और लम्बे संघर्ष के बाद जो स्वाधीनता हमने पायी है, उसके फलों से भी वह हमें वंचित रखना चाहता है। यही शक्तियाँ खेत का अन्न भूखी जनता के मुख तक नहीं पहुँचने देती। यही शक्तियाँ तन ढकने के लिए गरीब जनता तक मिल का कपड़ा नहीं पहुँचने देती। यही शक्तियाँ साम्प्रदायिक आग को धधकाने में नितांत हृदयहीनता से अपने सम्पूर्ण साधनों का उपयोग कर रही हैं। साहित्य के क्षेत्र में प्रेस और प्रचार के तमाम साधनों पर अधिकार जमाकर वे लेखकों की स्वतंत्रता और जनवाद की भावनाओं को दबा देना चाहती हैं। प्रगतिशील लेखक इस बात का बीड़ा उठाते हैं कि निरन्तर और संगठित प्रयोग से इन तमाम शक्तियों का विरोध करेंगे। उनके प्रभाव से कला साहित्य और संस्कृति की विनाश करने वाली जो प्रवृत्तियाँ फिर सिर उठा रही हैं और जो जनता में विद्वेष और निराशा की भावनाएँ भर कर उसे मध्ययुग की ओर ठेल देना चाहती हैं, इन सब प्रवृत्तियों का भी हम डटकर सामना करेंगे।

हमें विश्वास है कि देश में जनता की राष्ट्रीय सरकार संस्कृति निर्माण कार्य में अपनी पूरी शक्ति लगायेंगी और इस तरह के सभी कार्यों में उससे सहयोग करना हम अपना कर्तव्य समझेंगे। हम समझते हैं कि देश की निरक्षरता को दूर किए बिना यह सम्भव नहीं है कि हम जनता के सांस्कृतिक धरातल को ऊँचा कर सकें। इसके लिए हम सभी हिन्दी लेखकों से अपील करते हैं कि वे साक्षरता बढ़ाने और जनता के सांस्कृतिक धरातल को ऊँचा करने में सबसे आगे बढ़कर हिस्सा लें। इसके बिना हमारा साहित्य सम्पूर्ण जनता का साहित्य नहीं बन सकता और वह देश के नवनिर्माण में अपनी महान ऐतिहासिक भूमिका भी पूरी नहीं कर सकता।

हमारी भाषा और साहित्य ने बड़े-बड़े कठिन संघर्षों का सामना किया है। उसमें उतनी जीवन

शक्ति है कि उसे आज की परिस्थितियों पर भी विजय मिलेगी। स्वाधीनता की वेदी पर अनेक शहीदों के रक्त बहने से जो स्वाधीनता हमें मिली है, उसके फलों से हमें कोई वंचित नहीं कर सकता। देश में एकता और जनतंत्र स्थापित करने में हिन्दी के लेखक कभी पीछे नहीं रहेंगे और प्रगतिशील लेखक संघ सभी दलों, सभी पार्टियों का आह्वान करता है कि वे संघ में आएँ और इस कार्य में हमारा हाथ बटाएँ।

हमें विश्वास है कि इस प्रकार सबके सम्मिलित प्रयत्न से हम हिन्दी के नये साहित्य को भी विश्वबंधु तुलसी और सूर की परम्परा के योग्य बना सकेंगे।

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के भिवंडी अधिवेशन का घोषणा-पत्र (मई १९४६)

आज भारतीय साहित्य के विकास में निर्णायक परिवर्तन हो रहे हैं। पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा तीक्ष्ण रूप में प्रगतिशील और प्रगतिविरोधी प्रवृत्तियाँ एक दूसरे के मुकाबले पर खड़ी हैं। दूसरे इस बात का पता चलता है कि भारतीय जनता की जनतंत्र और समाजवाद की लड़ाई ने एक बड़ा मोड़ लिया है।

अगस्त १९४७ के बाद भारतीय जनता को स्वाधीनता की लड़ाई एक नए दौर में दाखिल हुई है। भारतीय पूँजीपति वर्ग, जो राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में सदा साम्राज्यवाद से समझौता किया करता था, अब खुले आम उसका गठबंधन साम्राज्यवाद से हो गया है। ब्रिटिश कामनवेल्थ में बने रहने का जो निश्चय भारतीय सरकार ने किया है वह इस गठबंधन की ही चरम परिणति है यह समझौता भारतीय जनता की इच्छा का विरोध है कि इस देश में एक सम्पूर्ण स्वतंत्र सार्वभौम प्रजातांत्रिक राज्य स्थापित किया जाए।

फासिज्म के खिलाफ जीत होकर युद्ध खत्म हुआ और एक नया दौर शुरू हुआ, मगर इस नये दौर में भारतीय जनता फिर अपने आपको एक तीसरे महायुद्ध की तैयारियों के बीच घिरा हुआ पाती है। सांविध्यत यूनियन के नेतृत्व में जनवादी शक्तियों को फासिज्म पर जो विजय मिली है उससे शान्ति, जनतंत्र और समाजवाद की शक्तियाँ बहुत मजबूत हुई हैं। लेकिन तब भी एंग्लो-अमरीकी साम्राज्यवादी अपने युद्धकालीन मुनाफे को कायम रखने और बढ़ाने के लिए दुनिया की जनता को डालर और एटमबम के गुलाम बनाने की योजनाएँ तैयार कर रहे हैं। गहरा होता हुआ आर्थिक संकट, जनता की जिन्दगी के स्टैंडर्ड में कटौती, अमानुषिक शोषण के खिलाफ मेहनतकश वर्ग का बढ़ता हुआ प्रतिरोध — इन सबको सभी देशों

के पूँजीपति युद्ध में डुबो देना चाहते हैं। सोवियत रूस, यूरोप के नए जनतंत्र और एशियाई जनता की आजादी की लड़ाई के खिलाफ कुत्सित झूठ का प्रचार करके लोगों के दिमागों को इस तीसरे महायुद्ध के लिए तैयार किया जा रहा है। मलय की जनता के खिलाफ तो यों भी साम्राज्यवाद ने जंग छेड़ रखी है और बर्मी, इंडोनेशियाई और वियतनामी जनता की आजादी की लड़ाई में हस्तक्षेप कर रहा है।

भारतीय पूँजीपति वर्ग और उसकी प्रतिनिधि सरकार जनता पर आतंक का राज कायम करने की कोशिश कर रही है। हजारों मजदूर, किसान, लेखक और कलाकार जेलों में सड़ रहे हैं, अकथ्य मुसीबतें उठा रहे हैं। जबकि सरकार ने उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें सजा कराने की भी जरूरत नहीं समझी। शांषक वर्गों के स्वार्थों की रक्षा करके, दुनिया के जनवादी आन्दोलन के खिलाफ एंग्लो-अमरीकी साम्राज्यवादी हिन्दुस्तान को कामनवेल्थ की एक कड़ी के रूप में युद्ध का अड़्डा बनाने की जो कोशिश कर रहे हैं उसे अनदेखा करके जनता के बुनियादी नागरिक अधिकारों को कुचलकर मजदूरों, किसानों और मध्यवर्गीय जनता के बढ़ते हुए आन्दोलन पर वहशियाना हमला करके कांग्रेस सरकारों ने यह दिखा दिया है कि संस्कृति और साहित्य के प्रति उनका भी यही रवैया है जो इटली और जर्मनी के फासिस्टों का था। वे सोवियत फिल्मों पर रोक लगा रहे हैं और एक ओर तो तनिक भी प्रगतिशील फिल्मों का निर्माण और प्रदर्शन की राह में हर तरह के रोड़े अटका रहे हैं और दूसरी ओर पाश्चात्य देशों विशेषकर अमरीका की बनी पतनशील जनविरोधी फिल्मों को खुली छूट दे रहे हैं। वे शान्ति सम्मेलन के लिए दिए गए पासपोर्ट रद्द कर रहे हैं और इस तरह दूसरे देशों के सांस्कृतिक और सामाजिक आन्दोलनों से सम्पर्क पैदा करने की राह में रोड़े अटका रहे हैं। वे जनवादी पत्र-पत्रिकाओं पर पाबंदियाँ और रोक लगा रहे हैं और उसके साथ ही साथ उन्होंने भारतीय समाचार पत्रों पर विदेशी न्यूज एजेंसियों और बड़े भारतीय पूँजीपतियों का अधिकार पूरी तरह हो जाने दिया है। इस सबसे यह भलीभाँति स्पष्ट है कि प्रगतिशील लेखकों को लिखने बोलने की आजादी, जनवादी पत्र-पत्रिकाओं के अस्तित्व और जीने योग्य मजदूरी और शिक्षा व संस्कृति के लिए लड़ने के जनता के अधिकार के पक्ष में लड़ना होगा।

हमारी आजादी की लड़ाई के इस दौर में आधुनिक साहित्य के भी लेखक साफ-साफ दो खेमों में बँट गए हैं। एक खेमें में हैं वे लेखक जो युद्ध और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के दुश्मन हैं, जो शान्ति और जनवाद की शक्तियों के कंधे से कंधा मिलाए खड़े हैं और जो हमारे पुराने साम्राज्य विरोधी साहित्य की सबसे अच्छी परम्पराओं को आगे ले जा रहे हैं। दूसरे खेमें में हैं वे लेखक जो हिन्दुस्तान को साम्राज्यवाद

का पिछलग्गू बनाए रखना चाहते हैं और जनता के खिलाफ इस पूंजीवादी सरकार के हिंस्र दमन की वकालत करते हैं जो दुनिया की जनवादी शक्तियों पर कीचड़ उछालते हैं और जो हमारे पुराने देशभक्तिपूर्ण साहित्य की सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं पर थूकते हैं। साहित्य में इन दो ध्रुवों की दूरी के बीच कोई समझौता सम्भव नहीं है। जो लोग कहते हैं कि वे दोनों से अलग और तटस्थ हैं वे प्रगति विरोधी लेखकों के समाज विरोधी रूप को छिपाते हैं और उसके बारे में जनता को धोखे में रखने में ही मदद पहुँचाते हैं।

लोगों को धोखा देने, उनके दिमाग में उलझन पैदा करने और उनके ध्यान को आज की तुरन्त समाधान मानने वाली सामाजिक समस्याओं पर से हटाने के लिए भारत का शासक वर्ग बड़े सूक्ष्म सैद्धान्तिक तरीके निकालता है। उसके भाड़े के कलम घसीटने वाले 'कला कला के लिए' का नारा देते हैं, साहित्य के अन्दर व्यक्तिवादी और राजनीतिक दृष्टि से हीन साहित्य की रचना करते हैं। वे यह कुत्सित प्रचार करते हैं कि समाजवाद का मतलब यह होगा कि लेखक की आजादी छिन जाएगी और यह कि सोवियत रूस में लेखक को कोई आजादी नहीं है और वहाँ जो साहित्य पैदा होता है वह स्वतंत्र नहीं है, हुक्म देकर तैयार किया हुआ है। वे जनता को यह कहकर बरगलाते हैं कि प्राचीन काल में भारत को जो महत्ता प्राप्त हुई वह इसीलिए कि उसने वर्ग संघर्ष को प्रश्रय नहीं दिया और अगर हम चाहते हैं कि भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त हो तो लोगों को अहिंसा और वर्ग साहचर्य के रास्ते पर चलना चाहिए।

इन सब प्रश्नों पर प्रगतिशील लेखकों की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। साहित्य की पतनशील रूपवादी, व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ सीधे-सीधे शोषक वर्ग को फायदा पहुँचाती हैं। इस पतनशील साहित्य का अराजनीतिक रूप वास्तव में उसकी प्रगति विरोधी प्रकृति को छिपाने का एक नकाब है और उसका असल उद्देश्य लोगों के दिमाग को खराब करना और उसे अफीम पिलाकर सुलाना है। पूंजीवादी समाज में जनवादी लेखकों को तनिक भी लिखने की आजादी नहीं है। सोवियत यूनियन की समाजवादी व्यवस्था में जनता को लूटने की पूंजीपतियों की आजादी छिन गई है, इसीलिए जनवादी लेखक सच्चे अर्थों में आजाद है और उसका साहित्य दुनिया के प्रगतिशील साहित्य में सबसे आगे हैं।

प्रगतिशील लेखक प्राचीन साहित्य और संस्कृति के सच्चे उत्तराधिकारी हैं और मानव सभ्यता की सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं को आगे ले जाते हैं। वे आज के समाज के ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि में अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विधि का आलोचनात्मक दृष्टि से लेखा लिखा करते हैं। वे संस्कृति को साम्राज्यलिप्सा और थोथे रहस्यवाद का पर्यार्य बनाने से इंकार करते हैं। और जो लोग ऐसा करने की कोशिश करते हैं

उनका वे पर्दाफाश करते हैं और दिखलाते हैं कि ऐसा करने में उनका असल उद्देश्य क्या है। उनका तर्क है कि अपने साहित्य में अतीतमुखी प्रवृत्तियों को न आने दें।

प्रगतिशील लेखकों का यह विश्वास है कि शोषकों और शोषितों में साहचर्य नहीं हो सकता और इस सम्बन्ध में सत्य और अहिंसा की बात करना पूँजीवादी शोषण के वर्ग-रूप को छिपाना है। अपने आन्दोलन के आरम्भ से ही प्रगतिशील लेखकों ने साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के खिलाफ निर्मम, बिना किसी प्रकार के समझौते की लड़ाई चलाने का नारा दिया है और उन्होंने सामान्य जनता को ही इसकी असल प्रेरक शक्ति के रूप में देखा है। सन् १९३४ में कांग्रेस के भद्र अवज्ञा आन्दोलन की असफलता और फिर ब्रिटिश राज में कांग्रेस का मिनिस्ट्री बनाना, इससे राष्ट्रीय नेतृत्व की नीति के बारे में जनता के बहुत बड़े हिस्से का भ्रम टूटा, इधर से उसे निराशा हुई और वह साम्राज्यवाद से बिना समझौता किए अंत तक लड़ाई चलाने के लिए अपने लोकप्रिय वर्ग संगठनों में एकत्र और संगठित होने लगी। साम्राज्यवाद से किसी तरह का कोई समझौता या संधि नहीं होनी चाहिए, जनता की यह आकांक्षा को संगठित होने लगी। साम्राज्यवाद से किसी तरह का कोई समझौता या संधि नहीं होनी चाहिए, जनता की यह आकांक्षा इस काल के साहित्य में खूब अच्छी तरह प्रतिबिम्बित है। इसी आकांक्षा को संगठित अभिव्यक्ति मिली प्रगतिशील लेखक आन्दोलन में। साम्राज्यविरोधी संघर्ष में साहित्य निष्क्रिय नहीं रह सकता, उसे पूर्ण स्वाधीनता और जनतंत्र की लड़ाई में जनता को जगाना चाहिए, प्रेरणा देनी चाहिए, राह दिखानी चाहिए, उसे साधारण जनता की आकांक्षाओं का चित्रण करना चाहिए उस जनता का जिसका शोषण केवल विदेशी साम्राज्यवाद ही नहीं बल्कि देशी पूँजीपति, राजे-रजवाड़े, जमींदार, जागीरदार सब करते हैं। नए प्रगतिशील साहित्य का यही लक्ष्य था।

पिछले दशक के भारतीय साहित्य के विकास को मुड़कर देखने पर हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि प्रगतिशील लेखकों ने ही और सभी लेखकों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह हमारी स्वाधीनता की लड़ाई के अलग-अलग दौरों और मोड़ों को चित्रित किया है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक फासिज्म के विरुद्ध लड़ाई में जो दुनिया को गुलाम बनाना चाहता था, आवाज उठाई। उन्होंने फासिज्म के विरुद्ध लड़ाई में चीनी जनता का साथ दिया, जापानी फासिज्म के विरुद्ध लड़ाई में चीनी जनता का साथ दिया। उन्होंने बंगाल के भीषण अकाल के समय उसको मदद पहुँचाने के लिए जनमत को संगठित किया और आजादी की उस महान लड़ाई में जनता के कंधे से कंधा मिलाकर खड़े रहे जिसका प्रखरतम रूप जहाजियों की बगावत था। वे ही थे जिन्होंने उस समय भी जनता की एकता और शान्ति का झंडा झुकने नहीं दिया जिस समय सभी पूँजीवादी समाचार पत्र देश के अंदर होने वाले सांप्रदायिक नरमेध और दंगों में हाथ बंटा रहे थे।

यह सब होते हुए भी यह कहना जरूरी है कि प्रगतिशील साहित्य भी दोषों से मुक्त नहीं रहा है और हम उसे और भी उन्नत तभी कर सकते हैं जब हम इन दोषों को समझें और उन पर विजय पाएं। इस दौर में तमाम प्रगतिशील साहित्य में जो सबसे बड़ी कमजोरी रही है वह यही कि प्रगतिशील लेखकों का लगाव जनता से, जिसकी अगुआई मजदूर श्रेणी कर रही है, काफी नहीं रहा है। यही कारण है कि किसानों और मजदूरों के जीवन और संघर्ष से संबंध रखने वाला रचनात्मक साहित्य परिणाम में इतना थोड़ा है। यही कारण है कि प्रगतिवादी साहित्यिक आलोचना स्वस्थ जनता के साहित्य के विकास का विरोध करने वाली अनेक प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों को जड़ से उखाड़ नहीं पाई। प्रगतिशील लेखकों ने कभी-कभी रोमांटिक और पतनशील लेखकों के सिद्धान्त और प्रयोग से समझौता भी किया है और स्वयं प्रगतिशील साहित्य की आलोचना बेलाग ढंग से नहीं कर पाए हैं।

स्वतंत्र आदमी की जिंदगी, पूरी आजादी और आदमी द्वारा आदमी के हर प्रकार के शोषण के अंत के लिए लड़ने वाली साधारण जनता से अलग हटकर भारतीय साहित्य का कोई भविष्य नहीं है, उस साधारण जनता से अलग हटकर जो आज मजदूर श्रेणी के नेतृत्व में जनतंत्र और समाजवाद के लिए लड़ रही है। हमारे लेखक इस आन्दोलन के जितना पास आवेंगे उनका साहित्य रूप और प्राण दोनों ही दृष्टियों से उतना ही श्रेष्ठ होगा।

साधारण जनता के हितों का विरोध करने वाली प्रतिक्रियावादी साहित्यिक प्रवृत्तियों का अंत निश्चित है। केवल जनता के साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है, आज उसकी राह में चाहे जो अड़चनें हों।

कोई साहित्य तब तक कि उसका कोई ऊँचा सामाजिक उद्देश्य नहीं हो, महान् और हमारी जनता के आदर का अधिकारी नहीं हो सकता। मानवता के जो ऊँचे से ऊँचे आदर्श हैं जैसे शान्ति, प्रेम, राष्ट्रों में परस्पर सहयोग, युद्ध और मानव शोषण का विरोधी मानवतावाद उनसे प्रगतिशील साहित्य को प्रेरणा मिलेगी। साहित्य का महान नैतिक उद्देश्य सभी लेखकों से यह मांग करता है कि वे अपने साहित्य को प्रभावोत्पादक, लोकप्रिय और सुन्दर बनाएँ जिससे हमारी जनता उसे प्यार करे, उससे प्रेरणा लें और उस पर गर्व करे। जनता की संस्कृति और साहित्य का भविष्य उनके हाथों में है उन्हें अपने कार्य के लिए यह सिद्ध करना है कि भविष्य योग्य हाथों में है।

**प्रगतिशील लेखक संघ के दिल्ली अधिवेशन
का घोषणा-पत्र (१९५३)**

भारत के लोग चाहते हैं कि उनके साहित्य और कला का विकास उनकी राष्ट्रीय परम्परा के अनुसार हो। तमाम देशभक्त लेखक और कलाकार उनकी इस उचित भावना को संतुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व है। उस विरासत में जो कुछ सुन्दर और महान है उसे वे अपने सृजन कार्य से आगे बढ़ाना चाहते हैं उसमें जो कुछ निकृष्ट और मिथ्या है, उसे वे छोड़ देना चाहते हैं।

हमारी जनता अपने जीवन को स्वाधीन और समृद्ध बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वह दुनिया के तमाम राष्ट्रों के साथ शान्ति और मित्रता के संबंध स्थापित करने की इच्छुक है। हमारा साहित्य मानवता की भावना, जीवन में आस्था और उज्ज्वल भविष्य की आशा से ओतप्रोत होना चाहिए।

मनुष्य की सृजन शक्ति के प्रति घृणा, एक जाति या राष्ट्र का दूसरे पर शासन, जातिवाद और सांप्रदायिकता हमारी जनता की स्वस्थ परम्पराओं के विपरीत है। जीवन उद्देश्य का अभाव, निराशावाद, छायावाद और भाग्यवाद हमारे सांस्कृतिक विकास में बाधक हैं। हम जासूसी, हत्या, छायावाद और अश्लीलता के साहित्य का विरोध करते हैं।

हमारा साहित्य कलात्मक हो, इसका रूप राष्ट्रीय तथा लोकप्रिय हो। हम ऐसी सुविधाएँ चाहते हैं जिनसे हमारे देश की सभी भाषाओं का साहित्य फले-फूले।

हम चाहते हैं कि लेखक जनता की सेवा के लिए संगठित हो, अपनी रचनाओं द्वारा सुखी और समृद्ध जीवन की प्राप्ति में सहायक बनें।

आधार-ग्रन्थ

(अ) रांगेय राघव की रचनाएँ

क्र० उपन्यास सं०	प्रकाशन	प्रकाशन वर्ष	संस्करण
१. अँधेरे की भूख	किताब महल, इलाहाबाद	१९६१	द्वितीय
२. अँधेरे की जुगनू	किताब महल, इलाहाबाद	१९५३	प्रथम
३. औंधी की नीवें	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली	१९६१	प्रथम
४. आखिरी आवाज	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६२	प्रथम
५. आग की प्यास	हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली	१९६१	प्रथम
६. उबाल	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६८	द्वितीय
७. कब तक पुकारूँ	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६३	तृतीय
८. कल्पना	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६८	चतुर्थ
९. काका	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली	१९६३	द्वितीय
१०. घरोंदे	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९४६	प्रथम
११. चीवर	शब्दकार, दिल्ली	१९५१	प्रथम
१२. छोटी बात बात	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९५६	प्रथम
१३. जब आवेगी काल घटा	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५८	प्रथम
१४. दायरे	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६१	प्रथम
१५. देवकी का बेटा	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५४	प्रथम
१६. घरती मेरा घर	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६१	प्रथम
१७. धूनी का धुआँ	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५८	प्रथम
१८. पक्षी और आकाश	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६१	द्वितीय
१९. पतझर	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६२	प्रथम
२०. पथ का पाप	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६०	प्रथम
२१. पराया	विकास पेपर बैंक, दिल्ली	१९५४	प्रथम
२२. प्रतिदान	शब्दकार, दिल्ली	१९५२	प्रथम
२३. प्रोफेसर	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६१	प्रथम
२४. बंदूक और बीन	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५८	प्रथम
२५. बोलते खण्डहर	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९५५	प्रथम
२६. बौने और घायल फूल	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५७	प्रथम
२७. भारती का सपूत	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५४	प्रथम
२८. महायात्रा: गाथा—अंधेरा रास्ता	किताब महल, इलाहाबाद	१९६०	प्रथम
२९. महायात्रा: गाथा—रैन और चंदा	किताब महल, इलाहाबाद	१९६४	प्रथम
३०. मुर्दों का टीला	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९५५	प्रथम
३१. मेरी भव बाधा हरो	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९६०	प्रथम
३२. यशोधरा जीत गई	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५४	प्रथम
३३. रत्ना की बात	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५४	प्रथम

३४. राई और पर्वत	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९५८	प्रथम
३५. राह न रूकी	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९५८	प्रथम
३६. लखिमा की आँखें	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५७	प्रथम
३७. लोई का ताना	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५४	प्रथम
३८. विषाद मठ	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९४६	प्रथम
३९. सीधा सादा रास्ता	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९५१	प्रथम
४०. हुजूर	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९५१	प्रथम

(ब) सहायक आलोचनात्मक ग्रन्थ

१. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६२	प्रथम
२. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और श्रृंगार	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६२	प्रथम
३. काव्य यथार्थ और प्रगति	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९६४	द्वितीय
४. काव्य कला और शास्त्र	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५५	प्रथम
५. गोरखनाथ और उनका युग	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली	१९६३	प्रथम
६. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड	सरस्वती पुस्तक सदर, आगरा	१९५४	प्रथम
७. प्राचीन भारतीय संत परम्परा और इतिहास	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली	१९५३	प्रथम
८. भारतीय संत परम्परा और समाज	किताब महल, इलाहाबाद	१९४६	प्रथम
९. महाकाव्य विवेचन	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५८	प्रथम
१०. संगम और संघर्ष	किताब महल, इलाहाबाद	१९५३	प्रथम
११. समीक्षा और आदर्श	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९५५	प्रथम

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

(अ) रांगेय राघव पर शोध एवं समीक्षा ग्रंथ

क्र० सं०	रचना	रचनाकार	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष	संस्करण
१.	डा० रांगेय राघव : उपन्यास और मेरी मान्यताएँ	डा० देवराज उपाध्याय	राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थान	१९६७	प्रथम
२.	डा० रांगेय राघव साहित्यकार एवं व्यक्ति	सं० अमरनाथ	हिन्दी प्रकाशन, जौनपुर	१९६६	प्रथम
३.	डा० रांगेय राघव और उनके उपन्यास	डा० लालसाहब सिंह	अनुपमा प्रकाशन, बम्बई	१९७२	प्रथम
४.	रांगेय राघव और उनके आंचलिक उपन्यास	शम्भूसिंह	सुशील प्रकाशन, अजमेर	१९७६	प्रथम
५.	कथाकार रांगेय राघव	डा० कमलाकर	साहित्य रत्नालय कानपुर	१९८२	प्रथम
६.	रांगेय राघव का रचना संसार	सं० गोविन्द रजनीश	मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली	१९८२	प्रथम
७.	रांगेय राघव के उपन्यासों में युग चेतना	डा० प्रभुलाल डी० वैश्य	तारामण्डल, अलीगढ़	१९८५	प्रथम

(ब) सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

१.	आज का भारत	रजनी पामदत्त	मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली	१९७७	प्रथम
२.	आज का हिन्दी साहित्य	प्रकाशचंद गुप्त	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	१९६६	प्रथम
३.	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डा० नामवर सिंह	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	१९६५	—
४.	आधुनिक साहित्य	नन्ददुलारे वाजपेयी	भारतीय भण्डार, इलाहाबाद	१९२२	—
५.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० कृष्णलाल	हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद	१९५२	प्रथम
६.	उपन्यास और लोक जीवन	राल्फ फॉक्स	पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नयी दिल्ली	१९८०	तृतीय
७.	कुछ विचार	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद	१९६५	—
८.	गिरती दीवारें	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद	१९४७	प्रथम
९.	चिन्तामणि (भाग-१)	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग	१९५८	प्रथम
१०.	जातिप्रथा	डा० राममनोहर	नवहिंद प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६४	प्रथम
११.	झूठा सच	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ	१९५८	—

१२. दिव्या	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ	१९४५	—
१३. देखा सोचा समझा	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ	१९५४	
१४. धर्म और समाज	डा० राधाकृष्णन	सरस्वती विहार, नई दिल्ली	१९७५	सप्तम्
१५. धर्म और लेनिन		इण्डियन पब्लिशर्स हाउस	१९८६	तृतीय
१६. नया साहित्य नये प्रश्न	नंददुलारे वाजपेयी	मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया	१९७८	प्रथम
१७. निराला की साहित्य साधना	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली	१९७१	द्वितीय
१८. नवमानवतावाद	वी०एम० तारकण्डे	वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर	१९८६	प्रथम
१९. पार्टी कामरेड	यशपाल	विप्लव कार्यालय, लखनऊ	१९४७	प्रथम
२०. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य	रेखा अवस्थी	दि मैकमिलन कम्पनी आफ नयी दिल्ली	१९७८	प्रथम
२१. प्रगतिवाद पुर्नमूल्यांकन	हंसराज रहबर	नवयुग प्रकाशन, दिल्ली	१९६६	प्रथम
२२. प्रगतिवादी आन्दोलन का आलेखात्मक इतिहास	कर्णसिंह चौहान	नेहा प्रकाशन, दिल्ली	१९८५	प्रथम
२३. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ	रामविलास शर्मा	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	१९५४	—
२४. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास	डा० बदरी प्रसाद	ओमप्रकाशन दिल्ली	१९८४	प्रथम
२५. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि	सत्यपाल चुघ	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	१९६८	प्रथम
२६. प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान	डा० कमलकिशोर गोयनका	सरस्वती प्रेस दिल्ली	१९७४	प्रथम
२७. बलचनमा	नागार्जुन	किताब महल, इलाहाबाद	१९५२	प्रथम
२८. बाबा बटेसर नाथ	नागार्जुन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९५४	प्रथम
२९. भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम	कार्ल मार्क्स	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली	१९७३	द्वितीय
३०. भारत का स्वतंत्रता संग्राम	विपिनचन्द्र	हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली	१९६०	प्रथम
३१. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली	१९८२	प्रथम
३२. भारत संबंधी लेख	कार्ल मार्क्स	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली	१९८३	द्वितीय
३३. भारतीय मध्यवर्ग	श्याम सुन्दर घोष	बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी	१९८२	द्वितीय
३४. भारतीय सामन्तवाद	रामशरण शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	१९७३	प्रथम
३५. भारतेन्दु युग	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली	१९५६	द्वितीय
३६. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा साहित्य	कुँवर पाल सिंह	धरती प्रकाशन, बीकानेर	१९८४	—
३७. मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास	डा० एन० रवीन्द्र नाथ	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	१९७६	प्रथम
३८. मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास	डा० गोपालकृष्ण शर्मा	प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली	१९६०	प्रथम

३६. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग	डा० उदयमानु सिंह	लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ	२००८ प्रथम
४०. मेरी कहानी	जवाहरलाल नेहरू	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली	१९६५ ग्यारहवां
४१. रसवन्ती	रामधारी सिंह दिनकर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली	— तृतीय
४२. विचार और वितर्क	हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद	१९५४ प्रथम
४३. वैज्ञानिक भौतिकवाद	राहुल सांकृत्यायन	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	१९८१ षष्ठ
४४. साहित्य का उद्देश्य	प्रेमचन्द	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद	१९८४ —
४५. साहित्य की समस्याएँ	शिवदानसिंह चौहान	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली	१९५६ प्रथम
४६. साहित्य की परख	शिवदान सिंह चौहान	इण्डिया पब्लिशर्स, इलाहाबाद	१९४८ प्रथम
४७. साहित्य का श्रेय और प्रेय	जैनेन्द्र कुमार	पूर्वोदय प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली	१९७६ तृतीय
४८. साहित्यालोचन	श्याम सुन्दर दास	इण्डियन प्रेस प्राईवेट लिमिटेड, प्रयाग	१९६२ —
४९. सिंहावलोकन	यशपाल	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	१९६४ —
५०. हिन्दी उपन्यास	सुषमा धवन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९६० —
५१. हिन्दी उपन्यास	डा० शिवनारायण श्रीवास्तव	सरस्वती मंदिर, बनारस	२०१६ प्रथम
५२. हिन्दी उपन्यास	डा० सुरेश सिन्हा	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	१९७२ द्वितीय
५३. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा	डा० रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	१९६८ प्रथम
५४. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	त्रिभुवनसिंह	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी	१९६५ चतुर्थ
५५. हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग	डा० हेमराज निमर्म	विभु प्रकाशन साहिबाबाद	१९७८ प्रथम
५६. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	डा० एस०एन० गणेशन	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९६२ प्रथम
५७. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास : प्रातेमान और विकासेतिहासिक	डा० सत्यपाल चुघ	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली	१९७३ प्रथम
५८. हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास : एक अध्ययन	डा० सुशीलकान्त	चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद	१९७६ प्रथम
५९. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन	डा० ब्रजभूषणसिंह	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद	— —
६०. हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास	हजारी प्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	१९८५ तृतीय
६१. हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	२०३४ —

६२ हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष	डा० शिवदान सिंह चौहान	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	१९६१ द्वितीय
६३ हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी	नन्ददुलारे वाजपेयी	इण्डिया बुक डिपो, लखनऊ	१९४५ —

पत्र-पत्रिकाएँ

१. आलोचना (उपन्यास विशेषांक), अक्टुबर, १९५४
२. उत्तरगाथा, जनवरी फरवरी अप्रैल, १९८२
३. उत्तरार्द्ध (जनवादी विशेषांक), १९८२
उत्तरार्द्ध (प्रेमचन्द अंक), १९८०
४. सरस्वती, १९२०
५. समालोचना, फरवरी, १९५६
६. साहित्य संदेश (आधुनिक उपन्यास अंक), १९५६
साहित्य संदेश (रांगेय राष्ट्रव स्मृति अंक), १९६३
७. हंस, अक्टुबर, १९४४